MAED-502 (Semester-I)

शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार

Psychological Bases of Education

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

अध्ययन बोर्ड			
प्रोफेसर जे0के0 जोशी निदेशक शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी उत्तराखण्ड ,	प्रोफेसर के०बी०बुधोरी (सदस्य) शिक्षा संकाय एच०एन०बी०विश्वविद्यालय श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड	प्रोफेसर बी०आर० कुकरेती (सदस्य) शिक्षा संकाय एम० जे० पी० रोहिलखंड , उत्तरप्रदेश ,विश्वविद्यालय बरेली	प्रोफेसर रम्भा जोशी शिक्षा संकाय कुमाऊँ विश्वविद्यालय अल्मोड़ा ,
डॉ दिनेश कुमार सहायक प्राध्यापक उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ प्रवीण कुमार तिवारी सहायक प्राध्यापक उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ ममता कुमारी सहायक प्राध्यापक उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	डॉ कल्पना पाटनी लखेड़ा सहायक प्राध्यापक उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड
डॉ मनीषा पंत परमर्शदाता उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय	डॉ सिद्धार्थ पोखरियाल संविदा शिक्षक उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय		

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक

डॉ दिनेश कुमार
सहायक प्राध्यापक
शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा
उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

इकाई संयोजक एवं संपादक

डॉ ममता कुमारी
सहायक प्राध्यापक
शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड

इकाई लेखन	**इकाई संख्या**	**इकाई लेखन**	**इकाई संख्या**
प्रोफेसर आर. पी. पाठक शिक्षा संकाय श्री लाल बहादुर राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ , नई दिल्ली	1, 2.	डॉ0 दिनेश कुमार सहायक प्राचार्य शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी ,उत्तराखण्ड	9
प्रोफेसर जे0के0 जोशी , निदेशक , शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी, उत्तराखण्ड	10	डॉ0 विजय जैसवाल सहायक प्राचार्य सी0एस0जे0एम0 विश्वविद्यालय कानपुर	8
डॉ ममता कुमारी सहायक प्राध्यापक शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय	3,7.	डॉ0 रजनी रंजन सिंह सहायक प्राचार्य शिक्षाशास्त्र विद्याशाखा उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी,	4,5,6.

ISBN-13-978-93-84632-45-8

समस्त लेखों पाठों से/सम्बंधित किसी भी विवाद के लिए संबंधित लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का जूरिसडिक्शन हल्द्वानी होगा (नैनीताल)।

कापीराइट: उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय प्रकाशन वर्ष: 2014 पुन: प्रकाशन 2020

संस्करण: सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशक: एम0पी0डी0डी0,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी-263139, (नैनीताल)

शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार
Psychological Bases of Education
MAED -502

प्रथम सेमेस्टर		
01	मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अर्थ तथा शिक्षा से सम्बन्ध Meaning of Psychology in Historical Perspective and Its Relation with Education	1-10
02	शिक्षा मनोविज्ञानका अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र Educational Psychology:- Meaning , Nature and Scope	11-26
03	मानव विकास:- मानव विकास की अवस्थाएं Human Development :- Stages of Human Development	27-42
04	ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवं इसके शैक्षिक निहितार्थ Jean Piaget's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications	43-57
05	लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास का सिद्वान्त तथा इसके शैक्षिक निहितार्थ Lawrence Kohlberg's Theory of Moral Development and Its Educational Implications	58-75
06	जिरोम एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त एवं इसके शैक्षिक निहितार्थ Jerome S. Bruner's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications	76-94
07	सीखना या अधिगम: प्रत्यय , अधिगम के सिद्धांत Learning: Concept, Theories of Learning	95-120
08	गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धान्त तथा उनके शैक्षिक निहितार्थ Gestalt Psychology, Cognitive Theories of Learning and their Educational Implications	121-137
09	गेने की सीखने की दशाएं , मैसलो का सीखने का मानवीय मनोविज्ञान Gagne's Conditions Of Learning, Maslow's Humanistic Psychology Of Learning	138-156
10	स्नायु विज्ञान के क्षेत्र में सम्पन्न शोध कार्यों के परिणामों के शैक्षिक निहितार्थ Educational Implications of Research Findings from the field of Neuro Science	157-170

इकाई–1 मनोविज्ञान का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अर्थ तथा शिक्षा से सम्बन्ध

Meaning of Psychology in Historical Perspective and Its Relation with Education

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मनोविज्ञान का विकासः ऐतिहासिक परिदृश्य
1.4 मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र
1.5 मनोविज्ञान के सम्प्रदाय
1.6 सारांश
1.7 शब्दावली
1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

इस इकाई में हमने मनोविज्ञान के विकास के क्रमिक ऐतिहासिक परिदृश्य का अवलोकन किया कि दर्शनशास्त्र का अंग मनोविज्ञान पहले आत्मा का विज्ञान रहा है फिर यह मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में परिवर्तित होता हुआ चेतना के विज्ञान के रूप में परिवर्तित होकर अन्त में व्यवहार के विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। मनोविज्ञान के क्रमिक विकास का प्रस्तुतीकरण वुडवर्थ के कथन से अधिक स्पष्ट होता है। जिसमें उन्होंने साहित्यिक भाषा में कहा कि "सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया फिर उनने अपने मन/मस्तिष्क का त्याग किया। उसके बाद उसने अपनी चेतना का त्याग, आज वह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है"।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप:-

1. मनोविज्ञान के विकास की यात्रा को समझ सकेंगे

2. मनोविज्ञान की परिभाषाओं से परिचित हो सकेंगे।
3. मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदायों से परिचित हो सकेंगे।
4. शिक्षा से मनोविज्ञान के सम्बन्धों से परिचित हो सकेंगे।

1.3 मनोविज्ञान का विकास: ऐतिहासिक परिदृश्य

यों तो मनोविज्ञान के जन्म के सम्बन्ध में यह कथन भी अतिश्योक्ति नहीं है कि मानव के विकास के साथ-साथ मनोविज्ञान का विकास भी होता रहा है परन्तु प्रारम्भ में उस की गति धीमी थी समय के साथ-साथ गति में त्वरण होता चला गया। हमारे ऋषियों ने वेद शास्त्रों में जिन सूत्रों को प्रस्तुत किया है वे मनोविज्ञान से बहुत कुछ सम्बन्धित रहे हैं। परन्तु एक अलग विषय के रूप में मनोविज्ञान विषय बहुत नया नहीं है मनोविज्ञान के विकास का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

1. **आत्मा का विज्ञान (Science of Soul)**

   अरस्तु के समय में मनोविज्ञान ने दर्शनशास्त्र के एक अंग के रूप में जन्म लिया। धीरे-धीरे मनोविज्ञान ने अपने आपको दर्शनशास्त्र से पृथक कर लिया, (गैरिट, Psychology)मनोविज्ञान (Psychology)शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के दो शब्दों से हुई है वे हैं- Psyche तथा logos जिनका अर्थ क्रमशः आत्मा तथा अध्ययन है। इस प्रकार प्रारम्भ में साइकोलॉजी का अर्थ था आत्मा का विज्ञान। आत्मा का विज्ञान मानने वाले प्रमुख दार्शनिक रहे हैं - प्लेटो (Plato) अरस्तु (Aristotle) डेकार्टे (Descrates) आदि। आत्मा के अस्तित्व और प्रमाणिकता पर लगातार प्रश्नों का प्रत्यक्ष और प्रमाणित उत्तर न मिलने के कारण, 16वीं शताब्दी में मनोविज्ञान का यह स्वरूप अस्वीकार कर दिया गया।

2. **मस्तिष्क का विज्ञान (Science of Mind)**

   सत्रहवीं शताब्दी में मनोविज्ञान को मन या मस्तिष्क का विज्ञान कहा गया। इटली के मनोवैज्ञानिक पाम्पोनाजी (Pomponazzi)का नाम विशेष उल्लेखनीय रहा। आत्मा की तरह मन की प्रकृति और स्वरूप भी निश्चित नहीं किया जा सका इसलिए मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान को विद्वानों का सहयोग नहीं मिल पाया।

3. **चेतना का विज्ञान(Science of Consciousness)**

   मन के विज्ञान के रूप में मनोविज्ञान को पर्याप्त सहयोग न मिलने के कारण, मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान कहा जाने लगा। 19वीं शताब्दी के प्रमुख मनोवैज्ञानिक वाइव्स(Vives)विलियन जेम्स (William James) विलियन वुन्ट (William Wount) तथा जेम्स सुली(James Sully) रहे। विलियम जैम्स ने 1892 में मनोविज्ञान को इस प्रकार परिभाषित किया था-

   विलियम जेम्स'' मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा यह हो सकती है कि यह चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन और व्याख्या करता है।

"The definition of Psychology may be best given ----- as the description and explanation of state of Consciousness as such." William James.

बाद में मनोवैज्ञानिकों ने कहा कि चेतना एक अपूर्ण शब्द है, मेकडुगल ने तो चेतना को बुरा शब्द तक कह दिया था (Consciousness is a thoroughly bad word. It has been a great misfortune for psychology that the word has come into general use) तथा चेतनमन के अतिरिक्त अर्द्धचेतन तथा अचेतन मन भी होते हैं, जो कि मनुष्य की क्रियाओं को प्रभावित करते हैंतथा मनोविज्ञान में शारीरिक क्रियाओं का भी अध्ययन किया जाता है। अतः मनोविज्ञान को चेतना का विज्ञान कहना उचित नहीं है।

4. **व्यवहार एवं अनुभूति का विज्ञानः**

20वीं शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को व्यवहार का विज्ञान कहना प्रारम्भ किया। इस काल में प्रमुखमनोवैज्ञानिकोंद्वारा प्रस्तुत मनोविज्ञान की कुछ प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं-

वुडवर्थ: '' मनोविज्ञान वातावरण से सम्बन्धित व्यक्ति की क्रियाओं का अध्ययन करता है।''

"Psychology studies the Individual's Action in relation to environment'' Wood Worth.

गैरिसन तथा अन्य: ''मनोविज्ञान का सम्बन्ध प्रेक्षित मानव व्यवहार से है।

Psychology is concerned with observable human behavior" –Garrison and others.

मन:''आधुनिक मनोविज्ञान का सम्बन्ध मानव व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है।

"Psychology today is concerned with observable human behavior" –Munn

क्रो तथा क्रो : ''मनोविज्ञान मानव व्यवहार और मानव सम्बन्धों का अध्ययन है।''

''Psychology is the study of human behavior and human relationship." - Crow and Crow

इस के अतिरिक्त चार्ल्स इ. स्किनर, मैक्डूगल, जैम्स ड्रेवर, पिल्सबरी,प्रो. माथुर, प्रो. जलोटा, प्रो. भाटिया आदि की परिभाषाएँ भी मनोविज्ञान के अर्थ, स्वरूप तथा कार्यक्षेत्र की व्याख्या करने वाली परिभाषाएँ हैं।

मनोविज्ञान के क्रमिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में वुडवर्थ के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है:-

वुडवर्थ:''सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया। फिर उसने अपने मन या मस्तिष्क का त्याग किया उसके बाद उसने अपनी चेतना त्यागी। अब वह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है।''

First psychology lost its soul, then its mind, then it lost its consciousness, it still has behavior of sort." WoodWorth.

इस प्रकार मनोविज्ञान के सम्प्रत्यय में जो परिवर्तन आए उन्हें कालक्रमानुसार इस प्रकार विभक्त किया जा सकता है।

1. आत्मा का विज्ञान =15 वीं शताब्दी तक
2. मस्तिष्क का विज्ञान=16 तथा 17वीं शताब्दी
3. चेतना का विज्ञान=18 तथा 19वीं शताब्दी
4. व्यवहार का विज्ञान =20 शताब्दी से आज तक

1.4 मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र

मनोविज्ञान के विषय क्षेत्र में रात दिन वृद्धि होती जा रही है। अतः मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए अनेक शाखाओं को विभाजित कर दिया गया है। यही नहीं लगातार नए नए क्षेत्र भी बनते चले जा रहे हैं। प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार हैं :-

1. सामान्य मनोविज्ञान
2. असमान्य मनोविज्ञान
3. मानव मनोविज्ञान
4. पशु मनोविज्ञान
5. बाल मनोविज्ञान
6. किशोर मनोविज्ञान
7. प्रौढ़ मनोविज्ञान
8. वृद्धावस्था का मनोविज्ञान
9. औद्योगिक मनोविज्ञान
10. नैदानिक मनोविज्ञान
11. परामर्श मनोविज्ञान
12. मनो जैव विज्ञान
13. व्यक्तित्व मनोविज्ञान
14. सैन्य मनोविज्ञान
15. प्रायोगिक मनोविज्ञान
16. मनोमितिक (Psychometric)मनोविज्ञान
17. अतीन्द्रीय मनोविज्ञान (Para Psychology)
18. पर्यावरणीय मनोविज्ञान
19. स्वास्थ्य मनोविज्ञान
20. न्यायिक (Forensic) मनोविज्ञान
21. खेल कूद (Sport) मनोविज्ञान
22. राजनीतिक (Political) मनोविज्ञान

23. शैक्षिक मनोविज्ञान (EducationalPsychology)

शिक्षा मनोविज्ञान की विषयवस्तु: अधिगम, शिक्षण विधियाँ, अनुशासन, शिक्षणसहायक सामग्रियाँ, बाल मनोविज्ञान, किशोर मनोविज्ञान, अध्यापकों का मानसिक स्वास्थ्य, व्यक्तितव, विद्यार्थियों का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक, नैतिक, आध्यात्मिक, बौद्धिक आदि विकास, अभिप्रेरणा, स्मरण तथा विस्मरण, रुचि अभिक्षमताएँ , अभिवृत्तियां, अवधान, निर्देशन, समूह का मनोविज्ञान, अनुशासन, विशिष्ट बाल पालन, बाल अपराध, सृजनात्मकता, समायोजन, उत्प्रेरणा, मापन एवं मूल्यांकन, समस्या समाधान, कल्पना, अधिगम संवेग आदि का समावेश है। यह सूची अभी तक अपूर्ण है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मनोविज्ञान (Psychology)शब्द की उत्पत्ति यूनानी भाषा के दो शब्दों _____ तथा_____ से हुई है।
2. सत्रहवीं शताब्दी में मनोविज्ञान को _____ या _____ का विज्ञान कहा गया।
3. विलियम जेम्स द्वारा दी गई मनोविज्ञान की परिभाषा दीजिए।
4. 20वीं शताब्दी के मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को _____ का विज्ञान कहना प्रारम्भ किया।

1.5 मनोविज्ञान के सम्प्रदाय (Schools of Psychology)

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मनोविज्ञान के दर्शनशास्त्र से अलग होने की प्रक्रिया में मनोविज्ञान के कई सम्प्रदाय सामने आए। मनोविज्ञान के सम्प्रदाय से तात्पर्य मनोवैज्ञानिकों के ''किसी ऐसे समूह से है जो मनोविज्ञान के अध्ययन के लिए एक समान विचारधारा तथा विधियों का अनुसरण करते हैं। संरचनावाद, कार्यवाद, व्यवहारवाद, गेस्टाल्टवाद तथा मनोविश्लेषणवाद कुछ ऐसे ही प्रमुख मनोवैज्ञानिक सम्प्रदाय रहे हैं। मनोविज्ञान के इन सम्प्रदायों ने व्यवहार के अध्ययन सम्बंधी विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रभावित किया है। आगे मनोविज्ञान के कुछ प्रमुख सम्प्रदायों को संक्षेप में प्रस्तुत किया जा रहा है।

1. संरचनावाद (Functionalism):

मनोविज्ञान के संरचनावाद सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियन वुण्ट नामक जर्मन मनोवैज्ञानिक इन्होंने सन् 1879 में मन का व्यवस्थित ढंग से अध्ययन करने के उद्देश्य से लिपजिंग में विश्व की प्रथम मनोविज्ञान प्रयोगशाला स्थापित करके मनोविज्ञान को एक स्वतंत्र विज्ञान का दर्जा दिलाया। वुण्ट ने प्रारम्भ में संवेदना के ऊपर अध्ययन किए। उनके अध्ययनों के उपरान्त यूरोप तथा अमेरिका में अनेक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाएँ खुली। वुण्ट तथा उसके सहयोगियों ने अन्तदर्शन विधि का प्रयोग करके प्रयोगशालाओं में अध्ययन किए। वुण्ट तथा उनके अनुयायियों को संरचनावादी कहा जाता है। इसके अनुसार जटिल मानसिक अनुभव वास्तव में संरचनाएँ होती हैं जो अनेक सरल मानसिक

स्थितियों से मिलकर बनी होती हैं। ऐसा लगता है कि संरचनावादी रसायनशास्त्र में रासायनिक यौगिकों को रासायनिक तत्वों में विभक्त करके अध्ययन करने की प्रक्रिया से प्रभावित थे। उनका विचार था कि जटिल मानसिक अनुभवों को संरचनाओं को खोजकर मनोविज्ञान का अध्ययन किया जा सकता है। एडवर्ड, बेडफोर्ड तथा विचनर जैसे मनोवैज्ञानिक वुण्ट के प्रमुख सहयोगी थे।

आधुनिक समय में संरचनावाद की अत्यंत सीमित उपयोगिता है। प्रक्रिया के स्थान पर केवल संरचना पर ध्यान देना सम्भवतः संरचनावाद की सबसे बड़ी कमी है। अन्तर्दर्शन विधि में वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता तथा वैधता की कमी के कारण संरचनावादियों के निष्कर्षों की प्रमाणिकता सिद्ध नहीं हो पाती है।

2. प्रकार्यवाद :

मनोविज्ञान के प्रकार्यवाद सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियम जेम्स (William James) थे। जैम्स, डार्विन (Darwin) के विकासवाद सिद्धान्त (Theory of evolution) से प्रभावित थे तथा उन्होंने मन के अध्ययन में जीव विज्ञान की प्रवृत्ति को अपनाया। इनका मानना था कि व्यक्ति वातावरण के साथ समायोजन करने में मानसिक अनुभवों का उपयोग करता है। वस्तुतः प्रकार्यवादियों का मुख्य बल अधिगम प्रक्रिया तक केन्द्रित था। जॉन डीवी (John Dewey) नामक प्रसिद्ध अमरीकन दार्शनिक तथा शिक्षाशास्त्री प्रकार्यवादी सम्प्रदाय के प्रमुख समर्थक थे। जैम्स रोलैन्ड एन्जिल (James Roland Engil), जे.एन. कैटिल (J.N. Cattell) ई.एल. थॉर्नडाइक(E.L. Thorndike) तथा आर.एस. वुडवर्थ (R.S. Woodworth) जैसे विचारकों ने प्रकार्यवादी विचारधारा को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इस सम्प्रदाय में पाठ्यक्रम की विषयवस्तु शिक्षण विधियाँ तथा मापन तथा मूल्यांकन प्रक्रिया की कार्यपरकता पर अधिक बल दिया। प्रश्नावली, अनुसूची तथा मानसिक परीक्षण जैसे वस्तुनिष्ठ उपकरण प्रकार्यवाद की ही देन हैं।

3. व्यवहारवाद Behaviorism:

बीसवीं शताब्दी के दूसरे एवं तीसरे दशक में मनोविज्ञान के व्यवहारवादी सम्प्रदाय का विकास हुआ। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान अमेरिकन मनोवैज्ञानिकों के एक समूह ने मनोविज्ञान कोव्यवहार के विज्ञान के रूप में स्वीकार किया। जान0 बी0 वाटसन (John B. Watson, 1878-1956) इस समूह के प्रवर्तक थे। व्यवहार की विचारधारा को मानने के कारण इस समूह के मनोवैज्ञानिकों को व्यवहारवादी कहा जाता है। व्यवहारवादियों ने क्लार्क हल (Clark Hull) एडवर्ड टालमैन (Edward Tolman) बी.एफ. स्किनर (B.F. Skinner) जैसे मनोवैज्ञानिकों पर अमिट छाप छोड़ी। व्यवहारवादियों ने वृद्धि तथा विकास की प्रक्रिया में वंशानुक्रम की भूमिका को पूर्णरूपेण नकारते हुए केवल वातावरण के महत्व को स्वीकार किया।

अधिगम अभिप्रेरणा तथा पुनर्बलन पर जोर देना व्यवहारवादियों की एक प्रमुख विशेषता थी। शिक्षण-अधिगम के क्षेत्र में व्यवहारवाद का व्यापक प्रभाव पड़ा।

4. समग्रवाद Gestaltism:

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में जर्मनी में मनोविज्ञान के समग्रवाद नामक सम्प्रदाय का उद्भव हुआ। गेस्टाल्ट (Gestalt) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पूर्णाकार (pattern) अथवा व्यवस्थित समग्र (Organized Whole) है। मैक्स वर्दीमर (Max Wertheimer, 1880-1943) कुर्ट कोफ्का (Kurt Kafka, 1886-1941) कुछ प्रमुख गेस्टाल्टवादी थे। इनके अनुसार अनुभव तथा व्यवहार को अलग-अलग हिस्सों में करके अध्ययन नहीं किया जा सकता। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अवयवों की तुलना में सम्पर्क अनुभव अधिक महत्वपूर्ण होता है। इन्होंने सीखने में अन्तर्दृष्टि (Insight) की भूमिका पर अधिक जोर दिया। गेस्टाल्ट मनोविज्ञान के अनुसार प्राणी किसी भी वस्तु या परिस्थिति को समग्र रूप में देखता है न कि इसमें सम्मिलित तत्वों के समूह के रूप में। यही कारण है कि किसी समस्या के समाधान के समय अन्तर्दृष्टि की प्रमुख भूमिका रहती है। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार समस्या को सग्रम रूप में देखेते समय उसके विभिन्न अंगों के बीच के अनोखे सम्बन्धों एवं अन्तर्क्रियाओं को पहचानना ही अन्तर्दृष्टि है। उनके अनुसार यह अन्तर्दृष्टि ही समस्या का तत्काल समाधान प्रस्तुत करती है।

अंतर्दृष्टि के अभाव में व्यक्ति समस्या का समाधान करने में असफल रहता है। गेस्टाल्टवादी सीखने के उद्देश्यों तथा अभिप्रेरणा पर विशेष जोर देते हैं। व्यवस्थित पाठ्यक्रम निर्माण, अन्तर्विषयी अभिगम, शिक्षा के उद्देश्यों तथा अभिप्रेरणा पर बल गेस्टाल्टवाद की देन हैं।

5. मनोविश्लेषणवाद Psychoanalysis:

मनोविज्ञान के अन्य सम्प्रदायों से मनोविश्लेषणवाद का प्रारम्भ बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud, 1856-1939) इसके जनक थे। इन्होंने अचेतन मानसिक प्रक्रियाओं (Unconscious mental processes) पर जोर देते हुए कहा कि द्वंद्वों (**conflicts**) तथा मानसिक व्यतिक्रम (**Mental Disorder**) के अधिकांश मुख्य कारण अचेतन में छिपे रहते हैं। अचेतन के अध्ययन के लिए फ्रायड ने मनोविश्लेषण की एक नई प्रविधि का अविष्कार किया जो मुख्यतः मुक्त साहचर्य वाले विचार प्रवाह (**Freely associated stream of thoughts**) तथा स्वप्न विश्लेषण (**Dream analysis**) पर आधारित है। काफी लम्बे समय तक मनोविश्लेषणवाद का बोलबालारहा एवं इस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण अध्ययन किए गए । अल्फ्रेड एडलर तथा कार्ल जुंग ने कुछ संशोधनों के साथ परम्परागत मनोविश्लेषणवाद के विचारों को आगे बढ़ाने में विशेष योगदान किया। मनोचिकित्सा से अधिक सम्बन्धित होने के कारण मनोविश्लेषणवाद ने शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष योगदान नहीं दिया। मनोविश्लेषणवाद बच्चों के विकास की अवस्थाओं को समझने में महत्वपूर्ण ज्ञान प्रस्तुत करता है।

6. मानवतावादी Humanistic:

वर्तमान समय में मनोविज्ञान के अध्ययन में मानवतावादी दृष्टिकोण (**Humanistic View**) तथा संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (**Cognitive view**) पर अधिक जोर दिया जाता है। मॉस्लो, रोजर्स, आलपोर्ट आदि मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान में मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने पर जोर दिया। मानवतावादी विचारधारा में मानव को यन्त्रवत नहीं माना जाता हैं वरन उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने वाले तथा वातावरण के साथ अनुकूलन करने में समर्थ जीवधारी के रूप में स्वीकार किया जाता है। इस विचारधारा में व्यक्तित्व के महत्व को स्वीकार करते हुए स्वतंन्त्र इच्छा, वैयक्तिक विभिन्नता एवं व्यक्तिगत मूल्यों के अस्तित्व पर जोर दिया जाता है। मनोविज्ञान का संज्ञानात्मक दृष्टिकोण (**Cognitive view**) वातावरण के साथ अनुकूलन में संज्ञानात्मक योग्यताओं तथा प्रक्रियाओं के अध्ययन पर जोर देता है। एडवर्ड टालमैन (Edward Tolman) तथा ज्याँ पियाजे (**Jean Piaget**) जैसे संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों के द्वारा इस दिशा में अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य किया गया है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. मनोविज्ञान के _____ सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक विलियन वुण्ट नामक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे।
6. मनोविज्ञान के प्रकार्यवाद सम्प्रदाय के प्रमुख प्रवर्तक _____ थे।
7. _____ जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पूर्णाकार अथवा व्यवस्थित समग्र है।
8. मनोविश्लेषणवाद के जनक _____ थे।

1.6 सारांश

इस इकाई में हमने मनोविज्ञान के विकास के क्रमिक ऐतिहासिक परिदृश्य का अवलोकन किया कि दर्शनशास्त्र का अंग मनोविज्ञान पहले आत्मा का विज्ञान रहा है फिर यह मस्तिष्क के विज्ञान के रूप में परिवर्तित होता हुआ चेतना के विज्ञान के रूप में परिवर्तित होकर अन्त में व्यवहार के विज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। मनोविज्ञान के क्रमिक विकास का प्रस्तुतीकरण वुडवर्थ के कथन से अधिक स्पष्ट होता है। जिसमें उन्होंने साहित्यिक भाषा में कहा कि "सबसे पहले मनोविज्ञान ने अपनी आत्मा का त्याग किया फिर उनने अपने मन/मस्तिष्क का त्याग किया। उसके बाद उसने अपनी चेतना का त्याग, आज वह व्यवहार की विधि को स्वीकार करता है" मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाएँ विभिन्न समयों पर विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने दी है। विद्यार्थी भी शिक्षा मनोविज्ञान से लाभ प्राप्त कर अपना संवेगात्मक तथा शारीरिक तथा मानसिक विकास संतुलित रूप से कर सकते हैं। शिक्षा मनोविज्ञान अनुशासन स्थापना की नई विधियाँ सुझाता है। मूल्यांकन की सही समझ विकसित करता है। शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में सहयोगी है तथा विद्यालयों में शैक्षिक-पर्यावरण निर्मित करने में सहयोगी है।

1.7 शब्दावली

1. मनोविज्ञान- व्यवहार एवं अनुभूति का विज्ञान
2. गेस्टाल्ट - जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ पूर्णाकार (pattern) अथवा व्यवस्थित समग्र है।

1.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. Psyche**,** logos
2. मन, मस्तिष्क
3. **विलियम जेम्स**'' मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा यह हो सकती है कि यह चेतना की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन और व्याख्या करता है।
4. व्यवहार
5. संरचनावाद
6. विलियम जेम्स (William James)
7. गेस्टाल्ट
8. सिगमण्ड फ्रायड

1.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. चौबे, एस.पी. तथा चौबे, ए. (2007) शैक्षिक मनोविज्ञान के मूल आधार, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. भटनागर, सुरेश (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
3. श्रीवास्तव, ज्ञानानन्द प्रकाश (2002) शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली कन्सैप्ट पब्लिकेशन
4. शुक्ल, ओ.पी. (2002) शिक्षा मनोविज्ञान लखनऊ, भारत प्रकाशन,
5. सिंह शिरीषपाल (2010): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, आर. लाल.।
6. Child, D (1975): Psychology and the teacher. London; Holt Rinehart and Winston.
7. Garret HE. (1982): General Psychology. New Delhi Eurasia. Publishing house Pvt. Ltd.
8. Soreson, H (1964): Psychology in Education. New York: Mc Graw-hill Book co.
9. Mathur, S.S. (1977): Educational Psychology. Agra, Vinod Pustak Mandir.
10. Mitzel, H.E. (1982): Encyclopedia of Educational Research: London. The free press

1.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. मनोविज्ञान से आप क्या समझते हैं? मनोविज्ञान की परिभाषा दीजिए।
2. मनोविज्ञान के अर्थ एवं विषय क्षेत्र की व्याख्या कीजिए।
3. मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। स्पष्ट कीजिए।
4. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए-
    a. संरचनावाद
    b. गेस्टाल्टवाद
5. मनोविज्ञान के विकास को ऐतिहासिक परिदृश्य में स्पष्ट कीजिए।

इकाई 2- शैक्षिक मनोविज्ञान का अर्थ, प्रकृति तथा क्षेत्र

Educational Psychology:- Meaning , Nature and Scope

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 शैक्षिक मनोविज्ञान की परिभाषाएँ
2.4 शैक्षिक मनोविज्ञान का अर्थ
2.5 शैक्षिक मनोविज्ञान की प्रकृति
2.6 शैक्षिक मनोविज्ञान का क्षेत्र
2.7 शिक्षकों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता
2.8 शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता
2.9 शिक्षा व्यवस्था के लिए शैक्षिक मनोविज्ञान की उपयोगिता
2.10 शैक्षिक मनोविज्ञान की सीमाएँ
2.11 सारांश
2.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.14 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

आजकल शिक्षा सर्व सुलभ और सर्वव्यापी रूप ले चुकी है। पहले कुछ व्यक्ति ही पढ़े लिखे हुआ करते थे। आज शिक्षा सवर्जन हिताय तथा सर्वजन सुखाय है। पहले शिक्षा का कार्य केवल सूचनाएँ प्रदान करना था। आज शिक्षा का कार्य व्यक्ति की अन्तर्निहित क्षमताओं का संतुलित, स्वाभाविक तथा प्रगतिशील विकास करना है, जिससे अध्ययनकर्ता एक सफल सामाजिक प्राणी के रूप में विकसित हो सके। इस सब के लिए आवश्यक है कि अधिगमकर्त्ता निष्क्रिय श्रोता मात्र न रह कर सक्रिय होकर अपना विकास करे। शिक्षक का यह दायित्व है कि वह बालक की शारीरिक तथा मानसिकयोग्यताओं, अभिरुचियों, अभिक्षमताओं, जन्मजात शक्तियों के स्वाभाविक विकास में योगदान प्रदान करके तथा उसे समाज के लिए एक उपयोगी नागरिक के रूप में विकसित होने का अवसर एवं सहयोग प्रदान करे। इस प्रकार का सहयोग अध्यापक तभी प्रदान कर सकता है, जबकि वह अध्ययनकर्ता के मनोविज्ञान को

जानता हो। एडम्स ने तो यहाँ तक कह दिया है कि शिक्षक के अपने विषय की अपेक्षा शिक्षार्थी के सम्बन्ध में जानना
अधिक महत्वपूर्ण है।

सभी शिक्षाशास्त्री यह मानते हैं कि शिक्षाशास्त्र और मनोविज्ञान में घनिष्ठ सम्बन्ध है। मनोविज्ञान के बिना शिक्षण-प्रक्रिया सुचारू रूप से न तो चल सकती है और न ही सफल हो सकती है। जिसके फलस्वरूप शिक्षा मनोविज्ञान का जन्म हुआऔर अब शिक्षा मनोविज्ञान एक अलग शास्त्र (Discipline) के रूप में विकसित हो चुका है। आगे के पृष्ठों में हम मनोविज्ञान के ऐतिहासिक-परिदृश्य, मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाओं तथा शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगिता का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप :-

1. शिक्षा मनोविज्ञान को परिभाषित कर सकेंगे।
2. शिक्षा मनोविज्ञान का शिक्षा से सम्बन्ध समझ सकेंगे।
3. शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता का वर्णन कर सकेंगे।

2.3शैक्षिक मनोविज्ञान की परिभाषा Definitions of Educational Psychology

स्किनर:''शिक्षा मनोविज्ञान ,मनोविज्ञान की वह शाखा है जो की शिक्षण व अधिगम से सम्बंधित है''

Education Psychology is that branch of Psychology which deals with teaching and learning". -**B.F. Skinner.**

नॅल तथा अन्य: ''शैक्षिक मनोविज्ञान शैक्षिक परिस्थिति में मानव के व्यवहार से सम्बन्धित है। ''

Educational Psychology deals with the behavior of human being in educational situations." **Null & Others.**

क्रो तथा क्रो: "शिक्षा मनोविज्ञान, व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तथा सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करता है।''

"Education Psychology describes and explains the learning experiences of individual from birth through old age."**Crow and crow**

सॉरे व टेलफोर्ड:'' शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य सम्बन्ध सीखने से है। यह मनोविज्ञान का वह क्षेत्र है जिस का मुख्य सम्बन्ध शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की वैज्ञानिक खोज से है। '

"The major concern of educational psychology is learning it is that field of psychology which is primarily concern with the scientific investigation of the psychological aspects of education" **- Sowrey and Telford**.

वाल्टर बी. कालेस्निक: शैक्षिक मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के उन तथ्यों और सिद्धान्तों का अध्ययन है, जो शिक्षा प्रक्रिया की व्याख्या करने तथा सुधारने में सहायक होते हैं। इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान दो क्रियाओं-शिक्षा तथा मनोविज्ञान के वैज्ञानिक ज्ञान का पिण्ड है।''

Education psychology is the study of those facts and principles of psychology which help to explain and improve the process of education. Educational Psychology thus is the body of scientific knowledge about two activities – Education and psychology**". Walter B. Kalesnik.**

□नसाइक्लोपीड्या ऑफ □डूकेशनल रिसर्च: शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध सीखने के मानवीय तत्व से है। यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में किए गए प्रयोगात्मक कार्य द्वारा प्राप्त प्रत्ययों को शिक्षा में लागू किया जाता है। परन्तु यह ऐसा भी क्षेत्र है जिसमें ऐसे प्रत्ययों की शिक्षा में व्यवहारिकता की परीक्षा तथा शिक्षा की विशिष्ट रुचि के अध्ययन प्रकरणों को निर्धारित करने के लिए प्रयोगात्मक कार्य किया जाता है। यह सीखने वाले तथा सीखने सिखाने की विभिन्न शाखाओं, जो कि बालक को अधिकतम सुरक्षा, संतोष के साथ समाज से तादात्म स्थापित करने में सहायता देने हेतु निर्देशित हों, का अध्ययन शिक्षा मनोविज्ञान करता है।

"Educational Psychology is concerned with the human factor in learning. It is field in which concepts derived from experimental work in laboratories are applied to education, but it is also a field in which experimentation is carried out to test the applications of such concepts to education and to round out the study of topics of crucial interest to teachers. It is the study of the learners and of the learning teaching process in the various ramifications, directed towards helping the child come to terms with society with the maximum of security and satisfaction**." - Encyclopedia of Educational Research.**

कॉलसनिक के अनुसार-''शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों व परिणामों का शिक्षा के क्षेत्र में अनुप्रयोग है।''

"Educational psychology is the application of findings and theories of psychology in the field of education." **W.B. Kolesnik**

ट्रो के अनुसार–"शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक परिस्थितियों के मनोवैज्ञानिक पक्ष का अध्ययन है"।

Educational Psychology is the study of the psychological aspects of educational situations." **Prof. Trow**

स्टीफन के अनुसार-"शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक विकास का क्रमबद्ध अध्ययन है"।

"Educational Psychology is a systematic study of educational growth**." J.M. Stephon**

2.4शैक्षिक मनोविज्ञान का अर्थ Meaning of Educational Psychology

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ शिक्षा से सम्बन्धित मनोविज्ञान है। शिक्षा, मानव व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ व्यक्ति तथा समाज के व्यवहार को परिमार्जित करना है।

शिक्षा के तीन रूप हैं- औपचारिक, अनौपचारिक व निरौपचारिक इन तीनों के द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाए जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि व्यवहार परिमार्जन चाहे किसी भी माध्यम से किया जाए, किसी भी परिस्थिति में किया जाए यदि वहाँ पर मनोविज्ञान के नियमों, सिद्धान्तों, सूत्रों, अनुसंधानों से निस्रत निहितार्थों का प्रयोग किया जाए तो उसे शिक्षा मनोविज्ञान कहते हैं।

बी.फ्र. स्किनर के अनुसार, ''शिक्षा मनोविज्ञान अपना अर्थ शिक्षा तथा मनोविज्ञान से ग्रहण करता है। शिक्षा सामाजिक प्रक्रिया है तथा मनोविज्ञान व्यवहार सम्बन्धी विज्ञान है। Educational psychology takes its meaning from education, a social process and from psychology, a behavioral science." –B.F. Skinner.

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ है-

1. शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र-मानव व्यवहार है।
2. शिक्षा मनोविज्ञान-खोज तथा निरीक्षणों से प्राप्त तथ्यों का संग्रह है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक समस्याओं का समाधान अपनी स्वयं की पद्धति से करता है।

2.5 शैक्षिक मनोविज्ञान की प्रकृति Nature of Educational Psychology

शिक्षा मनोविज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। यह विज्ञान अपनी विभिन्न खोजों के लिए वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग करता है तथा वैज्ञानिक विधियों से प्राप्त निष्कर्षों का उपयोग शैक्षिक समस्याओं के समाधान के लिए करता है। विभिन्न तथ्यों के आधार पर यह विज्ञान छात्रों की उपलब्धियों के सम्बन्ध में भविष्य कथन कर सकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान के तथ्य, सिद्धान्त, नियम सभी वैज्ञानिक विधियों द्वारा परीक्षित होते हैं।, अतः इस विज्ञान की प्रकृति वैज्ञानिक है। इस सम्बन्ध में क्रो एण्ड क्रो ने लिखा है- "शिक्षा मनोविज्ञान को व्यावहारिक विज्ञान माना जा सकता है, क्योंकि यह मानव व्यवहार के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विधियों, निश्चित किए गए सिद्धान्तों और तथ्यों के आधार पर सीखने की व्याख्या करता है"।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ लिखिए।
2. स्किनर द्वारा दी गई शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा लिखिए।
3. बाल्टर बी. कालेस्टिनक द्वारा दी गई शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा को लिखिए।
4. "शिक्षा मनोविज्ञान, व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तथा सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करता है।'' यह परिभाषा किसके द्वारा दी गई है?

2.6शैक्षिक मनोविज्ञान का क्षेत्र Scope of Educational Psychology

शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र को सीमित करना एक कठिन कार्य है, क्योंकि मनोविज्ञान का यह क्षेत्र तीव्र गति से विकासमान है। नित नए अनुसंधानों के माध्यम से शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र विकसित हो रहा है। आर्चर का कथन इस की पुष्टि करता है। **आर्चर** ने कहा कि - यह बात उल्लेखनीय है कि जब हम शिक्षा मनोविज्ञान की नई पाठ्य-पुस्तक खोलते हैं, तब हम यह नहीं जानते कि उसकी विषय सामग्री सम्भवतः क्या होगी।''

शिक्षा मनोविज्ञान के मुख्य शिक्षा सम्बन्धी प्रकरणों को मोटे रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है-

1. अधिगमकर्त्ता के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अध्ययन,
2. अधिगमकर्त्ता की बौद्धिक क्षमता का अध्ययन,
3. अधिगमकर्त्ता की रुचियों का अध्ययन,
4. अधिगमकर्त्ता की संवेगात्मक स्थिति का अध्ययन,
5. अध्यापक के मानसिक स्वास्थ्य का अध्ययन,
6. अधिगमकर्त्ताओं के समूह का उपर्युक्त के सम्बन्ध में अध्ययन,
7. सीखने तथा सिखाने की क्रियाओं का अध्ययन,
8. अधिगमकर्त्ताओं के वैयक्तिक विभेदों का अध्ययन,
9. बच्चों तथा किशोरों की विभिन्न समस्याओं का अध्ययन,
10. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए व्यूहरचना का अध्ययन,
11. विशिष्ट बालकों के लिए विशिष्ट शिक्षण विधियों का अध्ययन,

12. विषयों के चयन के लिए आधारभूत जानकारी का अध्ययन,
13. शिक्षण की विधियों, तकनीकों एवं पद्धतियों का अध्ययन,
14. मापन एवं मूल्यांकन के लिए प्रयुक्त विधियों के उपयोग का अध्ययन,
15. समूह को समाजोपयोगी कार्य करने की अभिप्रेरणाओं की विधियों की उपयोगिताओं का अध्ययन,
16. शिक्षक विधियों को युक्तित्युक्त करने की विधियाँ ,
17. ऐसी शिक्षण विधियों को अपनाने के लिए अध्ययन करना, जिससे अधिगमकर्त्ता कम परिश्रम से तनावरहित रह कर स्वगति से शत-प्रतिशत अधिगम कर सके
18. अधिगमकर्त्ता की आवश्यकता के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्माण करना।

ऊपर की पंक्तियों में प्रस्तुत किए गए बिन्दु अन्तिम नहीं है, इस सूची को विस्तृत किया जा सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि ''शिक्षण प्रक्रिया का नियोजन, संचालन तथा परिमार्जन पूर्णरूपेण शिक्षा मनोविज्ञान की कृपा पर आधारित है।''लिण्डग्रेन ने शिक्षा के सम्बन्ध में तीन केन्द्रीय क्षेत्रों का वर्णन किया जो कि शिक्षा मनोवैज्ञानिकों तथा शिक्षकों के मतलब के हैं। यह हैं-सीखने वाला, सीखने की प्रक्रिया तथा सीखने की स्थिति

सीखने वाला (Learner) शैक्षिक प्रक्रिया में सीखने वाले का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है। कोई भी शिक्षण बिना शिक्षार्थी के नहीं हो सकता। सीखने वाले से हमारा तात्पर्य शिक्षार्थी से है जो अलग-अलग सामूहिक रुप से कक्षा समूह बनाते हैं। कक्षा-कक्ष में शिक्षण बहुत बड़ी सीमा तक निर्भर होता है- विद्यार्थियों के व्यक्तित्व, विकास के स्तरों एवं उनकी मनोवैज्ञानिक समस्याओं पर। अतएव प्रभावशाली शिक्षण के लिए इन सबका ज्ञान तथा अनेक अन्य योग्यताओं तथा निहितार्थओं की जानकारी की आवश्यकता होती है। इन सबसे शिक्षा-मनोविज्ञान गहरा सम्बन्ध रखता है।

लिण्डग्रेन के अनुसार, सीखने की प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन लाते हैं, अपने कार्य सम्पन्न करने में सुधार लाते हैं, अपने चिन्तन का पुनर्संगठन करते हैं अथवा व्यवहार करने के तथा नई अवधारणाओं और सूचना प्राप्त करने के नए मार्गों की खोज करते हैं। वास्तव में जो कुछ भी व्यक्ति करते हैं जब वह सीखते हैं उसे सीखने की प्रक्रिया कहा जाता है। इस प्रक्रिया का निरीक्षण प्रत्यक्ष रूप से कर सकते हैं, उस समय जब विद्यार्थी लिखना सीख रहा है, गणना कर रहा है अथवा बातचीत कर रहा है तब इसका अप्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण कर सकते हैं- प्रत्यक्षीकरण करने में, चिन्तन में या स्मरण करने में। शिक्षा मनोवैज्ञानिक इस पर ध्यान देते हैं कि सीखने की प्रक्रिया कैसे होती है? वह यह पता करना चाहते हैं कि क्या होता है जब एक व्यक्ति सीखता है, वह क्यों सीखता है? शिक्षक क्यों चाहते हैं कि वह सीखे तथा शिक्षक क्या चाहते हैं कि वह नहीं सीखें।सीखने की स्थिति (Situation of Learning) यह उस वातावरण का संकेत देती हैं जिससें सीखने वाला अपने को उस समय पाता है जब सीखने की प्रक्रिया हो रही है। शिक्षक की अभिवृत्ति कक्षा-कक्ष की सजावट, विद्यालय का संवेगात्मक परिवेश तथा जो रुचि समुदाय विद्यालय के कार्यक्रम में लेता है वह सब सीखने की स्थिति के

ही अंश है। वास्तव में यह सब स्थानीय तत्व तथा व्यक्तिगत तत्व जिनके चारों ओर शिक्षण होता है। वह सब सीखने की स्थिति के तत्व हैं। कुछ दशाओं में सीखना सुविधाजनक हो जाता है जैसे कि शिक्षक का प्रेमपूर्ण व्यवहार है, कक्षा का कमरा हवादार और प्रकाशमय है तथा बैठने की सीटें आरामदेह होना, जबकि कुछ अन्य स्थितियों में सीखने में अवरोध हो जाता है जैसे कि वह शिक्षक कठोर है, समुदाय सहानुभूति रहित है और विद्यालय का वातावरण गन्दा है। शिक्षा मनोवैज्ञानिक की रुचि यह पता करने की होती है कि किन दशाओं में सीखना सुविधाजनक है और किनमें उसमें अवरोध आ जाता है तथा ऐसा क्यों होता है तथा कैसे शिक्षा की अच्छी दशाओं को बनाया जा सकता है।

2.7 अध्यापक के लि शिक्षा–मनोविज्ञान का महत्व

अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान के महत्व को हम निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर जान सकते हैं-

1. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक की शैक्षणिक समस्याओं के प्रति सम्यक दृष्टिकोण प्रदान करता है तथा उपयुक्त अध्यापक-विधि से अवगत कराता है। अध्यापक शिक्षा मनोविज्ञान के द्वारा यह जानकारी प्राप्त करना है कि बालक किस सीमा तक शिक्षा का अर्जन कर सकता है तथा किस सीमा तक उसका सामाजिक व्यवहार सुधारा जा सकता है, और कहाँ तक उसके व्यक्तित्व का समायोजन किया जा सकता है।
2. यह अध्यापक को बालक के विकास के लिए उपयुक्त शैक्षिक वातावरण प्रस्तुत करने में सहायता देता है, जिससे अभीष्ट की प्राप्ति के लिए बालक के व्यवहार में इच्छित परिवर्तन लाया जा सके। अध्यापक ऐसे पाठ्यक्रम और अध्यापन-विधि को चुनता है।
3. बालक के व्यवहार का प्रयोजन समझने और उसके प्रति सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने में शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को सहायता देता है जो अध्यापक बालकों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण और समदर्शी होता है, वहीउनके व्यवहार का सम्यकऔर सूक्ष्म विश्लेषण कर सकता हैतथा उन्हें सुधारने के लिए उपयुक्त विधियाँ अपना सकता है।
4. शिक्षा मनोविज्ञान द्वारा प्रदत्त अन्तर्दृष्टि से अध्यापक बालक की मानसिक योग्यता, रुचि और रुझान के अनुसार उसके लिए विषयवस्तु चुनता है और उसके शिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था करता है।
5. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को यह अनुभव करने में सहायता प्रदान करता है कि शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक सम्बन्धों का सर्वाधिक महत्व है। इसलिए अध्यापक ऐसे उपयुक्त कार्यों का आयोजन करता है, जिससे बालकों में सामाजिक भावना का विकास हो। वह विद्यालय को सामूहिक कार्यों में भाग लेने के लिए उत्प्रेरित करता है और उनका सहयोग देता है।
6. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को अपने कार्य भार और उत्तरदायित्व को भली-भाँति समझने में सहायता देता है। वह अध्यापक को ऐसी मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है जिससे वह

अपने कार्य में आने वाली समस्याओं का भली-भाँतिसामना कर उनका निदान ढूंढ सके। इस अंतर्दृष्टि से अध्यापक में वैज्ञानिक दृष्टिकोण आता हैं, जिससे वह शिक्षण-कार्य में आगत समस्याओं को सुलझाता और उनका सही हल ढूंढ़ता है।

7. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को ऐसी पद्धतियों और प्रविधियों से अवगत कराता है, जिनके द्वारा वह अपने और दूसरों के व्यवहार का विश्लेषण कर सके। वह विश्लेषण उसके व्यक्तित्व के समायोजन के लिए परम आवश्यक है। यह दूसरों को उनके व्यक्तित्व की अभिवृद्धि और समायोजन में सहायता पहुँचा सकता हैं।
8. वैयक्तिक विभेदों का ध्यान रखते हुए बालकों का उचित मार्ग-प्रदर्शन करने और उपयुक्त कार्यक्रमों के लिए सामग्री जुटाने में शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को सहायता पहुँचाता है।
9. शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्धकों को प्रबन्ध और नियोजन के कार्यों में मार्ग प्रदर्शित करता है तथा शिक्षण की व्यवस्था करने में मनोवैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करता है।
10. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को उन उत्कृष्ट विधियों से अवगत कराता है, जिनके द्वारा बालक की उपलब्धियों का सोद्देश्य मापन और उनका मूल्यांकन किया जाता है। तथा बालक की सहज-प्रज्ञा का भी सही-सही आकलन किया जा सकता है।
11. यह बालक को शिक्षा देने की उत्तम विधियों से अध्यापक को सुसज्जित करता है तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से सर्वश्रेष्ठ है, उसे अपनाने के लिए संकेत करता है। शिक्षा मनोविज्ञान की किसी पुस्तक में लेखक का यही प्रयास रहता है कि वह मनोविज्ञान के तथ्यों और सामान्यीकरण को इस प्रकार प्रस्तुत करे, जिससे शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों की योग्यताओं एवं कुशलताओं में वृद्धि हो।
12. लिण्डग्रेन (Lindgren, Henery Clay) के शब्दों में, ''मनोविज्ञान ऐसा विज्ञान है। जिसका सम्बन्ध मानव आचरण के अवबोध से है और शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षकों को शिक्षण तथा अधिगम समस्याओं को समझने में सहायता करने वाला व्यवहारिक विज्ञान है।''

    स्किनर (Skinner) ने भी शिक्षकों के लिए शिक्षा-मनोविज्ञान की उपयोगिता पर बल देते हुए कहा है-''शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापकों की शिक्षा की आधारशिला है। उसका औचित्य इसी में है कि वह अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध हो।''

    जे.□म. स्टीफन्स(J.M. Stephen) का कथन है कि ''शैक्षिक विकास की प्रगति में अध्यापक का अत्यधिक योगदान होता है। शिक्षा-मनोविज्ञान का अध्ययन अध्यापक को सभी महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व निभाने में समर्थ बनाता है।'' शिक्षक, शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन से अपने शिक्षण को किस प्रकार प्रभावी बना सकता है अथवा शिक्षा मनोविज्ञान एक अच्छा अध्यापक बनने में सहायता करता है।
13. सामाजिकता प्राप्त करने में (To get Social)- मनोविज्ञान के ज्ञान के आभाव में शिक्षक द्वारा मूल्यांकन करना सम्भव नहीं है। शिक्षक मनोविज्ञान के परीक्षण निर्मित कर उनसे बालकों का

शुद्ध एवं सही मूल्यांकन करना सीखता है। मूल्यांकन के निष्कर्ष के आधार पर ही अध्यापन प्रक्रिया में सुधार सम्भव होते हैं। किन्तु यह सुधार भी मनोविज्ञान के ज्ञान के द्वारा ही किए जा सकते हैं।

14. शैक्षिक परिदृश्यों के अन्तर्गत मनोविज्ञान वर्तमान में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान बहुत आवश्यक है। इसके अध्ययन की सहायता से शिक्षण का कार्य अधिक सरलता, रुचि व क्षमता से हो सकता है। अध्ययन अध्यापन की आवश्यकता, परिस्थितियाँ, पाठ्यक्रम, अध्ययन के तरीके, मूल्यांकन आदि सभी में शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन शिक्षक के लिए लाभप्रद होता है।
15. बालकों की आवश्यकताओं का ज्ञान (Knowledge of Needs of Pupil)- शिक्षा मनोविज्ञान के द्वारा बालकों की आवश्यकताओं का पता चल जाता है। साथ ही उनकी रुचि, योग्यता, क्षमता, आवश्यकता, अभिरुचि आदि का भी पता चल जाता है। इन सभी में बालकों की विभिन्नताओं का ध्यान रखकर ही शिक्षा व्यवस्था व प्रक्रिया रखने का कार्य शिक्षक कर सकेगा।
16. पाठ्यक्रम (Curriculum)- अध्यापक पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय शिक्षा मनोविज्ञान से बहुत प्रभावित होने लगा है। अध्यापक पाठ्यक्रम निर्माण में छात्रों की रुचि योग्यता विकास आदि का ध्यान रखता है। अब यह माना जाने लगा है कि पाठ्यक्रम बालकों के लिए है, न कि पाठ्यक्रम के लिए बालक।
17. शैक्षिक समस्याओं का ज्ञान (Knowledge Educational Problems)- अध्यापक को शिक्षा मनोविज्ञान ने विभिन्न शैक्षिक समस्याओं पर महत्वपूर्ण ज्ञान दिया है। विद्यार्थी अनुशासन हीनता, छात्र असन्तोष, पिछाड़पन, बालापराध आदि। इन समस्याओं के कारण निराकरण के उपाय आदि भी शिक्षा मनोविज्ञान ने ही शिक्षक को दिए हैं।
18. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाएँ (Co- Curriculum Activities)- शिक्षा मनोविज्ञान से प्रभावित होकर ही अध्यापक यह मानने लगे हैं कि पाठ्यक्रम सहभागी क्रियाएँ भी अध्ययन की तरह ही महत्वपूर्ण हैं। इन क्रियाओं को बालकों के सर्वांगीण विकास में आवश्यक माना जाने लगा है।
19. समय-सारणी (Time-Table- अध्यापक के लिए समयसारणी बनाने में भी शिक्षा मनोविज्ञान बहुत उपयोगी है। समय सारणी में कठिन व सरल विषयों का समय निश्चित करने और थकान, विश्राम व अध्ययन को ध्यान में रखकर समय सारणी बनाने की दृष्टि से भी शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक के लिए बहुत उपयोगी है।
20. अध्ययन पद्धति (Teaching Method)- शिक्षा मनोविज्ञान ने अध्ययन पद्धति में बहुत महत्वपूर्ण योगदान दिया है। अध्यापक अपने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं, रुचि आदि को ध्यान में रखकर अध्ययन विधि अपनाता है। शिक्षक को अनेक मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियाँ शिक्षा-मनोविज्ञान ने ही दी हैं।
21. अनुशासन (Discipline)- प्राचीनकाल के दण्ड व्यवस्था के विचार को बदलने का कार्य शिक्षा मनोविज्ञान ने ही किया है। अध्यापक अपने विद्यार्थियों की अनुशासनहीनताको अब दण्ड या

भय की सहायता से दूर नहीं करता बल्कि अनुशासनहीनता के कारणों की गहराई में जाकर उसके स्थाई समाधान का प्रयास करता है। लोकतान्त्रिक अनुशासन के दृष्टिकोण के विकास में शिक्षा मनोविज्ञान का ही योगदान है।

22. मापन एवं मूल्यांकन (Measurement and Evaluation)- अध्यापक द्वारा अपने विद्यार्थियों का मापन एवं मूल्यांकन करने में भी मनोविज्ञान का काफी योगदान रहा है। विद्यार्थियों की योग्यताओं का सही मूल्यांकन और उसी के आधार पर सही निर्देशन का कार्य शिक्षक मनोविज्ञान की सहायता से करने लगा है।
23. शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति (Attainment of Educational Aims)- शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षक व छात्रों को शिक्षा-मनोविज्ञान का काफी योगदान है। जैसा कि स्किनर ने लिखा है, ''शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को जो ज्ञान प्रदान करता है एवं शिक्षक उस ज्ञान के आधार पर शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करता है''

    जी. लेस्टर □ेडर्सनने अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता निम्नलिखित क्षेत्रों के ज्ञान के लिए बताई है:- (1) शिक्षा- मनोविज्ञान के ज्ञान से अध्यापक को शिक्षण सामग्री के चयन तथा उसकी व्यवस्था का ज्ञान होता है। (2) शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान से अध्यापक छात्रों के सीखने की प्रक्रिया का मार्गदर्शन अच्छी तरह से कर सकता है। (3) शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान से अध्यापक को मूल्यांकन की वैज्ञानिक तकनीकों का ज्ञान होता है।
24. हेनरी जी स्मिथ ने अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता निम्नलिखित क्षेत्रों की जानकारी के लिए बताई है- (1) शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान से अध्यापक को छात्रों की प्रकृति, स्वभाव तथा आवश्यकताओं का ज्ञान होता है। (2) शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक को छात्रों के विकास की प्रक्रिया में उत्पन्न अनेक समस्याओं के निराकरण में सहायता प्रदान करता है। (3) शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक को शिक्षा के उदार उद्देश्यों को समझने में सहायता देता है। (4) शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक को छात्रों के व्यवहार में अपेक्षित परिवर्तन लाने की सामर्थ्य प्रदान करता है। (5) शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान अध्यापक की व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि करता है।

2.8 शिक्षार्थियों के लि□ शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता

बालक शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि उसी के लिए यह सब शैक्षिक व्यवस्थाएँ की जाती है। अतः शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों को अपने स्वयं के बारे में जानकारी प्रदान करने का अवसर प्रदान करता है। शिक्षा मनोविज्ञान बालकों को अपने बारे में जानकारी प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता हैं। विशेष रूप से किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक मानसिक तथा संवेगात्मक परिवर्तनों का बोध कराने की त्रुटि रहित विधियों का विकास मनोविज्ञान के माध्यम से किया जा चुका है। इस प्रकरण से सम्बन्धित जानकारी छात्रों की आयुवर्गों के अनुसार पाठ्यक्रम में सम्मिलित की जा रही है। विशेष रूप से कामशिक्षा से

सम्बन्धित जानकारी शरीर में होने वाले संवेगात्मक, शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तनों के रूप में जनसंख्या शिक्षा, एड्स (Aids) तथा पर्यावरण शिक्षा से सम्बन्धित तथा शिक्षा के नए तथा उपयोगी पाठ्यक्रमों की जानकारी आजकल विद्यालयों में दी जाने लगी है।

1. शिक्षण कार्य को सम्पन्न करने के लिए मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रयोग किए बिना सफल शिक्षण किया जाना सम्भव नहीं है। शिक्षण विधियाँ बालकों की आयु, बौद्धिक स्तर, उनके सामाजिक परिवेश के अनुकूल हो, यह शिक्षा मनोविज्ञान समझता है।
2. बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं- जैसे-शैशवावस्था (0-3 वर्ष/पूर्व बाल्य काल 3-6 वर्ष) उत्तर बाल्यकाल (6-12 वर्ष), किशोरावस्था (12-18 वर्ष) प्रौढ़ावस्था (18 या 60 वर्ष), वृद्धावस्था (60 वर्ष से अधिक) में अधिगमकर्त्ताओं के लिए अलग-अलग शिक्षण विधियों का उपयोग किया जाना चाहिए। इस कार्य को विधिपूर्वक पूरा करने के लिए, प्रयोग आधारित शिक्षण विधियाँ अलग-अलग हैं मोंटेसरी, किण्डरगार्टन, अभिक्रमित-स्वाध्याय, दलशिक्षण, प्रयोगशाला विधि, कार्यशाला विधि, सुकराती विधि, प्रोजेक्ट पद्धत्ति, आदि में से किस का प्रयोग किस आयु वर्ग के लिए किया जाए, यह हमें शिक्षा मनोविज्ञान ही बताता है।
3. बाल विकास की विभिन्न अवस्थाओं से प्रत्येक बच्चे को जाना होता है। प्रत्येक आयु वर्ग में बच्चे के व्यवहार में शारीरिक, मानसिक संवेगात्मक परिर्वतन आते हैं। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक अभिभावक तथा अध्यापक इन परिवर्तनों के बारे में जाने। इन परिवर्तनों के बारे में जाने बिना अध्यापक तथा अभिभावक बच्चों के विकास में सहयोगी नहीं हो सकते बल्कि कई बार वे अवरोध पैदा कर देते हैं। जिसके फलस्वरूप बच्चों में-मूत्र असंयम, क्रोधावेश, तुनकमिजाजी, अंगूठा चूसना, नकारात्मकता, रोना-धोना, झूठ बोलना, डरपोकपन, धैर्यहीनता, चोरी करना, दांतों से नाखून काटना, वामहस्तता, शर्मीलापन आदि संवेगात्मक समस्याएँ आ जाती हैं। इन समस्याओं को पनपने न देना शिक्षा मनोविज्ञान की विधियों को प्रयोग करने से सम्भव है इस प्रकार की समस्याओं के समाधान के लिए मनोविज्ञान उपचार की विधियाँ बताता है। जो कि शिक्षक तथा अभिभावक के द्वारा अपनाए जा सकते है।
4. किशोरावस्था को **'स्टेनले हाल'**ने संघर्ष, तूफान, दबाव और तनाव का काल कहा है। इस आयुवर्ग में बालक का जीवन नाजुक दौर से गुजरता है। यह आयुवर्ग जीवन निर्माण का महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस आयुवर्ग में यदि किशोरों के साथ मनोविज्ञान द्वारा बताए गए सिद्धांतों का पालन नहीं किया जाता है तो बच्चे के विकास में बाधा पड़ती है। यदि अध्यापक तथा अभिभावक ठीक ढंग से व्यवहार नहीं करते तो किशोर समाज के लिए कंटक भी बन जाते है। वर्तमान काल में किशोरों में पनपती अनुशासनहीनतातथा विद्रोह तथा असामाजिककार्यों में लिप्त होने का यह महत्वपूर्ण कारक है। अतः किशोर मनोविज्ञान का ज्ञान प्रत्येक गृहस्थ तथा अध्यापक को होना चाहिए।
5. असफलता का भय, आत्मविश्वास की कमी के कारण आता है। आत्मविश्वास में वृद्धि करने का आधार सफलताएँ हैं। मनोविज्ञान हमें बच्चों को सफलताओं का भान कराने की दिशा देता है।

6. मनोविज्ञान बच्चों को दण्ड न देने की दिशा देता है। क्योंकि दण्ड से बच्चे बिगड़ते हैं। जबकि पुरस्कार से बच्चे सुधरते हैं।
7. बच्चों में निहित अच्छाइयों की खोज करें, उनकी अच्छाइयों का सम्मान करें, ऐसा करने पर बुराइयां अपने आप छूट जाती है। यह मत शिक्षा मनोविज्ञान का है।
8. मनोविज्ञान कहता है कि कभी भी बच्चे को निषेधात्मक आदेश नहीं देने चाहिए। (यह न करो, वह न करो आदि) बल्कि सकारात्मक सुझाव देने चाहिए। यह करना अच्छा है, इस तरह से अपनी बात कहनी चाहिए आदि।
9. बच्चे को स्वावलम्बन की शिक्षा दें। परिवार, विद्यालय आदि के लिए कर्त्तव्य का बोध भी कराएँ ।
10. बच्चों के शारीरिक दोषों का निराकरण करना अध्यापकों का दायित्व है।
11. बच्चों में वैयक्तिक विभिन्नताएँ होती है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से बच्चे की बुद्धिलब्धि, अभिरुचि, अभियोग्यताओं के परीक्षण से वैयक्तिक विभिन्नताओं से परिचित होकर उनके अनुकूल शिक्षण विधियों, विषयों का चयन किया जाना चाहिए।
12. मूल्यांकन करना अत्यन्त महत्वपूर्ण इसलिए है क्योंकि इससे विदित होता है कि अध्यापक अपने शिक्षण में कितना सफल हुआ। स्किनर ने लिखा है कि शिक्षा मनोविज्ञान का ज्ञान, शिक्षकके रूप में अपनी स्वयं की कुशलता का मूल्यांकन करने में सहायक होता है।
13. शिक्षा मनोविज्ञान विद्यालय तथा कक्षा में अनुशासन बनाए रखने में सहायक होता है।
14. बच्चों के संर्वागीण विकास में शिक्षा मनोविज्ञान सहायक होता है।
15. मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित दृश्य-श्रव्य सामग्री शिक्षण को सुखद, सरल, सरस तथा उत्प्रेरणा प्रदान करती है, विषय की ओर अधिगमकर्त्ता का ध्यानकर्षण करती है। आनन्ददायक अनुभूति प्रदान करती है। अधिगमकर्त्ता को सक्रिय करती है, अध्यापन के समय की बचत करती है, अध्यापक के कार्य को सरल बनाती है, अधिक समय में पूरी होने वाली क्रियाओं को कम समय में पूरा करने में सहायक होती है। चीनी कहावत है मैं सुनता हूँ-भूल जाता हूँ, देखता हूँ- याद रहता है। करता हूँ- सीख जाता हूँ। इसी लिए आजकल शिक्षण में अधिगम सहायक सामग्रियों अर्थात दृश्य-श्रव्य साधनों का उपयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है। यह सभी साधन शिक्षा मनोविज्ञान के अनुसंधानों पर आधारित हैं।
16. विकलांग बच्चों के शिक्षण के लिए अध्यापकों को नई शिक्षण विधियों से परिचित कराने में शिक्षा मनोविज्ञान का महत्वपूर्ण सहयोग है।
17. शिक्षा मनोविज्ञान बच्चों के समाजिक व्यवहार को संशोधित करने में सहयोग प्रदान करता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान के किन्हीं दो महत्व को लिखिए।

6. शिक्षण कार्य को सम्पन्न करने के लिए मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का प्रयोग किए बिना सफल शिक्षण किया जाना सम्भव नहीं है। (सत्य/असत्य)

2.9 शिक्षा व्यवस्था के लि शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता

शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा व्यवस्था से सम्बन्धित निम्नलिखित निर्णयों में सहायक है-

1. पाठ्यक्रम बालकों की अभिरुचि तथा अभिक्षमताओं के अनुकूल होने के सम्बन्ध में शिक्षा मनोविज्ञान दिशा निर्देश देता है।
2. शिक्षा मनोविज्ञान अनुशासन स्थापन की नवीन विधियों का ज्ञान देता है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान मूल्यांकन की नवीन पद्धतियों को लागू करने में सहयोग एवं दिशा निर्देश प्रदान करता है।
4. शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण में प्राप्त किए जा सकने वाले उद्देश्यों की जानकारी प्रदान करने में तथा आयुवर्गानुसार पाठ्यक्रम के निर्धारण में शिक्षा मनोविज्ञान दिशा निर्देश देता है।
5. विद्यालय के शैक्षिक पर्यावरण की उन्नति के सुझाव देना शिक्षा मनोविज्ञान से ही सार्थक होता है।

2.10 शिक्षा मनोविज्ञान की सीमा

योग्य अध्यापक बनने के लिए उसकी रुचि, मनोवृत्ति, अभ्यास एवं अनुभव की आवश्यकता होती है। शिक्षा मनोविज्ञान तो केवल उसे सूचना एवं ज्ञान प्रदान, करेगा, उसकी योग्यता में वृद्धि, उसके अपने अनुभव इत्यादि पर निर्भर होगी। अतएव शिक्षा मनोविज्ञान की एक महत्वपूर्ण सीमा यह है कि शिक्षा की प्रकृति ऐसी है कि उसमें ज्ञान, सूचना, तथ्यों के संकलन के अतिरिक्त भी अन्य बातों की आवश्यकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की दूसरी सीमा इसके वैज्ञानिक रूप के कारण है। विज्ञान से तथ्य तो प्रकाश में आते हैं, किन्तु उसके द्वारा अन्तिम निर्णय नहीं लिए जा सकते हैं। जैसे, विज्ञान द्वारा अणु शक्ति के उत्पादन इत्यादि का ज्ञान तो प्राप्त हो जाता है, किन्तु इस शक्ति का प्रयोग कैसे हो, इसका निर्णय विज्ञान से न मिलकर समाजशास्त्रीय एवं मानव कल्याण से सम्बन्धित विषयों द्वारा प्राप्त होता है। शिक्षा मनोविज्ञान से भी हमें केवल तथ्यों का पता चलता है। उनके प्रयोग के निर्णय के सम्बन्ध में बहुत सी अन्य बातों का ज्ञान होना भी नितान्त आवश्यक है।

शिक्षा-मनोविज्ञान हमें यह तो बता सकता है कि किस प्रकार का वातावरण किस प्रकार की शिक्षा के लिए उत्तम है, किन्तु वर्तमान स्थिति में वह वातावरण कैसे उत्पन्न किया जा सकता है अथवा उसका निर्माण करना कितना सम्भव है, इसका निर्णय मनोविज्ञान के क्षेत्र से बाहर ही समझा जा सकता है।

हम कह सकते हैं कि किसी समस्या को सुलझाने में विज्ञान अत्यन्त महत्वपूर्ण है और जो तथ्य विज्ञान द्वारा संकलित किए जाते हैं, वे अनेक दशाओं में समस्या-समाधान में मूल होते हैं, फिर भी सम्पूर्ण तथ्य मिलकर भी समस्या के सम्बन्ध में निर्णय लेने की आवश्यकता को नहीं समाप्त कर सकते ।

शिक्षा मनोविज्ञान की तीसरी सीमा इसकी अपनी प्रकृति के कारण है। मनोविज्ञान एक विज्ञान का रूप लिए हुए तो है किन्तु अन्य विज्ञानों से इस बात में भिन्न है इसके तथ्यों को नियमबद्ध क्रमबद्ध रूप में रखना, जैसा कि अन्य विज्ञानों में होता है, अब तक सम्भव नहीं हो पाया है।

भौतिक विज्ञान या रसायनशास्त्र अथवा अन्य प्रकृति-विज्ञान तथ्यों के झुण्ड के झुण्ड को कुछ नियमों, सिद्धान्तों या सामान्यीकरण के रूप में रख देते हैं। एक वैज्ञानिक को इन नियमों इत्यादि को ही स्मरण रखना होता हैऔर वह इस विज्ञान सम्बन्धी जटिल से जटिल समस्या को सुलझा लेता है, किन्तु एक मनोवैज्ञानिक को तथ्यों के झुण्डमें से अपने समस्या सम्बन्धी तथ्यों को निकालना होगा। यही नहीं इन तथ्यों का प्रयोग समस्या-के समाधान में जैसे उसे प्राप्त हुए हैं वैसे ही नहीं, वरन् इनमें स्थान एवं समय या वातावरण के अनुसार परिवर्तन लाकर करना होगा।

एक उदाहरण से उपर्युक्त बात स्पष्ट हो जाएगी। इंजीनियर को भवन कानिर्माण करना है। वह भवन-निर्माण सम्बन्धी नियमों का अध्ययन कर भवन की इमारत खड़ी करा दे। नींव की गहराई, चूने, सीमेण्ट, ईंट तथा अन्य उपयोगी सामग्रियाँ जो भवन को मजबूती प्रदान करती हैं, इसका उसे ज्ञान होगा और वह नियमानुसार भवन बनावा देगा। किन्तु अध्यापक, जिसे चरित्र निर्माण कराना है, कोई भी ऐसे नियमों पर अपना कार्यक्रम आधारित नहीं कर सकता, जो चरित्र निर्माण सम्बन्धी पूर्णरूप से निर्धारित हों। चरित्र-निर्माण के लिए उसे वंशानुक्रम, वातावरण, आदतों इत्यादि सम्बन्धी अध्ययनों का अवलोकन करना होगा, फिर देखना होगा कि जिस स्थिति में इनके विद्यार्थी हैं, उनके किस प्रकार से इन अध्ययनों की सहायता लेकर चरित्र-निर्माण का कार्यक्रम प्रारम्भ किया जा सकता है।

अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा-मनोविज्ञान की तीन महत्वपूर्ण सीमाएँ हैं-

1. शिक्षा मनोविज्ञान का प्रयोग शिक्षण की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सीमित रूप से ही किया जा सकता है। शिक्षण की प्रकृति के अनुसार अनुभव, रुचि मनोवृत्ति इत्यादि, शिक्षक के लिए उतने ही आवश्यक है जितना की मनोविज्ञान का ज्ञान।
2. शिक्षा मनोविज्ञान विज्ञान की इस सीमा से सीमित है कि तथ्यों की सत्यता की जांच अथवा नए तथ्यों का पता लगाना-निर्णय करने में केवल सहायक होते हैं, न कि निर्णय को अन्तिम रूप देने में।
3. शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की सीमा से सीमित है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षा व्यवस्था में कोई दो उपयोगिता लिखिए।
8. शिक्षा मनोविज्ञान की कोई एक सीमा लिखिए।

2.11 सारांश

शिक्षा मनोविज्ञान प्रारम्भ में मनोविज्ञान का एक अंगभूत घटक रहा है। इससे पहले मनोविज्ञान भी दर्शनशास्त्र का ही एक अंग रहा है। विश्व में ज्ञान विज्ञान का प्रसार बड़ी तीव्र गति से हो रहा है अतः शिक्षा मनोविज्ञान के ज्ञान में भी निरन्तर प्रगति हो रही है तथा अब इन की प्रगति में विशिष्ठ रूप से उन्नयन हुआ है। पाठ्यपुस्तक, शिक्षक का कक्षा में तथा कक्षा से बाहर का व्यवहार बदलना स्वाभाविक है। अध्यापन अब इतना सरल नहीं रह गया है जितना यह पहले माना जाता रहा है। अब शिक्षा मनोविज्ञान ने शिक्षक के दायित्वों में वृद्धि ही नहीं की है बल्कि अध्यापन के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए भी कई कार्य किए हैं। शिक्षण के दौरान अब बाल-अधिकारों को बच्चों को उपलब्ध कराने में अध्यापकों का दायित्व और अधिक महत्वपूर्ण हो चुका है।

2.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ है-
   i. शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र-मानव व्यवहार है।
   ii. शिक्षा मनोविज्ञान-खोज तथा निरीक्षणों से प्राप्त तथ्यों का संग्रह है।
   iii. शिक्षा मनोविज्ञान, शैक्षिक समस्याओं का समाधान अपनी स्वयं की पद्धति से करता है।
2. **स्किनर:**''शिक्षा मनोविज्ञान मानवीय व्यवहार का शैक्षिक परिस्थितियों में अध्ययन करता है।''
3. **वाल्टर बी. कालेस्निक:** शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के उन तथ्यों और सिद्धान्तों का अध्ययन है, जो शिक्षा प्रक्रिया की व्याख्या करने तथा सुधारने में सहायक होते हैं। इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान दो कियाओं -शिक्षा तथा मनोविज्ञान के वैज्ञानिक ज्ञान का पिण्ड है।''
4. क्रो तथा क्रो
5. अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान के कोई दो महत्व निम्न हैं-
   i. शिक्षा मनोविज्ञान अध्यापक की शैक्षणिक समस्याओं के प्रति सम्यक दृष्टिकोण प्रदान करता है तथा उपयुक्त अध्यापक-विधि से अवगत कराता है।
   ii. यह अध्यापक को बालक के विकास के लिए उपयुक्त शैक्षिक वातावरण प्रस्तुत करने में सहायता देता है।
6. सत्य
7. शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षा व्यवस्था में कोई दो उपयोगिता निम्न हैं-
   i. पाठ्यक्रम बालकों की अभिरुचि तथा अभिक्षमताओं के अनुकूल होने के सम्बन्ध में शिक्षा मनोविज्ञान दिशा निर्देश देता है।
   ii. शिक्षा मनोविज्ञान अनुशासन स्थापन की नवीन विधियों का ज्ञान देता है।

8. शिक्षा मनोविज्ञान का प्रयोग शिक्षण की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए सीमित रूप से ही किया जा सकता है। शिक्षण की प्रकृति के अनुसार अनुभव, रुचि मनोवृत्ति इत्यादि, शिक्षक के लिए उतने ही आवश्यक है जितना कि मनोविज्ञान का ज्ञान।

2.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चौबे, एस.पी. तथा चौबे, ए. (2007) शैक्षिक मनोविज्ञान के मूल आधार, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. भटनागर, सुरेश (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस।
3. श्रीवास्तव, ज्ञानानन्द प्रकाश (2002) शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली कन्सैप्ट पब्लिकेशन
4. शुक्ल, ओ.पी. (2002) शिक्षा मनोविज्ञान लखनऊ, भारत प्रकाशन,
5. Child, D (1975): Psychology and the teacher. London; Holt Rinehart and winston.
6. Gasret HE. (1982): General Psychology. New Delhi Eurasia. Publishing house Pvt. Ltd.
7. Soreson, H (1964): Psychology in Education. New York: McGraw-hill Book co.
8. Mathur, S.S. (1977): Educational Psychology. Agra, VinodPustakMandir.
9. Mitzel, H.E. (1982): Encyclopedia of Educational Research: London. The free press

2.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र क्या है?
2. शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षार्थियों के लिए उपयोगिता को स्पष्ट कीजिए।
3. बाल व्यवहार में आने वाली समस्याओं की सूची बनाए जिनका शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर समाधन किया जा सकता है।
4. किशोर मनोविज्ञान अध्यापकों को क्यों जानना चाहिए।
5. दृश्य -श्रव्य सामग्रियों के माध्यम से अध्यापन कराने के लाभ लिखिए।

इकाई – 3 मानव विकास:- मानव विकास की अवस्था

Human Development :- Stages of Human Development

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मानव विकास की अवस्थाएँ
3.4 गर्भावस्था
3.5 शैशवावस्था
3.6 बाल्यावस्था
3.7 किशोरावस्था
3.8 प्रौढ़ावस्था
3.9 मध्यावस्था
3.10 वृद्धावस्था
3.11 सारांश
3.12 शब्दावली
3.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
3.14 संदर्भग्रन्थ सूची
3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

बालक के विकास की प्रक्रिया उसके जन्म से पूर्व माता के गर्भ से ही प्रारम्भ हो जाती है और जन्म के पश्चात् यह विकास प्रक्रिया शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था तथा प्रौढ़ावस्था तक क्रमशः चलती रहती है। विकास की इन विभिन्न अवस्थाओं में बालक का कई प्रकार से विकास होता है यथा-शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक विकास आदि । इस प्रकार स्पष्ट है कि मानव विकास प्रक्रिया जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त चलती रहती है।

प्रस्तुत इकाई में आप मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान प्राप्त करेंगे तथा विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं एवं उस अवस्था विशेष में सम्पादित विकासात्मक कार्यों का अध्ययन कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप –

1. मानव विकास के विभिन्न अवस्थाओं में अन्तर समझ सकें।
2. विभिन्न अवस्थाओं में होने वाले शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तनों को रेखांकित कर सकें।
3. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगे।
4. विभिन्न अवस्थाओं के विकासात्मक कार्यों का वर्णन कर सकेंगे।

3.3 मानव विकास की अवस्था –

मनुष्य के सम्पूर्ण विकास काल को कई अवस्थाओं में बाँटा गया है। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि गर्भकाल और परिपक्वता के बीच को प्रत्येक अवस्था में कुछ ऐसी प्रमुख विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिनके कारण एक अवस्था दूसरी अवस्था से भिन्न दिखाई पड़ने लगती है। विकासात्मक अवस्थाओं को लेकर मनोवैज्ञानिकों के बीच मतभेद है। आप इस इकाई में गर्भाधान से मृत्यु तक की विकासात्मक अवस्थाओं का निम्नवतअध्ययन करेंगे-

	विकास की अवस्था	जीवन अवधि
1	गर्भकालीन अवस्था या गर्भावस्था	गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2	शिशुकाल या शैशवावस्था	जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था
3.	बाल्यकाल य बाल्यावस्था a) पूर्व- बाल्यावस्था b) उत्तर – बाल्यावस्था	3 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक 4 वर्ष से 6 वर्ष तक 7 वर्ष से 12 वर्ष तक
4	किशोरावस्था	13 से 19 वर्ष तक
5.	प्रौढ़ावस्था	20 से 40 वर्ष तक
6.	मध्यावस्था	41 से 60 वर्ष तक
7.	वृद्धावस्था- जीवन की अंतिम अवस्था होती है	इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद

3.4 गर्भावस्था

यह अवस्था गर्भाधान के समय से लेकर जन्म तक की अवस्था है। इस अवस्था की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा इसमें विकास की गति अधिक तीव्र होती है। किन्तु जो परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं वे विशेष रूप से शारीरिक होते हैं। समस्त शरीर-रचना, भार, आकार में वृद्धि तथा आकृतियों का निर्माण इसी अवस्था की घटनाएँ होती हैं।

सम्पूर्ण गर्भकालीन विकास को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से तीन अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। पहली अवस्था में प्राणी अंडे के आकार का होता है। इस अंडे में भीतर तो कोष्ठ-विभाजन की क्रिया होती रहती है परन्तु ऊपर से किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। लगभग एक सप्ताह तक यह अण्डाकार जीव गर्भाशय में तैरता रहता है जिसके कारण इसे कोई विशेष पोषाहार नहीं मिल पाता। परन्तु दस दिन बाद यह गर्भाशय की दीवार से सट जाता है और माता के शरीर पर भोजन के लिए आश्रित हो जाता है। तीसरे सप्ताह से लेकर दूसरे महीने के अन्त तक गर्भकालीन विकास की दूसरी अवस्था होती है जिसे भूरणावस्था कहा जाता है। इस अवस्था के जीव को भूर्ण कहते हैं। विकास की गति बहुत तीव्र होने के कारण इस अवस्था में भूर्ण के भीतर अनेक परिवर्तन हो जाते हैं। शरीर के प्रायः सभी मुख्य अंगों का निर्माण इसी अवस्था में होता है। दूसरे महीने के अन्त तक भूर्ण की लम्बाई सवा इंच से दो इंच तक तथा उसका भार लगभग दो ग्राम हो जाता है। परन्तु भूर्ण का स्वरूप वैसा नहीं होता जैसा नवजात शिशु का होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपात में बहुत बड़ा होता है। इस अवस्था में सिर का आकार अन्य अंगों के अनुपात में बहुत बड़ा होता है। कान भी सिर से काफी नीचे स्थित होते हैं नाक में भी केवल एक ही छिद्र होता है और माथे की चौड़ाई आवश्यकता से अधिक होती है। भूर्णका निर्माण तीन परतों से होता है। बाहरी परत को एक्टोडर्म, बीच वाली परत को मेसोडर्म और आन्तरिक परत को एण्डोडर्म कहा जाता है। इन्हीं तीन परतों से शरीर के विभिन्न अंगों का निर्माण होता है। बाहरी परत से त्वचा, नाखून, दाँत, बाल तथा नाड़ी मण्डल का निर्माण होता है। इनमें से मस्तिष्क का विकास तो बड़ी तेजी से होता है। चार सप्ताह की अवस्था में मस्तिष्क के विभिन्न भागों को पहचाना जा सकता है। बीच की परत से त्वचा की भीतरी परत तथा मांस-पेशियों का निर्माण होता है। इसी प्रकार आन्तरिक परत से फेफड़े, यकृत, पाचन क्रिया से सम्बन्धित अंग तथा विभिन्न ग्रन्थियाँ बनती है।

गर्भकालीन विकास की तीसरी और अन्तिम अवस्था गर्भस्थ शिशु की अवस्था कही जाती है। यह तीसरे महीने के प्रारम्भ से जन्म लेने के पूर्व तक की अवस्था होती है। इस अवस्था को निर्माण की अवस्था नहीं बल्कि विकास की अवस्था समझना चाहिएक्योंकि भ्रूणावस्था में जिन-जिन अंगों का निर्माण हो गया होता है उन्हीं का विकास इस अवस्था में होता है। प्रत्येक महीने गर्भस्थ शिशु के आकार तथा भार में वृद्धि होती रहती है। पाँच महीने में इसका भार दस औंस तथा लम्बाई दस इंच होती है। आठवें महीने में शिशु वजन में पाँच पौंड का हो जाता है और लम्बाई अठ्ठारह इंच तक हो जाती है। जन्म के समय शिशु का भार सात-साढ़े-सात पौंड तथा लम्बाई बीस इंच होती है। इस अवस्था में हृदय, फेफड़े, नाड़ी, मण्डल कार्य भी करने लगते हैं। यहाँ तक कि यदि सातवें महीने में ही बच्चा पैदा हो जाए तो वह जीवित रह सकने योग्य होगा।

3.5 शैशवावस्था

जन्म से लेकर 3 वर्ष की अवस्था को शैशव की अवस्था कहा जाता है। इस आयु के बालक को नवजात शिशु भी कहते हैं। वैज्ञानिक अनुसन्धानों से पता चलता है कि इस अवस्था में बालक के भीतर कोई

विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ता। जन्म लेने के बाद जिस नए वातावरण में बालक अपने को पाता है उसे समझना और उसमें अपने को समायोजित करना उसके लिए आवश्यक होता है। अतः इस अवस्था में समायोजन की प्रक्रिया के अतिरिक्त बालक के भीतर किसी विशेष मानसिक या शारीरिक विकास के लक्षण नहीं दिखाई पड़ते।

3.6 बाल्यावस्था

व्यापक अर्थ में बाल्यावस्था गर्भकाल से परिपक्वता तक के जीवन-प्रसार को कहा जाता है। परन्तु जब हम विकास की विभिन्न अवस्थाओं की चर्चा करते हैं तो 'बाल्यावस्था' का प्रयोग संकुचित अर्थ में ही होता है। उस सन्दर्भ में बाल्यावस्था अन्य अवस्थाओं की भाँति विकास की एक विशेष अवस्था समझी जाती है जिसमें कुछ प्रमुख मानसिक और शारीरिक विशेषताएँ आविर्भूत होती हैं।

बाल्यावस्था चार से बारह वर्ष की अवस्था होती है। निरन्तर वातावरण के सम्पर्क में रहने के कारण इस अवस्था में बालक उससे भली-भाँति परिचित हो जाता है और उस पर यथासम्भव नियन्त्रण करने लगता है। वातावरण में अपने को समायोजित करने के लिए वह नित्य प्रयास करता रहता है। इस प्रकार का समायोजन स्थापित करना ही बाल्यावस्था की प्रमुख समस्या होती है और इस प्रक्रिया में उसकी जिज्ञासा की प्रवृत्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँचकर कार्य करती है। समूह-प्रवृत्ति इस अवस्था की एक दूसरी प्रमुख विशेषता मानी जाती है। इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप बालक के भीतर सामाजिक भावनाओं का विकास प्रारम्भ होता है और घर के भीतर की सीमित वातावरण से ऊबकर वह बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का प्रदर्शन करने लगता है।

सामूहिक परिस्थितियों में पढ़कर बालक में अनुकरण, खेल, सहानुभूति तथा निर्देशग्राहकता का विकास होने लगता है। उसकी अधिकांश नैतिकता समूह द्वारा ही नियंत्रित और निर्देशित होती है। परन्तु अभी उससे उच्च नैतिक आचरण और आदर्श नैतिक निर्णय की आशा नहीं की जा सकती। जहाँ तक बाल्यावस्था में होने वाले सामाजिक विकास का प्रश्न है, बालक के भीतर सहयोग, सहानुभूति और नेवृत्व की भावनाओं के साथ ही अवज्ञा, स्पर्धा, आक्रामकता तथा द्वन्द आदि का विकास शीघ्रता से होने लगता है। यह सारी बातें बालक के सामाजिक समायोजन तथा उसके मस्तिष्क के उचित विकास के लिए आवश्यक हैं, क्योंकि इन्हीं परिस्थितियों में पड़कर वह आत्मनिर्भर होना सीखता है। परन्तु द्वन्द और आक्रामकता के विकास के बावजूद भी किशोरावस्था की तुलना में बाल्यावस्था स्थिरता और शांति की अवस्था समझी जाती है। इस अवस्था में बालक घर के भीतर के संकुचित वातावरण से निकलकर पाठशाला और मित्रमण्डली में समय व्यतीत करता है। अतः उसे जीवन की अनेक वास्तविकताओं को भली-भाँति समझने का अवसर मिलता है। वह कठोरताओं और अभावों को चुपचाप सहन कर लेता है, किशोरों की भाँति क्रांतिकारी भावनाओं का प्रदर्शन नहीं करता।

बाल्यावस्था को दो भागों में विभक्त किया गया है:-

1. पूर्व-बाल्यावस्था - 4 से 6 वर्ष तक
2. उत्तर- बाल्यावस्था - 7 से 12 वर्ष

पूर्व बाल्यावस्था की विशेषता

इसे प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं। इस अवस्था में बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, अवगमात्मक एवं संज्ञानात्मक विकास, बौद्धिक विकास, सामाजिक विकास, तथा संवेगात्मक विकास होते देखा गया है। मनोवैज्ञानिकों ने इसे प्राक्-टोली अवस्था भी कहा है। इस अवस्था की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं।

1. **बाल्यावस्था क समस्या अवस्था होती है-** इस अवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस अवस्था में बच्चे एक विशिष्ट व्यक्तित्व विकसित करते हैं और स्वतंत्र रूप से कोई कार्य करने पर अधिक बल डालते हैं। इसके अलावा इस उम्र के बच्चे अधिक जिद्दी, झक्की, विरोधात्मक, निषेधवादक तथा बेकहा होते हैं। इन व्यवहारात्मक समस्याओं के कारण अधिकतर माता-पिता इस अवस्था को 'समस्या अवस्था' कहते हैं।
2. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों की अभिरूचि खिलौनों में अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसंद करते हैं। ब्रूनर (1975), हेरोन (1971) एवं काज, (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों के आधार पर यह बताया है कि इस अवस्था में बच्चों में खिलौनों से खेलने की अभिरूचि अधिकतम होती है और जब बच्चे स्कूल अवस्था में प्रवेश करने लगते हैं अर्थात वे 6 साल के होने को होते हैं तो उनकी यह अभिरूचि समाप्त हो जाती है।
3. **पूर्व बाल्यावस्था को शिक्षकों द्वारा तैयारी का समय बताया गया है-**इस अवस्था को शिक्षकों ने प्राक स्कूली अवस्था कहा है, क्योंकि इस अवस्था में बच्चों को किसी स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए दाखिला नहीं कराया जाता है। लेकिन, कुछ ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें प्राक स्कूल कहा जाता है जिनमें बच्चों को रखकर कुछ अनौपचारिक ढंग से या खेल के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। नर्सरी स्कूल ऐसे स्कूलों के अच्छे उदाहरण हैं। लेकिन, कुछ बच्चे ऐसे नर्सरी स्कूल में न जाकर माता-पिता से घर पर ही कुछ शिक्षा पाते हैं। शिक्षकों का कहना है कि चाहे बच्चे किसी नर्सरी स्कूल में अनौपचारिक शिक्षा पा रहे हों या घर में माता-पिता द्वारा शिक्षा प्राप्त कर रहे हों, वे अपने-आपको इस ढंग से तैयार करते हैं कि स्कूल अवस्था प्रारंभ होने पर उन्हें किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हो।
4. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में उत्सुकता अधिक होती है-**इस अवस्था में बच्चों में अपने इर्द-गिर्द की वस्तुओं, चाहे वे जीवित हों या अजीवित, के बारे में जानने की उत्सुकता काफी अधिक रहती है। वे हमेशा यह जानने की कोशिश करते हैं कि उनके वातावरण में उपस्थित ये सब वस्तुएँ किस प्रकार की है, वे कैसे कार्य करती हैं, वे कैसे एक-दूसरे से संबंधित हैं आदि-आदि। शायद यही कारण है कि कुछ मनोवैज्ञानिकों ने पूर्व बाल्यावस्था को अन्वेषणात्मक अवस्था कहा है।

5. **पूर्व बाल्यावस्था में बच्चों में अनुकरण करने की प्रवृत्ति अधिक तीव्र होती है-**इस अवस्था के बच्चों में अपने माता-पिता एवं परिवार के अन्य वयस्कों के व्यवहारों तथा उनके बोलने-चालने के तौर-तरीकों का नकल उतारने की प्रवृत्ति देखी जाती है। चेरी तथा लेविस (1991) का मत है कि इस अवस्था के जिन बच्चों में ऐसी प्रवृत्ति अधिक होती है उन बच्चों में किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में आने पर सुझाव ग्रहणशीलता का शीलगुण तेजी से विकसित होता है।

उत्तर बाल्यावस्था की विशेषता

उत्तर बाल्यावस्था 7 वर्ष से प्रारंभ होकर बालिकाओं में 10 वर्ष की उम्र तक की होती है तथा बालकों में 7 वर्ष से प्रारंभ होकर 12 वर्ष की उम्र तक की होती है। यह वह अवस्था होती है जब बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं। इस अवस्था को माता-पिता, शिक्षकों तथा मनोवैज्ञानिकों द्वारा दिखाई गई विशेषताओं के आधार पर कई तरह के नाम भी दिए गए हैं। जैसे माता-पिता द्वारा इस अवस्था को उत्पाती अवस्था कहा गया है (क्योंकि अक्सर बच्चे माता-पिता की बात न मानकर अपने साथियों की बात अधिक मानते हैं), शिक्षकों ने इस अवस्था को प्रारंभिक स्कूल अवस्था कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चे स्कूल में औपचारिक शिक्षा के लिए जाना प्रारंभ कर देते हैं) मनोवैज्ञानिकों ने इस अवस्था को गिरोह अवस्था या ''गैंग एज'' कहा है (क्योंकि इस अवस्था में बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है)। इस अवस्था में भी बच्चों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, भाषा विकास, संवेगात्मक विकास, सामाजिक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते है जिनका ज्ञान होने से शिक्षक आसानी से बालकों का मार्गदर्शन कर पाते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. **माता-पिता द्वारा क उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है-**इस अवस्था में बच्चे स्कूल जाना प्रारंभ कर देते हैं और उन पर अपने संगी-साथियों का गहरा प्रभाव पड़ना भी प्रारंभ हो जाता है। वे माता-पिता की बात को कम महत्व देते हैं जिसके कारण उन्हें डाँट-फटकार भी मिलती है। इस अवस्था में बच्चे अपनी व्यक्तिगत आदतों के प्रति लापरवाह होते हैं जिससे माता-पिता तथा शिक्षक दोनों ही काफी परेशान रहते हैं।
2. **बच्चों में लड़ाई-झगड़ा करने की प्रवृत्ति भी अधिक होती है-**उत्तर बाल्यावस्था में बच्चों में आपस में लड़ने-झगड़ने की प्रवृत्ति अधिक होती है। यह बात वहाँ पर स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है जहाँ परिवार में भाई-बहनों की संख्या अधिक होती है। छोटी-छोटी बात को लेकर एक-दूसरे पर आरोप थोपते हैं, गाली-गलौच करते हैं और शारीरिक रूप से आघात करने में भी पीछे नहीं रहते।
3. **शिक्षकों द्वारा उत्तर बाल्यावस्था को प्रारंभिक स्कूली अवस्था कहा जाता है-**शिक्षकों ने इस बात पर बल डाला है कि यह वह अवस्था होती है, जिसमें छात्र उन चीजों को सीखते हैं जिनसे उन्हें वयस्क जिंदगी में सफल समायोजन करने में मदद मिलती है। इस अवस्था में छात्र

पाठ्यक्रम से संबद्ध कौशल तथा पाठ्यक्रम कौशल दोनों को ही सीखकर अपना भविष्य उज्जवल करने की नींव डालते हैं। कुछ शिक्षकों ने इस अवस्था को नाजुक अवस्था भी कहा है, क्योंकि इस उम्र में उपलब्धि-प्रेरक की भी नींव पड़ती है। बालकों में उच्च उपलब्धि-प्रेरणा, निम्न उपलब्धि-प्रेरणा, या साधारण उपलब्धि-प्रेरणा की आदत बनती है। एक बार जिस प्रकार की आदत बन जाती है, वही आदत किशोरावस्था तथा वयस्कावस्था में भी बनी रहती है। कागन (1977) तथा ह्वाईटमैन (1991) ने अपने-अपने अध्ययनों से इस बात की पुष्टि की है कि उत्तर बाल्यावास्था में दिखाए गए उपलब्धि-स्तर तथा वयस्कता में प्राप्त किए गए उपलब्धि-स्तर में अधिक सह-संबंध पाया जाता है जो स्वयं में इस बात का द्योतक है कि उत्तर बाल्यावस्था का उपलब्धि-स्तर बहुत हद तक वयस्क के उपलब्धि-स्तर का एक तरह का निर्धारक होता है।

4. **बच्चा अपनी ही उम्र के साथियों के समूह द्वारा स्वीकृति पाने के लि□काफी लालायित रहता है-**इस अवस्था की एक विशेषता यह भी बताई गई है कि इस उम्र के बच्चे अपने साथियों के समूह में इतना अधिक खो जाते हैं कि उनके बोलने-चालने का ढंग, कपड़ा पहनने का ढंग, खाने-पीने की चीजों की पसंद आदि सभी इस समूह के अनुकूल हो जाता है। बच्चे ऐसे तौर-तरीकों पर इतना अधिक ध्यान देते हैं कि वे इस बात की भी परवाह नहीं करते कि इस ढंग का तौर-तरीका उनके परिवार तथा स्कूल के तौर-तरीकों से परस्पर विरोधी हैं।
5. **बच्चों में सृजनात्मक क्रियाओं की ओर अधिक झुकाव होता है-**
इस उम्र के बच्चों में अपनी शक्ति तथा बुद्धि को नई चीजों में लगाने की प्रवृत्ति अधिक होती है। वे अक्सर नए ढंग की चित्रकारी तथा शिल्पकारी करते पाए जाते हैं और उससे उनमें एक तरह से सृजनात्मकता अंतःशक्तियों का विकास होता है। कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे सुसमैन (1988) का मत है कि हालाँकि इस ढंग की सृजनात्मकता अंतःशक्तियों का बीज प्रारंभिक बाल्यावस्था में ही बो दिया जाता है, इसका पूर्ण विकास तब तक नहीं होता है जब तक कि बच्चे की उम्र 10-12 साल की नहीं हो जाती है।

पूर्व बाल्यावस्था के लि□विकासात्मक कार्य

पूर्व बाल्यावस्थाके विकासात्मक कार्य निम्नलिखित है-

1. चलना सीखना
2. ठोस आहार लेना सीखना
3. बोलना सीखना
4. मल-मूत्र त्याग करना सीखना
5. यौन अंतरों तथा यौन शालीनता को सीखना
6. शारीरिक संतुलन बनाए रखना सीखना
7. सामाजिक एवं भौतिक वास्तविकता के सरलतम संप्रत्यय को सीखना

8. अपने-आपको माता-पिता, भाई-बहनों तथा अन्य लोगों के साथ संवेगात्मक रूप से संबंधित करना सीखना
9. सही तथा गलत के बीच विभेद करना सीखना तथा अपने में एक विवेक विकसित करना।

उत्तर बाल्यावस्था के लि□विकासात्मक कार्य-

1. साधारण खेलों के लिए आवश्यक शारीरिक कौशल को सीखना।
2. अपने-आपके प्रति एक हितकर मनोवृत्ति विकसित करना।
3. अपनी ही उम्र के साथियों के साथमिलना-जुलना सीखना।
4. उपयुक्त पुरुषों चित तथा स्त्रियोचित यौन भूमिकाओं को सीखना।
5. पढ़ना, लिखना तथा गिनती करने से संबंधित मौलिक कौशल विकसित करना।
6. दिन-प्रतिदिन की सुचारू जिंदगी के लिए आवश्यक संप्रत्ययों को सीखना।
7. नैतिकता, मूल्य तथा विवेक को सीखना।
8. व्यक्तिगत स्वतंत्रता प्राप्त करने की कोशिश करना।
9. सामाजिक समूहों एवं संस्थानों के प्रति मनोवृत्ति विकसित करना।

3.7 किशोरावस्था

किशोरावस्था बाल-काल की अन्तिम अवस्था होती है। सम्पूर्ण बाल-विकास में इस अवस्था का बहुत ही महत्व समझा जाता है। यह अवस्था प्रायः तेरह से उन्नीस वर्ष के बीच की अवस्था मानी जाती है। इसके बाद परिपक्वता का प्रारम्भ होता है। इस अवस्था की अनेक विशेषताएँ होती हैं जिनमें दो प्रमुख हैं- सामाजिकता और कामुकता। इन्हीं से सम्बन्धित अनेक परिवर्तन इस अवस्था में उत्पन्न होते हैं। यह अवस्था कई दृष्टियों से शारीरिक और मानसिक उथल-पुथल से भरी होती है। इसे शैशव की पुनरावृत्ति भी कहा जा सकता है, क्योंकि इस काल में बाल्यावस्था की स्थिरता और शांति नहीं दिखाई पड़ती। स्वभाव से भावुक होने के कारण किशोर बालक न तो अपना शारीरिक और न ही मानसिक समायोजन उचित रूप से स्थापित कर पाता है।

किशोरावस्था विकास की अत्यन्त महत्वपूर्ण सीढ़ी है। किशोरावस्था का महत्व कई दृष्टियों से दिखाई देता है।प्रथम यह युवावस्था की ड्योढ़ी है जिसके ऊपर जीवन का समस्त भविष्य आधारित होता है। द्वितीय यह विकास की चरमावस्था है। तृतीय यह संवेगात्मक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण मानी जाती है। इस अवस्था में बालक में अनेकों परिवर्तन होते रहते हैं तथा विभिन्न विशेषताएँ परिपक्वता तक पहुँच जाती है। किशोरावस्था वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति बाल्यावस्था के बाद पदार्पण करता है।किशोरावस्था के प्रारम्भिक वर्षों में विकास की गति अत्यधिक तीव्र होती है।

किशोरावस्था अत्यंत संक्रमणकाल की अवधि होती है। इस अवस्था में किशोर स्वयं को बाल्यावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के मध्य अनुभव करता है जिस कारण वह न तो बालक और न ही प्रौढ़ की तरह व्यवहार कर पाता है फलतः वह अपने व्यवहार को निश्चित करने में कठिनाई का अनुभव करता है। किशोरावस्था में अनेक प्रकार के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक,संवेगात्मक एवं व्यवहारिक परिवर्तन एवं विकास दिखाई देते हैं। इन परिवर्तनों के कारण उनकी रुचियों, इच्छाओं आदि में भी परिवर्तित हो जाता है। इन्हीं सब कारणों से किशोरावस्था का जीवन के विकास कालों में काफी महत्व है।

किशोरावस्था में किशोरों में अपने मित्र समूह के प्रति मैत्री भाव की प्रधानता होती है। पूर्व बाल्यावस्था तक यह भावना बालक की बालक के प्रति तथा बालिकाओं की बालिकाओं के प्रति ही होती थी, परन्तु उत्तर बाल्यावस्था से परस्पर विपरीत लिंग के लिए आकर्षण उत्पन्न हो जाता है और वे एक दूसरे के सामने स्वयं को सर्वोत्तम रूप में उपस्थित करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

किशोरावस्था कामुकता के जागरण, संवेगात्मक अस्थिरता, विकसित सामाजिकता, कल्पना-बाहुल्य तथा समस्या-बाहुल्य की अवस्था मानी जाती है। जैसा ऊपर संकेत किया गया है, किशोर बालक और बालिका में घोर शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन होते हैं। उनके संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक जीवन का स्वरूप ही बदल जाता है। उनके हृदय स्फूर्ति और जोश से भर जाते हैं और संसार की प्रत्येक वस्तु में उन्हें एक नया अर्थ दिखाई पड़ने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो किशोरावस्था में प्रविष्ट होकर बालक एक नया जीवन ग्रहण करता है।

किशोरावस्था के लि विकासात्मक कार्य-

1. दोनों यौन की समान उम्र के साथियों के साथ नया एवं एक परिपक्व संबंध कायम करना।
2. उचित पुरुषोचित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएँ सीखना।
3. माता-पिता तथा अन्य वयस्कों से हटकर एक सांवेगिक स्वतंत्रता कायम करना।
4. किसी व्यवसाय का चयन करना तथा उसके लिए स्वयं को तैयार करना।
5. जीवन की प्रतियोगिताओं के लिए आवश्यक संप्रत्यय तथा बौद्धिक कौशलों को सीखना।
6. पारिवारिक जीवन तथा शादी के लिए अपने-आपको तैयार करना।
7. सामाजिक रूप से उत्तरदायी व्यवहार का निर्धारण करना तथा उसे प्राप्त करने की भरपूर कोशिश करना।
8. आर्थिक स्वतंत्रता की प्राप्ति की ओर अग्रसर होना।

किशोरावस्थाकी विशेषता

शिक्षा मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को अधिक महत्वपूर्ण अवस्था बताया है और अधिकतर शिक्षक इस बात से सहमत है कि उन्हें अपने शिक्षण कार्यों में सबसे अधिक चुनौती इस अवस्था के शिक्षार्थियों से प्राप्त होती है। किशोरावस्था 13 साल की उम्र से प्रारंभ होकर 19 साल तक की होती है और इस तरह

से इस अवधि में तरूणावस्था या प्राक किशोरावस्था, प्रारंभिक किशोरावस्था तथा उत्तर किशोरावस्था तीनों ही सम्मिलित हो जाते हैं। इस किशोरावस्था में भी किशोरों में महत्वपूर्ण शारीरिक विकास, सामाजिक विकास, संवेगात्मक विकास, मानसिक विकास तथा संज्ञानात्मक विकास होते हैं। इस अवस्था की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित है-

1. **किशोरावस्था क महत्वपूर्ण अवस्था है-** किशोरावस्था को हर तरह से एक महत्वपूर्ण अवस्था माना गया है। यह वह अवस्था है जिसका छात्रों में तात्कालिक प्रभाव तथा दीर्घकालीन प्रभाव दोनों ही देखने को मिलता है। इस अवस्था में शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों तरह के प्रभाव बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आते हैं। अपने तीव्र शारीरिक विकास के कारण ही इस अवस्था में किशोर अपने-आपको वयस्क से किसी तरह से कम नहीं समझता तथा जैसा कि पियाजे (1969) ने कहा है, तीव्र मानसिक विकास होने के कारण बालक वयस्क के समाज में अपने-आपको संगठित मानता है और वह एक नई मनोवृत्ति, मूल्य तथा अभिरूचि विकसित करने में सक्षम हो पाता है।
2. **परिवर्ती अवस्था होती है-**किशोरावस्था सचमुच में बाल्यावस्था तथा वयस्कावस्था के बीच की अवस्था है। इस अवस्था में किशोरों को बाल्यावस्था की आदतों का परित्याग करके उसकी जगह नई आदतों, जो अधिक परिपक्व तथा सामाजिक होती हैं, को सीखना होता है। इस दिशा में शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। शिक्षक वर्ग में उचित दिशानिर्देश प्रदान कर उन्हें एक परिपक्व तथा सामाजिक मनोवृत्ति कायम करने में मदद करते हैं जो किशोरों को एक स्वस्थ समयोजन में काफी सहायक सिद्ध होती है।
3. **किशोरावस्था में क अस्पष्ट वैयक्तिक स्थिति होती है-**इस अवस्था में किशोरों की वैयक्तिक स्थिति अस्पष्ट होती है और उसे स्वयं ही अपने द्वारा की जाने वाली सामाजिक भूमिका के बारे में संभ्रांति होती है। सचमुच एक किशोर अपने-आपको न तो बच्चा समझता है और न ही पूर्ण वयस्क। जब वह एक बच्चे के समान व्यवहार करता है तो उसे तुरन्त कहा जाता है कि उसे ठीक ढंग से व्यवहार करना चाहिए, क्योंकि वह अब बच्चा नहीं रह गया है। जब वह वयस्क के रूप में व्यवहार करता है तो उससे कहा जाता है कि वह अपनी उम्र से आगे बढ़कर नहीं व्यवहार करे, क्योंकि यह अच्छा नहीं लगता है। इसका नतीजा यह होता है कि किशोरों में अपने द्वारा की जाने वाली वैयक्तिक भूमिका के बारे में संभ्रांति मौजूद रहती है। इरिक्सन (1964) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''जिस विशिष्टता का किशोर स्पष्टीकरण चाहते हैं, वे हैं-वह कौन हैं?उसकी समाज में क्या भूमिका होगी? वह बच्चा है या वयस्क है?''
4. **किशोरावस्था क समस्या उम्र होती है-**ऐसे तो हर अवस्था की अपनी समस्याएँ होती है, परन्तु किशोरावस्था की समस्या लड़कों तथा लड़कियों, दोनों के लिए ही अधिक गंभीर होती है। इसके मुख्य दो कारण बताए गए हैं। पहला, उससे पिछली अवस्था यानी बाल्यावस्था में बालकों की समस्याओं का समाधान अंशतः शिक्षकों तथा माता-पिता द्वारा कर दिया जाता था। अतः, वे समस्याओं के समाधान के तरीकों से अनभिज्ञ होते हैं। फलतःवे किशोरावस्था की अधिकतर

समस्याओं का समाधान ठीक ढंग से नहीं कर पाते। दूसरा कारण यह बतलाया गया है कि किशोर प्रायः अपनी समस्या का समाधान करने का भरपूर प्रयास करते हैं जिसमें प्रायः उन्हें असफलता ही हाथ लगती है, क्योंकि सचमुच इन समस्याओं का सही ढंग से समाधान करने की क्षमता तो उनमें होती नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि किशोरावस्था में व्यक्ति समस्या से घिरा रहता है।

5. **किशोरावस्था विशिष्टता की खोज का समय होता है-**किशोरावस्था में किशोरों में अपने साथियों के समूह से थोड़ी विशिष्ट एवं अलग पदवी बनाए रखने की प्रवृत्ति देखी गई है। इस प्रवृत्ति के कारण वे अपने साथियों से भिन्न ढंग का ड्रेस पहनने तथा नए ढंग के साइकिल या स्कूटर आदि का प्रयोग करने पर अधिक बल डालते हैं। इसे इरिक्सन (1964) ने 'अहम पहचान की समस्या' कहा है।
6. **अवास्तविकताओं का समय -**किशोरावस्था में अक्सर व्यक्ति ऊँची-ऊँची आकांक्षाएँ एवं कल्पनाएँ करता है जिनका वास्तविकता से कम मतलब होता है। वे अपने बारे में तथा दूसरों के बारे में वैसा ही सोचते है जैसा कि वे सोचना पसंद करते हैं न कि जैसी वास्तविकता होती है। इस तरह की अवास्तविक आकांक्षाओं से किशोरों में संवेगात्मक अस्थिरता भी उत्पन्न हो जाती है। रसियन (1975) ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया है कि किशोरों में जितनी ही अधिक अवास्तविक आकांक्षाएँ होती हैं, उतनी ही उनमें अधिक कुंठा तथा क्रोध, विशेषकर उस परिस्थिति में अधिक होती है जब वे यह समझते हैं कि वे उस लक्ष्य पर नहीं पहुँच पाए जिस पर वे पहुँचना चाहते थे।
7. **वयस्कावस्था की दहलीज होती है-**किशोरावस्था एक तरह से वयस्कावस्था की दहलीज होती है क्योंकि इस अवस्था के समाप्त होते-होते, अर्थात 19 साल की अवस्था में किशोरों के मन में यह बात बैठ जाती है कि अब वे वयस्क हो गए हैं और उन्हें अब वयस्कता से संबंधित व्यवहार करने चाहिए। शायद यही कारण है कि वे इस उम्र में धूम्रपान, मदिरापान, औषधि सेवन, यौन क्रियाओं आदि में स्वतंत्र रूप से भाग लेने लगते हैं।

3.8 प्रौढ़ावस्था

प्रौढ़ावस्था का प्रसार 20 से 40 वर्ष तक समझा जाता है। इस अवस्था को नएकर्त्तव्यों और बहुमुखी उत्तरदायित्व की अवस्था समझा जाता है। व्यक्ति इसी अवस्था में बड़ी-बड़ी उपलब्धियों की ओर दत्तचित्त होता है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब वह विभिन्न परिस्थितियों के साथ अपना स्वस्थ समायोजन स्थापित कर सकने में सफल हो। अन्य अवस्थाओं की भाँति प्रौढ़ावस्था में भी समायोजन की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। व्यक्ति को अपने परिवार के सदस्यों, सम्बन्धियों, वैवाहिक जीवन तथा व्यवसाय के साथ स्वस्थ समायोजन स्थापित करने की आवश्यकता पड़ती है। जिन्हें अपने बाल्यकाल में माँ-बाप का अनावश्यक संरक्षण मिला होता है वे इस अवस्था में जल्दी आत्मनिर्भर नहीं हो पाते और फलस्वरूप उन्हें

अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। वैवाहिक समायोजन ठीक न होने से प्रायः कुछ समाजों में तलाक की घटनाएँ देखने को मिलती है। व्यक्ति को अपने व्यवसाय में सफल और संतुष्ट होने के लिए उसकी उपलब्धियाँ ही नहीं वरन् समुचित समायोजन की क्षमता भी आवश्यक होती है।

3.9 मध्यावस्था

मध्यावस्था 41 से 60 वर्ष तक मानी जाती है। इस अवस्था में व्यक्ति के भीतर कुछ विशेष शारीरिक और मानसिक परिवर्तन देखे जाते हैं। मध्यावस्था के प्रारम्भ में ही सामान्य स्त्री-पुरूषों के भीतर संतान उत्पन्न करने की क्षमता समाप्त सी हो जाती है। इसी अवस्था में व्यक्ति के भीतर ह्रास के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। धीरे-धीरे व्यक्ति की रूचियाँ भी बदलने लगती हैं वह पहले से अधिक गंभीर और यथार्थवादी हो जाता है और उसकी धार्मिक निष्ठाओं में भी दृढ़ता आने लगती है। धनार्जन के प्रति भी व्यक्ति अब प्रायः कम उत्सुक देखा जाता है। इस अवस्था में एक सामान्य कोटि का व्यक्ति सुख, शान्ति और प्रतिष्ठा का अधिक इच्छुक हो जाता है। जहाँ तक समायोजन का प्रश्न है, इस अवस्था में पहुँचकर व्यक्ति अपने व्यवसाय से प्रायः संतुष्ट हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के प्रति भी उसकी मनोवृत्तियाँ सुदृढ़ हो जाती हैं। परन्तु उसे अपने पुत्र-पुत्रियों के विचारों, दृष्टिकोणों तथा आवश्यकताओं को ठीक-ठीक समझना जरूरी हो जाता है। जिन व्यक्तियों का समायोजन अपने परिवार के सदस्यों के साथ अच्छा होता है उन्हें मध्यावस्था और वृद्धावस्था में अभूतपूर्व मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

3.10 वृद्धावस्था

वृद्धावस्था जीवन की अंतिम अवस्था होती है। इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद समझा जाता है। शारीरिक और मानसिक शक्तियों का ह्रास इस अवस्था में बड़ी ही तीव्र गति से होता है। शारीरिक शक्ति, कार्य क्षमता तथा प्रतिक्रिया की गति में काफी मंदता आ जाती है। शारीरिक परिवर्तनों के साथ ही घोर मानसिक परिवर्तन भी इस अवस्था में घटित होते हैं। वृद्धजनों की रूचियों और मनोवृत्तियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलता है। सामान्य बौद्धिक योग्यता, रचनात्मक चिन्तन तथा सीखने की क्षमताएँ शिथिल पड़ जाती हैं। वृद्धावस्था में स्मरण शक्ति का भी बड़ी तेजी से लोप होने लगता है वृद्धजनों की रूचियाँ संख्या में घटकर कम हो जाती हैं और उनके लिए उच्चकोटि की उपलब्धियाँ असंभव हो जाती हैं। शारीरिक शक्ति और मानसिक क्षमताओं में मंदता आ जाने के कारण वृद्ध व्यक्तियों का समायोजन प्रायः निम्नस्तरीय और असंतोषजनक हो जाता है और फलस्वरूप अनेक वृद्धजन बालकालीन आचरण का प्रदर्शन करने लगते हैं। वृद्धावस्था में वयस्क का सामाजिक सम्पर्क घट जाता है और वह सामाजिक कार्यक्रमों में भाग नहीं ले पाता। व्यावसायिक जीवन से अवकाश प्राप्त कर लेने के बाद वृद्ध व्यक्ति ऐसा समझने लगता है मानो वह आर्थिक दृष्टि से दूसरों पर निर्भर है। अनेक वृद्धजनों के मत में यह धारणा घर कर लेती है कि समाज और परिवार में अब उनकी कोई आवश्यकता नहीं रही। अतः बुढ़ापे में एक प्रकार की उदासीनता का भाव विकसित होने लगता है। परन्तु जिन वृद्ध व्यक्तियों की सामाजिक और आर्थिक

स्थिति जितनी उत्तम होती है और अपने को समाज और परिवार के लिए जितना अधिक उपयोगी समझते हैं उन्हें उतनी ही अधिक प्रसन्नता और मानसिक संतुष्टि का अनुभव होता है।

विकास के स्वरूप तथा विकास की उपर्युक्त प्रमुख अवस्थाओं का समुचित ज्ञान होना तीन दृष्टियों से आवश्यक है। विकासात्मक अवस्थाओं का ज्ञान होने से हमें यह पता रहता हैं कि बालक के भीतर विभिन्न आयु-स्तर पर किस प्रकार के परिवर्तन दिखाई पड़ेंगे। साथ ही हम यह भी जान पाते हैं कि कोई शारीरिक अथवा मानसिक गुण किस अवस्था में पहुँचकर परिपक्व होगा। अतः हम उसके समुचित विकास के लिए उपयुक्त वातावरण तथा शिक्षण का प्रबन्ध कर सकते हैं ताकि उस गुण-विशेष का विकास सुन्दर से सुन्दर ढंग से हो सके। विकास के स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओं के ज्ञान का एक दूसरा लाभ यह है कि इस ज्ञान के आधार पर यह निश्चित किया जा सकता है कि किस बालक का विकास सामान्य ढंग से चल रहा है और किस बालक का विकास असामान्य ढंग से। ऐसा निश्चित करना इसलिए सम्भव है, क्योंकि प्रायः सभी बालकों के विकास की प्रणाली समान ही होती है। यदि किसी बालक का विकास सामान्य ढंग से नहीं चलता तो उस सम्बन्ध में उचित व्यवस्था की जा सकती है। अन्त में, बालकों को विभिन्न प्रकार का निर्देशन देना भी तभी सम्भव हो पाता है जब हमें उनके विकास की विशेषताओं की जानकारी हो। किसी अवस्था-विशेष में पहुँच कर बालक के भीतर जिन शारीरिक-मानसिक क्षमताओं का उदय एवं विकास होता है उन्हीं को दृष्टि में रखते हुए उन्हें व्यक्तिगत, शिक्षा-सम्बन्धी अथवा व्यवसाय-सम्बन्धी निर्देशन दिया जा सकता है। अतः बालकों के पालन-पोषण, उन्हें समझने तथा उन्हें निर्देशन देने की दृष्टियों से विकास तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं का समुचित ज्ञान प्रत्येक माता-पिता, संरक्षक और शिक्षक के लिए श्रेयस्कर होता है।

स्व-मूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. _____ 20 से 40 वर्ष तक की अवस्था है।
2. _____ में विकास की गति अधिक तीव्र होती है।
3. _____ प्राक-स्कूल अवस्था भी कहते हैं।
4. माता-पिता द्वारा उत्तर- बाल्यावस्था को _____ कहा गया है।
5. मनोवैज्ञानिकों ने उत्तर- बाल्यावस्था को _____ कहा है।
6. किशोरावस्था की दो प्रमुख विशेषताएँ क्या हैं?
7. मानव विकास की वह अवस्था जो 13 वर्ष से लेकर 19 वर्ष तक रहती है..... कहलाती है।
8. 7 से 12 वर्ष की अवधि को मानव विकास की ..... अवस्था कहते हैं।
9. ''उचित पुरुषों चित या स्त्रियोचित सामाजिक भूमिकाएँ सीखना'' एक विकासात्मक कार्य है-
   i. बाल्यावस्था का

ii. किशोरावस्था का
iii. वयस्कावस्था का
iv. इनमें से किसी का नहीं

10. किस अवस्था में बच्चे खिलौनों से खेलना अधिक पसन्द करते हैं?
    i. पूर्व बाल्यावस्था में
    ii. उत्तर बाल्यावस्था में
    iii. पूर्व किशोरावस्था में
    iv. उत्तर किशोरावस्था में
11. मानव विकास की किस अवस्था को माता-पिता द्वारा एक ''उत्पाती या उधमी अवस्था कहा गया है?
    i. पूर्व बाल्यावस्था को
    ii. उत्तर बाल्यावस्था को
    iii. पूर्व किशोरावस्था को
    iv. उत्तर किशोरावस्था को

3.11 सारांश

मानव विकास की निम्नलिखित महत्वपूर्ण अवस्थाएँ हैं- गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, वयस्कावस्था, प्रौढ़ावस्था, मध्यावस्था, वृद्धावस्था। शैक्षिक दृष्टिकोण से बाल्यावस्था एवं किशोरावस्था का विशेष महत्व है क्योंकि इन दोनों ही अवस्थाओं में व्यक्ति को आगामी जीवन के लिए आवश्यक व्यवहारों का प्रशिक्षण दिया जाता है।

मानव विकास की प्रत्येक अवस्था की अपनी विशेषताएँ होती हैं तथा अवस्था विशेष के अपने विकासात्मक कार्य होते हैं।

3.12 शब्दावली

1. **गर्भावस्था** - गर्भाधान से लेकर जन्म तक
2. **शैशवावस्था-** जन्म से लेकर 3 वर्ष तक की अवस्था को शैशवावस्था-कहते हैं।
3. **बाल्यावस्था-** 6 वर्ष से लेकर 12 वर्ष तक की अवस्था को बाल्यावस्था कहते हैं।
4. **किशोरावस्था-** 13 से 19 वर्ष तक की अवस्था को किशोरावस्था कहते हैं।
5. **प्रौढ़ावस्था-**20 से 40 वर्ष तक की अवस्था को प्रौढ़ावस्था कहते हैं।
6. **मध्यावस्था**- 41 से 60 वर्ष तक की अवस्था को मध्यावस्था कहते हैं।

7. **वृद्धावस्था**- जीवन की अंतिम अवस्था होती है, इस अवस्था का प्रारम्भ 60 वर्ष के बाद होता है।
8. **गिरोह अवस्था:** उत्तर बाल्यावस्था जो 5-6 वर्ष से लेकर 10-12 वर्ष तक रहती है तथा जिसमें बच्चों में अपने गिरोह या समूह के अन्य सदस्यों द्वारा स्वीकृत किया जाना सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है।
9. **विकासात्मक कार्य:** विकासात्मक कार्य वह कार्य है जो व्यक्ति की जिन्दगी की किसी खास अवधि में या अवधि के बारे में सम्बन्धित होता है तथा जिसकी सफल उपलब्धि से व्यक्ति में खुशी होती है और बाद के कार्यों को करने में उसे आनन्द की प्राप्ति होती है, परन्तु असफल होने से व्यक्ति में दुःख होता है, समाज से तिरस्कार मिलता है और बाद के कार्यों को करने में उसे कठिनाई भी होती है।

3.13 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. प्रौढ़ावस्था
2. गर्भावस्था
3. पूर्व- बाल्यावस्था
4. उत्पाती अवस्था
5. गिरोह अवस्था
6. किशोरावस्था की दो प्रमुख विशेषताएँ हैं- सामाजिकता और कामुकता।
7. किशोरावस्था
8. पूर्व बाल्य
9. ii किशोरावस्था की
10. i पूर्व बाल्यावस्था
11. ii उत्तर बाल्यावस्था

3.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिक्षा मनोविज्ञान-अरूण कुमार सिंह - भारती भवन प्रकाशन, पटना
2. शिक्षा मनोविज्ञान एवं प्रारम्भिक सांख्यिकी-लाल एवं जोशी - आर.एल. बुक डिपो मेरठ
3. बाल मनोविज्ञान: विषय और व्याख्या - अजीमुर्ररहमान - मोतीलाल बनारसीदास पटना
4. मानव विकास का मनोविज्ञान - रामजी श्रीवास्तव
5. आधुनिक विकासात्मक मनोविज्ञान - जे.एन.लाल
6. विकासात्मक मनोविज्ञान (हिन्दी अनुवाद) - ई.बी. हर्लोक

3.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानव विकास की विभिन्न अवस्थाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. किशोरावस्था की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए तथा इस अवस्था के विकासात्मक कार्यों को रेखांकित कीजिए।
3. विकासात्मक कार्य से आप क्या समझते हैं? पूर्व एवं उत्तर बाल्यावस्था के विकासात्मक कार्यों का विवरण दीजिए।
4. टिप्पणी लिखिए -
    i. बाल्यावस्था की विशेषताएँ
    ii. किशोरावस्था

इकाई 4- ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त □वं इसके शैक्षिकनिहितार्थ

Jean Piaget's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 परिचय
4.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय
4.5 संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाएँ
4.6 संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन
4.7 शैक्षिक निहितार्थ
4.8 सारांश
4.9 शब्दावली
4.10 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
4.11 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
4.12 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

विकासात्मक मनोविज्ञान के अनेक सिद्धांतों में से एक बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्धान्त ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त है जिसका मूल उद्देश्य बच्चों के विकास के अंतर्गत जो क्रमिक परिवर्तन होते हैं, जिसके कारण मानसिक क्रियाएँ और भी जटिल (Complex/ Sophisticated) हो जाती हैं,उनका सरलता से व्याख्या करना है। संज्ञानात्मक विकास के अध्ययन में ज्याँ पियाजे (Jean Piaget)का अभूतपूर्व योगदान है। पियाजे ने अपने सिद्धान्त में शैशवावस्था से वयस्कावस्था के बीच चिन्तन-क्रिया में जो विकास होते हैं उनकी व्याख्या की है। प्रस्तुत इकाई में आप

ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण पहलुओं का अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. संज्ञान का अर्थ स्पष्ट कर पाएंगे।
2. संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के महत्वपूर्ण संप्रत्यय (Important concepts) की व्याख्या कर सकेंगे।
3. ज्याँ पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवस्थाओं की व्याख्या कर सकेंगे।
4. संज्ञानात्मक विकास की विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
5. ज्याँ पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन कर सकेंगे।
6. ज्याँ पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ की व्याख्या कर सकेंगे।

4.3 परिचय

संज्ञान (Cognition) का तात्पर्य उन सारी मानसिक क्रियाओं से है जिसका संबंध चिंतन (Thinking), समस्या-समाधान, भाषा संप्रेषण तथा और भी बहुत सारी मानसिक प्रक्रियाओं से है। निस्सर (Neisser 1967)ने कहा है कि 'संज्ञान' संवेदी सूचनाओं (Sensory Information)को ग्रहण करके उसका रूपान्तरण (Transformation), विस्तारण (Elaboration), संग्रहण (Storage), पुनर्लाभ (Recovery) तथा इसके समुचित प्रयोग करने से होता है।

ज्याँ पियाजे (Jean Piaget) संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में कार्य करने वाले मनोविज्ञानिकों में सर्वाधिक प्रभावशाली माने जाते हैं। पियाजे का जन्म, 9 अगस्त1896 को स्विट्जरलैंड में हुआ था। उन्होंने जन्तु-विज्ञान (Zoology) में पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की। मनोविज्ञान के प्रशिक्षणके दौरान वे अल्फ्रेड बिने (Alfred Binet) के प्रयोगशाला में बुद्धि-परीक्षण (Intelligence Tests) पर जब कार्य कर रहे थे उसी समय उन्होंने विभिन्न आयु के बच्चों के द्वारा अपने चारों ओर के बाह्य जगत के बारे में ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया का अध्ययन करना शुरू कर दिया। उनकी 1923 और 1932 के बीच पाँच पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें उन्होंने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। पियाजे के सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि बालक के ज्ञान के विकास में वह खुद एक सक्रिय साझेदार की भूमिका अदा करता है और वह धीरे-धीरे वास्तविकता के स्वरूप को भी समझने लगता है।

4.4 पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्यय

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को समझने हेतु कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्ययों (Important concepts) को समझना आवश्यक है जिनका वर्णन निम्नवत है-

i. **स्कीमाटा (Schemata)** – पियाजे के अनुसार अनुभव (Experience) या व्यवहार (Behavior) को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना को स्कीमाटा कहते हैं। एक नवजात शिशु में स्कीमाटा एक सहजात प्रक्रिया है, जैसे शिशु की चूसने की प्रतिक्रिया। बच्चा जैसे ही बाहरी दुनिया के साथ अन्त:क्रिया करना प्रारम्भ करता है, इन स्कीमाटा में भी तेजी से परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। धीरे-धीरे बच्चे स्कीमाटा के सहारे समस्या समाधान के नियम तथा वर्गीकरण करना जान लेते हैं। इस तरह स्कीमाटा का संबंध मानसिक संक्रिया (mental operation) से है।

ii. **संगठन (Organization)**– संगठन से तात्पर्य प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओं (perceptual and cognitive information) को सही तरीके से बौद्धिक संरचनाओं (cognitive structure) में व्यवस्थित करने से है जो इसे वाह्य वातावरण के साथ समायोजन करने में उसके कार्यों को संगठित करता है। व्यक्ति मिलनेवाली नई सूचनाओं को पूर्व निर्मित संरचनाओं के साथ संगठित करने की कोशिश करता है, परन्तु कभी-कभी इस कार्य में सफल नहीं हो पाता है, तब वह अनुकूलन करता है।

iii. **अनुकूलन (Adaptation)** – पियाजे के अनुसार अनुकूलन वह प्रक्रिया है जिसमें बालक अपने को बाहरी वातावरण (External Environment) के साथ समायोजन करने की कोशिश करता है। यह एक जन्मजात, प्रवृत्ति (Inborn Tendency) है जिसके अंतर्गत दो प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं-

   a. **आत्मसातीकरण (Assimilation)**
   b. **समाविष्टिकरण (Accommodation)**

मूलरूप से आत्मसातीकरण एक नई वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए यदि एक बालक के हाथ में टॉफी रख दीजाती है तो उसे वह तुरंत मुँह में डाल देता है, क्योंकि उसे यह पता है कि टॉफी एक खाद्य वस्तु है। यहाँ बालक ने अनुकूलन के द्वारा खाने की क्रिया को आत्मसात कर रहा है अर्थात पुरानी बौद्धिक क्रिया को नवीन क्रिया के साथ समायोजित करता है। अनुकूलन की यह प्रक्रिया जीवनपर्यंत चलती रहती है।

समाविष्टिकरण (Accommodation)से तात्पर्य वह प्रक्रिया है, जिसमें बालक नए अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है। जिससे वह

वातावरण के साथ समायोजन कर सके। उदाहरण के लिए जब बालक को टॉफी के स्थान पर रसगुल्ला देते हैं तो बालक यह जानता है,टॉफी मीठी होती है पर अब वह अपने मानसिक सरंचना (Mental structure) में परिवर्तन लाता है, और इसमें नई बातें जोड़ता है कि टॉफी और रसगुल्ले दोनों अलग-अलग खाद्य-पदार्थ हैं जबकिदोनों का स्वाद मीठा है।

आत्मसातीकरण तथा समाविष्टिकरण तभी संभव है जब वातावरण के उद्दीपक बालक के बौद्धिक स्तर (Intellectual level) के अनुरूप होते हैं।

iv. **साम्यधारण (Equilibration)** –साम्यधारण (Equilibration) वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक आत्मसातीकरण (Assimilation) और समाविष्टिकरण (Accommodation) के बीच संतुलन (Balance) स्थापित करता है। पियाजे के अनुसार अगर किसी बालक के सामने जब कोई समस्या आती है जिसका पूर्व अनुभव उसे नहीं होता है तो वह पूर्व अनुभूति के साथ उसे आत्मसात (Assimilate) करता है। फिर भी अगर समस्या का हल नहीं होता है तो वह अपने पूर्व अनुभव को अपने अनुसार रूपान्तरित (Modification) करता है। अर्थात वह संतुलन कायम रखने के लिए आत्मसातीकरण और समायोजन दोनों प्रक्रिया करना शुरू कर देते हैं।

v. **संरक्षण (Conservation)** –पियाजे के अनुसार संरक्षण का अर्थ वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को समझने और वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व के परिवर्तन में अन्तर करने की प्रक्रिया से है। दूसरे शब्दों में, संरक्षण वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा बालक में एक ओर वातावरण के परितर्वन तथा स्थिरता में अन्तर करने की क्षमता और दूसरी ओर वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व में परिवर्तन के बीच अन्तर करने की क्षमता से है।

vi. **संज्ञानात्मक सरंचना (Cognitive structure)** – पियाजे ने मानसिक योग्यताओं के सेट (Set) को संज्ञानात्मक संरचना की संज्ञा दी है। भिन्न-भिन्न आयु में बालकों की संज्ञानात्मक संरचना भिन्न-भिन्न हुआ करती है। बढ़ती हुई आयु के साथ यह संज्ञानात्मक संरचना सरल से जटिल बनती जाती है।

vii. **मानसिक प्रचालन (Mental Operation)** –मानसिक-प्रचालन का अर्थ संज्ञानात्मक संरचना की सक्रियता से है। जब बालक किसी समस्या का समाधान करना शुरू करता है तो उसकी मानसिक संरचना सक्रिय बन जाती है। इसे ही मानसिक संक्रिया या मानसिक प्रचालन कहते हैं।

viii. **स्कीम्स (Schemes)** –पियाजे के सिद्धान्त का यह संप्रत्यय वास्तव में मानसिक प्रचालन (Mental operation) संप्रत्यय का बाह्य रूप है। जब मानसिक प्रचालन बाह्य रूप से अभिव्यक्त (Expressed) होता है तो इसी अभिव्यक्त रूप को स्कीम्स कहते हैं।

ix. **स्कीमा (Schema)** –पियाजे के अनुसार स्कीमा का अर्थ ऐसी मानसिक संरचना है, जिसका समान्यीकरण (Generalization) संभव हो। यह संप्रत्यय वस्तुत: संज्ञानात्मक संरचना तथा मानसिक प्रचालन के संप्रत्ययों से गहरे रूप से सम्बद्ध है।

x. **विकेन्द्रण (De centering)** –इस संप्रत्यय का संबंध यथार्थ चिंतन से है। विकेन्द्रण का अर्थ है कि कोई बालक किसी समस्या के समाधान के संबंध में किस सीमा तक वास्तविक ढंग से सोच-विचार करता है। इस संप्रत्यय का विपरीत (Opposite) आत्मकेन्द्रण (Ego centering) है। शुरू में बालक आत्मकेन्द्रित रूप से सोचता है और बाद में उम्र बढ़ने पर विकेन्द्रित ढंग से सोचने लगता है।

xi. **पारस्परिक क्रिया (Interaction)** –पियाजे के अनुसार बच्चों में वास्तविकता (Reality) को समझने तथा उसकी खोज करने की क्षमता न केवल बच्चों की प्रौढ़ता (Maturity) पर बल्कि उनके शिक्षण पर निर्भर करती है। यह दोनों की पारस्परिक क्रिया (Interaction)पर आधारित होतेहैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. अनुकूलन (Adaptation)के अंतर्गत दो प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं _____ तथा आत्मसातीकरण।
2. _____ संबंध यथार्थ चिंतन से है।
3. पियाजे का जन्म, 9 अगस्त सन् 1896 को _____ में हुआ था।
4. _____ ने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
5. मानसिक योग्यताओं के सेट (Set) को _____कहते हैं।

4.6 संज्ञानात्मक विकास की अवस्था (Stages of Cognitive Development)

1. संवेदी पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)
2. पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage)
3. मूर्त-सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation)
4. अपौचारिक सक्रिय अवस्था (Period of formal operation)

1. संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage)

यह अवस्था जन्म से दो साल तक की होती है। इस अवस्था में बालक कुछ संवेदी-पेशीय क्रियाएँ जैसे पकड़ना, चूसना, चीजों को इधर-उधर करना आदि स्वत: सहज क्रियाओं से व्यवस्थित क्रियाओं की ओर अग्रसित होता है। पियाजे के अनुसार इस अवस्था में शिशुओं का बौद्धिक और संज्ञानात्मक विकास निम्नलिखित छ: उप-अवस्थाओं से होकर गुजरता है-

i. पहली अवस्था को **प्रतिवर्त्त क्रिया की अवस्था (Stage of Reflex Actions)**कहा जाता है जो जन्म से एक महीना तक की होती है। इस प्रतिवर्त्त क्रिया की अवस्था में शिशु

अपने को नए वातावरण में अभियोजन करने की कोशिश करता है। इस समय चूसने की क्रिया सबसे प्रबल होती है।

ii. दूसरी अवस्था को **प्रमुख वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of Circular Reaction)** कहा जाता है जो 1 से 4 महीने तक होती है। इस अवस्था में शिशुओं की प्रतिवर्त्त क्रियाएँ(Reflex activities) में कुछ हद तक परिवर्तन होता है। शिशु अपने को नए वातावरण में अभियोजन करने की कोशिश करता है। वह अपने अनुभवों को दोहराता हैतथा उसमें रूपान्तरण लाने का प्रयास करता है। इसे प्रमुख (Primary)इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये प्रतिवर्त्त क्रियाएँ प्रमुख होती है एवं उन्हें वृत्तीय (Circular) इसलिए कहा जाता है क्योंकि इन क्रियाओं को वे बार-बार दोहराते हैं।

iii. तीसरी अवस्था **गौण वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Stage of secondary circular reaction)** – होती है जो 4 से 8 महीने तक की होती है। इस अवस्था में शिशु ऐसी क्रियाएँ करता है जो रूचिकर होती हैं तथा अपने आस-पास की वस्तुओं को छूने की कोशिश करता है। जैसे चादर पर पड़े खिलौने को पाने के लिए चादर को खींचकर अपनी तरफ करता है, और फिर खिलौनेको ले लेता है।

iv. चौथी अवस्था **गौण – स्कीमटा के समन्वय की अवस्था (Stage of coordination of secondary schemata)**जो 6 महीने से 12 महीने तक होती है। इस अवधि में शिशु अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सहज क्रिया को इच्छानुसार प्रयोग करना सीख जाता है। वह वयस्कों द्वारा किए गएकार्यों का अनुकरण (Imitation)करने की कोशिश करता है। जैसे यदि हम बच्चे के सामने हाथ हिलाते हैं तो वह उसी तरह हाथ हिलाता है। वह इस अवधि में स्कीमटा का उपयोग कर एक परिस्थिति से दूसरे परिस्थिति के समस्या का हल करता है।

v. **तृतीय वृत्तीय प्रतिक्रिया की अवस्था (Tertiary circular reaction)** – 12 महीने से 18 महीने तक होती है। इस अवस्था में बालक प्रयास एवं त्रुटि के आधार पर अपनी परिस्थितियों को समझाने की कोशिश करने से पहले सोचना प्रारंभ कर देता है। इस अवधि में बच्चे में उत्सुकता (Curiosity) उत्पन्न होती है तथा भाषा का भी प्रयोग करना शुरू कर देता है।

vi. **मानसिक संयोग द्वारा न□साधनों की खोज अवस्था (Stage of the new means through mental combination)** 18 महीनों से 2 साल तक में शिशु प्रतिमा (Image) का उपयोग करना सीख जाता है। अब वह खुद ही समस्या का हल प्रतीकात्मक चिंतन क्रिया (Symbolic thought process) द्वारा ढूँढ लेता है। इस अवस्था में संज्ञानात्मक विकास के साथ बौद्धिक-विकास भी बहुत तेजी से होता है।

2. **पूर्व सक्रियात्मक अवस्था (Pre operational stage)**

संज्ञानात्मक विकास की पूर्व-संक्रियात्मक अवस्था लगभग दो साल से प्रारंभ होकर सात साल तक होती है। इस अवस्था में संकेतात्मक कार्यों की उत्पत्ति (Emergence of symbolic functions) तथा भाषा का प्रयोग (Use of language) होता है। पियाजे ने इस अवस्था को दो भागों में बाँटा है।

i. **प्राकसंप्रत्यात्मक अवधि (Pre conceptual period)** – जो कि 2 से 4 साल तक होता है। यह अवस्था वस्तुत: परिवर्तन की अवस्था है जिसे खोज (Exploration)की अवस्था भी कही जाती है। इस अवस्था में बच्चे जो संकेत (Symbol) का प्रयोग करते हैं वह थोड़ी-सी अव्यवस्थित (Disorganized) होती है। इस अवस्था में बच्चे बहुत सारी ऐसी क्रियाएँ करते हैं जिसे इससे पहले वह नहीं कर सकते थे। जैसे संकेत (Symbol), व चिन्ह (Signs) का प्रयोग कब और कहाँ किया जाता है। वे शब्दों (Words) का प्रयोग कर समस्याओं का समाधान करते हैं। बालक विभिन्न घटनाओं या कार्यों के संबंध में क्यों तथा कैसे (Why and How) जैसे प्रश्नों को जानने में रूचि रखते हैं। वे जिस कार्य को दूसरों के द्वारा करते हैं या होते देखते हैं उस कार्य को करने लगते हैं। उनमें बड़ों का अनुकरण (Imitation) करने की प्रवृति होती है। लड़के अपने पिता का अनुकरण कर स्कूटर चलाने या समाचार-पत्र पढ़ने तथा लडकियाँ अपनी माँ की तरह गुड़िया को खिलाना, तैयार करना जैसे काम करती हैं। इस अवस्था में भाषा का सबसे ज्यादा विकास होता है जिसके लिए समृद्ध भाषाई वातावरण (Rich verbal Environment) की जरूरत होती है जहाँ बालक को अपने भाषा के विकास के लिए अधिक अवसर मिल सके।

   पियाजे ने प्राक सम्प्रत्यात्मक अवस्था की दो परिसीमाएँ (Limitations)बताई हैं जो निम्नलिखित हैं -

   a) **जीववाद (Animism)** –जीववाद में बालक निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझने लगता है उनके अनुसार जो भी वस्तुएँ हिलती हैं या घूमती हैं वे वस्तुएँ सजीव हैं। जैसे सूरज, बादल, पंखा ये सभी अपना स्थान परिवर्तन करते हैं, व पंखा घूमता है, इसलिए ये सभी सजीव हैं।

   b) **आत्मकेन्द्रिता (Egocentrism)** – आत्मकेन्द्रिता में बालक यह सोचता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए बनाई गई है। इस दुनिया की सारी चीजें उसी के इर्द-गिर्द घूमती हैं। वह खुद को सबसे ज्यादा महत्व देता है। पियाजे के अनुसार उसकी बोली (Speech) का लगभग 38% आत्मकेन्द्रित होता है।

ii. **अंतर्दर्शी अवधि (Intuitive period)** – यह अवधि 4 साल से 7 साल तक होती है। इस अवधि में बालक की चिन्तन और तार्किक क्षमता पहले से अधिक सुदृढ़ हो जाती है। पियाजे के अनुसार अंतर्दर्शी चिन्तन ऐसा चिन्तन है जिसमें बिना किसी तर्क के किसी बात को तुरन्त स्वीकार कर लेना। अर्थात वह अगर कोई समस्या का हल करता है तो इसके समाधान का कारण वह नहीं बता सकता है। समस्या- समाधान में सन्निहित मानसिक

प्रक्रिया के पीछे छिपे नियमों के बारे में उसकी जानकारी नहीं होती। पियाजे ने अंतर्दर्शी चिन्तन (Intuitive Thinking) की कुछ परिसीमाएँ बताई हैं -

a) इस उम्र के बालकों के विचार अपरिवर्त्य (Irreversible)होते हैं। अर्थात बालक मानसिक क्रम के प्रारम्भिक बिन्दु पर पुन: लौट नहीं पाता है (Gupta &Gupta 2002)। जैसे अगर 4 साल के किसी बच्चे से कहा जाए कि तुम्हारी मम्मी जैसे अंकित की मौसी है, उसी तरह उसकी मम्मी तुम्हारी मौसी होगी यह बात उसे समझ में नहीं आएगी।

b) पियाजे के अनुसार उस उम्र के बच्चों में तार्किक चिन्तन की कमी रहती है, जिसे पियाजे ने संरक्षण का सिद्धान्त (Law of conservation) कहा है। जैसे अगर किसी वस्तु के आकार को बदल दिया जाए तो उसकी मात्रा पर उसका कोई प्रभाव नहीं होगा, इस बात की समझ उनमें नहीं होती है।

3. मूर्त सक्रिय अवस्था (Period of Concrete Operation) –

यह अवस्था 7 साल से 12 साल तक चलती है। इस अवस्था में बच्चे का अतार्किक चिन्तन संक्रियात्मक विचारों का स्थान ले लेता है। बच्चे अब जोड़ना (Addition) घटाना (Subtraction) गुणा करना (Multiplication) और भाग करना (Division) कर सकते हैं। लेकिन अगर उसे शाब्दिक कथन (Verbal statement) के आधार पर मानसिक क्रियाएँ करने को कहा जाए तो वे नहीं कर सकते हैं। इस अवस्था के दौरान बालकों द्वारा तीन मानसिक निपुणता हासिल कर ली जाती है। ये तीन योग्यताएँ विचारों परिवर्त्य(Reversibility of Thought), संरक्षण (Conservation) तथा वर्गीकरण व पूर्ण अंश प्रत्ययों का उपयोग (Classification and part whole conception) हैं। इस अवस्था में विचारों की विलोमता में बालक सक्षम हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं में संरक्षण (Conservation in physical objects) बालकों की मानसिक प्रक्रिया का एक अंग बन जाता है। सबसे महत्वपूर्ण विकास उनकी क्रमबद्धता अर्थात विभिन्न वस्तुओं को उनके आकार व भार आदि के दृष्टि से अलग करना तथा छोटे से बड़े क्रम में वर्गीकरण करना इस अवस्था में होता है। इस अवस्था के दौरान बालक अंश तथा पूर्ण दोनों के संबंध में विचार करना प्रारंभ कर देता है। अर्थातबालकों में यह क्षमता विकसित हो जाती है कि वह वस्तुओं को कुछ भागों में बाँट सकें और उन भागों के समस्या का समाधान तार्किक ढंग से कर सकें।

मूर्त सक्रिय अवस्था में बालक का ध्यान अपनी ओर से हटकर दूसरे की ओर जाने लगता है। अर्थात उसके सामाजीकरण (Socialization) की शुरूआत होती है। इस अवस्था में मानसिक विकास की दो सीमाएँ पाई जाती हैं-

a. इस अवस्था में बालक तार्किक चिन्तन (Logical Thinking) तभी कर सकते हैं जब उनके सामने वस्तु ठोस रूप से उपस्थित की गई हो।

b. दूसरा, इस अवस्था में ठोस संक्रियात्मक चिन्तन की दूसरी परिसीमा यह है कि यह बहुत क्रमबद्ध नहीं होती है। किसी समस्या के तार्किक रूप से संभावित सभी समाधान के बारे में बालक नहीं सोच पाता है (ब्राउन तथा कूक,1986)।

4. औपचारिक – सक्रिय अवस्था (Period of Formal Operations)

यह संज्ञानात्मक विकास की अंतिमअवस्था है जो लगभग 11 साल से 15 साल की आयु तक होती है। इस अवस्था के दौरान बालक अमूर्त बातों के संबंध में तार्किक चिन्तन करने की क्षमता विकसित कर लेता है। इस अवस्था को किशोरावस्था (Period of Adolescence) कहा जाता है। बच्चे अब वर्तमान, भूत एवं भविष्य (Present Past & Future) के बीच अन्तर समझने लगते हैं। समस्या का समाधान सुव्यवस्थित ढंग से करने लगते हैं। इस अवस्था में बालक परिकल्पनाएँ (Hypothesis) बनाने के योग्य हो जाता है। उसकी व्याख्या करता है तथा व्याख्या के आधार पर निष्कर्ष भी निकालता है। अब बालक बड़ों के उत्तर दायित्व लेने के योग्य हो जाता है। पियाजेके अनुसार इस अवस्था में बालकों में बौद्धिक संगठन अधिक क्रमबद्ध हो जाता है। बालक एक साथ अधिक से अधिक बातों को समझने तथा उसका विचार करने में समर्थ हो जाता है। वे अपने बारे में विचार करते हैं इसलिए वे अकसर स्व आलोचक बन जाते हैं। धीरे-धीरे उनमें नैतिकता विकसित होने लगती है जिसके आधार पर वे नैतिक निर्णय (Moral Judgment) भी लेने लगते हैं।

इस तरह पियाजे द्वारा बताई गई संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की चार अवस्थाएँ इस बात का द्योतक है कि किसी भी बालक का संज्ञानात्मक विकास चार विभिन्न अवस्थाओं से होकर गुजरता है जिसमें कुछ बालकों का बौद्धिक विकास तीव्र गति से होता है। कुछ का औसत गति से तथा कुछ का धीमी गति से।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6. संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory Motor stage) जन्म से_____तक होती है।
7. ज्याँ पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास की _____अवस्थाएँ होती हैं।
8. अंतर्दर्शी अवधि (Intuitive period) 4 साल से _____साल तक होता है।
9. पियाजेनेप्राकसंप्रत्यातमक अवस्थाएँ की दो परिसीमाएँ (Limitations) बताई हैं जीववाद तथा _____।
10. संज्ञानात्मक विकास की अंतिमअवस्था को _____कहते हैं जो लगभग 11 साल से 15 साल की आयु तक होती है।
11. बालक निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझने लगता है यह प्रक्रिया _____के नाम से जाना जाता है।

12. _____अवस्था में संकेतात्मक कार्यों की उत्पत्ति (Emergence of symbolic functions) तथा भाषा का प्रयोग (Use of language) होता है।
13. जब बालक यह सोचता है कि यह दुनिया सिर्फ उसी के लिए बनाई गई है इस प्रकार की सोच को _____कहते हैं।

पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की किसी अन्य सिद्धान्त के साथ तुलना नहीं की जा सकती है। यह सिद्धान्त हर तरह से सार्थक माना जाता है। इस सिद्धान्त के इतना महत्वपूर्ण और लोकप्रिय होने के बावजूद कुछ आलोचकों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की है।

4.8 संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का मूल्यांकन Evaluation of Theory of Cognitive Development

i. कुछ आलोचकों का कहना है कि कुछ ऐसे जटिल व्यवहार जैसे अनुकरण (Imitation)तथा संरक्षण (Conservation)शुरूआत में बच्चों में पाए जाते हैं फिर धीरे-धीरे समाप्त हो जाते हैं। इस तरह के व्यवहार की व्याख्या पियाजे के सिद्धान्त के आधार पर करना कठिन है।
ii. पियाजे के अनुसार अगर कोई बालक किसी समस्या का समाधान नहीं कर पाता है तो इसका यह मतलब लगा लिया जाता है कि उनमें संज्ञानात्मक दक्षता (Cognitive competence)की कमी है। आलोचकों का मानना है कि अगर भाषा में सुधार कर बच्चों को प्रश्न पूछा जाए तो उसका समाधान करने में वे सफल होंगे। इससे इस बात की पुष्टि होती है इस मामले में पियाजे की व्याख्या अधिक विश्वसनीय नहीं है।
iii. आलोचकों के अनुसार बालकों के व्यवहारों का प्रेक्षण (Observation) विधि जो पियाजे के द्वारा अपनाया गया है उनमें वस्तुनिष्ठता (Objectivity) की कमी है।
iv. चार्ल्सवर्थ (1968)का मानना है कि पियाजे ने बच्चों की क्रियात्मक गतिविधि (Motor activity)के प्रेक्षण के आधार पर उनका संज्ञानात्मक विकास का वर्णन किया है, लेकिन चार्ल्सवर्थ के अनुसार कोई भी गामक कौशल (Motor skill)बच्चे के संज्ञानात्मक विकास के वर्णन में असमर्थ है। पियाजे के सिद्धान्त की समीक्षा करने पर पता चलता है कि यह सिद्धान्त सभी संस्कृतियों (Cultures)तथा सामाजिक-आर्थिक अवस्थाओं (Socio-economic conditions)के बच्चे के संज्ञानात्मक विकास की व्याख्या समुचित रूप से करने में सफल नहीं है। हिल्गार्ड, ऐटकिंसन तथा ऐटकिंसन (Hilgard, Atkinson and Atkinson 1976) के अनुसार निम्न वर्ग के बच्चों (Lower-class children) में संरक्षात्मक संप्रत्ययों (Conservation concepts) का विकास मध्य वर्ग के बच्चे (Middle class children) से अधिक आयु में होता है। इसी तरह देहाती बच्चों में शहरी बच्चों की तुलना में संरक्षण-संप्रत्यय का विकास कम ही आयु में हो जाता है।

इस दिशा में यह देखने का प्रयास किया गया है कि विशेष प्रशिक्षण (Special training)के द्वारा संज्ञानात्मक अवस्थाओं (Cognitive stages)में सुधार लाकर बौद्धिक योग्यता की प्रगति की रफ्तार को तेज किया जा सकता है या नहीं। संरक्षण-संप्रत्यय (Conservation concepts) पर किए गए अध्ययनों से परस्पर विरोधी परिणाम मिले हैं। कुछ अध्ययनों से पता चलता है कि परीक्षण से संप्रत्यय सीखने में सफलता मिलती है। परन्तु कुछ दूसरे अध्ययनोंसे पता चलता है कि संप्रत्यय को सिखाया नहीं जा सकता है। ग्लैमर तथा रेसनिक (Glaser and Resnick,1972) ने अपने अध्ययन में पाया कि निर्देशन-विधि (Instruction method) द्वारा संज्ञानात्मक विकास की रफ्तार तेज की जा सकती है। संज्ञानात्मक विकास की एक अवस्था को दूसरी अवस्था में परिवर्तित होना परिपक्वता (Maturation) पर निर्भर करता है। अत: जब बच्चे को उसकी परिपक्वता को ध्यान में रखकर निर्देशन दिया जाए तो अधिक अच्छा है।

अत: हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि संज्ञानात्मक विकास की समुचित व्याख्या करने में यह सिद्धान्त सफल नहीं है। पियाजे के सिद्धान्त के ढाँचे (Frame work) को स्वीकार किया जा सकता है, परन्तु सभी संस्कृतियों के बच्चों को संज्ञानात्मक योग्यता के विकास के लिए उनकी चार अवस्थाओं को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है। शोध कार्यों से पता चलता है कि संज्ञानात्मक योग्यता के विकास पर अनेक चरों (Variables) का प्रभाव पड़ता है। रैना (Raina, 1968), सिंह (Singh,1977),अहमद (Ahmed, 1980), आदि के अध्ययनों से स्पष्ट है कि सृजनात्मक चिन्तन (Creative thinking) के विकास पर सामाजिक आर्थिक स्थिति (SES) का गहरा प्रभाव पड़ता है। सेहगल (Sehagal, 1978), सिंह (Singh 1979), आदि ने अपने अध्ययन में देखा कि रचनात्मक चिन्तन के विकास पर स्थान (Locality) का सार्थक प्रभाव पड़ता है। रैना (Raina, 1982) के अनुसार लड़के तथा लड़कियों में संज्ञानात्मक योग्यता का विकास समानरूप से नहीं होता है। सक्सेना (Saxena 1982) ने अपने अध्ययन में पाया कि सम्पन्न बच्चों की अपेक्षा वंचित बच्चों (Deprived children)मेंअमूर्त विवेक (AbstractReasoning) तथा साहचर्य सीखने (Associative learning) की योग्यताएँ देर से विकसित होती हैं तथा सीमित होती हैं। इन सारे तथ्यों (Facts) के आलोक की समुचित व्याख्या पियाजे के सिद्धान्त से सम्भव नहीं है। इन्हीं त्रुटियों को ध्यान में रखते हुए पासकौल लियोन (Pascaul-Leone, 1983) ने पियाजे के सिद्धान्त को संशोधित तथा परिमार्जित करके प्रस्तुत किया, जो पियाजे के मौलिक सिद्धान्त से अधिक संतोषजनक है।

इन सारी आलोचनाओं के बावजूद पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को पथ-प्रदर्शक माना जाता है।

4.9 शैक्षिक निहितार्थ

पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्तशिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस सिद्धांत के शैक्षिक निहितार्थ निम्नवत हैं-

1. पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त बालकों के बौद्धिक विकास की प्रक्रिया को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है।
2. इस सिद्धांत के द्वारा शिक्षण – अधिगम प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाया जा सकता है।
3. संज्ञानात्मक विकास अवस्था के आधार पर पाठ्यक्रम के संगठन में यह सिद्धांत काफी मदद पहुँचाती है।
4. संज्ञानात्मक विकास की समुचित व्याख्या करने में यह सिद्धान्त एक सफल आधार प्रदान करता है।
5. पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त शैक्षिक शोध का एक बहुत बड़ा क्षेत्र है।

4.10 सारांश

विकासात्मक मनोविज्ञान के क्षेत्र में पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की महत्वपूर्ण भूमिका है। पियाजे के इसी सिद्धान्त के आधार पर बच्चों के क्रमिक विकास (Sequential Development) के बारे में जाना जाता है। पियाजे ने संज्ञानात्मक सिद्धान्त का वर्णन करते हुए यह कहा है कि बच्चे खुद अपने विकास में एक सक्रिय भूमिका अदा करते हैं और खुद को नए वातावरण में अभियोजनकरनेकी कोशिश करते हैं। पियाजे ने प्रत्येक विकासात्मक अवस्था (Developmental stages) का विस्तृत विवरण देते हुए कहा कि बच्चों में नई-नई स्कीमटा (Schemata) की उत्पत्ति, आत्मसातीकरण (Assimilation) तथा समाविष्टिकरण (Accommodation) के बीच अन्त:क्रिया का कारण होता है।

आत्मसातीकरण (Assimilation) पुराने अनुभवों को नए अनुभवों के साथ समायोजित करने की प्रक्रिया है और समाविष्टिकरण (Accommodation) से तात्पर्य जिसमें बालक नए अनुभवों के अनुसार पुरानी संरचना में रूपान्तरण (Modification) करने की कोशिश करता है। और जब बालक आत्मसातीकरण और समाविष्टिकरण में संतुलन करने की चेष्टा करता है तो उस प्रक्रिया को साम्यधारणा (Equilibration) कहते हैं।

पियाजे (Piaget) के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को चार अवस्था में विभाजित किया गया है-

i. **संवेदी-पेशीय अवस्था (Sensory motor stage)** जो जन्म से 2 साल तक की होती है। इस अवस्था में शिशु अपने सहजात प्रतिक्रिया को बदलने की कोशिश करता है। इस दौरान

चूसने की क्रिया (Sucking behavior) प्रबल होती है। शिशु का बौद्धिक विकास बहुत तेजी से होता है। इस अवस्था में शिशु बड़ों का अनुकरण (Imitation) करता है तथा अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अपनी क्रिया को दोहराना सीख जाता है। इस अवस्था में बालक प्रयास एवं त्रुटि विधि का भी प्रयोग करता है। शिशु खुद ही समस्या का समाधान करना सीख जाता है।

ii. **पूर्व- संक्रियात्मक अवस्था (Pre-operational stage)** यह अवस्था 2 साल से 7 साल तक का होती है, जिसमें बच्चे संकेत (Symbols) का प्रयोग करते हैं जो शुरू-शुरू में अव्यवस्थित होते हैं। भाषा का प्रयोग करना सीख जाते हैं। इस अवस्था में तार्किक चिन्तन क्षमता और सुदृढ़ हो जाती है लेकिन पियाजे के अनुसार इस अवस्था की कुछ परिसीमाएँ हैं – जैसे जीववाद (Animism) आत्मकेन्द्रिता(Egocentrism)अपरिवर्त्य (Irreversibility) आदि।

iii. **मूर्त– सक्रिय अवस्था (Period of concrete operation)** यह अवस्था 7 साल से 12 साल तक होती है, जिसमें बच्चों का अतार्किक चिन्तन संक्रियात्मक विचारों का स्थान ले लेता है। इस अवस्था में बालक विचारों परिवर्त्य में सक्षम हो जाते हैं। भौतिक वस्तुओं में संरक्षण करने योग्य हो जाते हैं। बालकों में क्रमबद्धता (Classification) के गुण भी इस अवस्था में पाए जाते हैं। परन्तु इस अवस्था में दो दोष भी पाए जाते हैं। (1) वे सक्रिय चिन्तन तभी कर सकते हैं जब उनके सामने ठोस वस्तु उपस्थित हो। तार्किक कथन (Verbal statement) के आधार पर समाधान नहीं कर सकते हैं।

iv. **औपचारिक सक्रिय अवस्था (Period of formal operation)**जो लगभग 11 साल से 15 साल तक होती है। इस अवस्था को किशोरावस्था (Period of Adolescence) कहा गया है। समस्या का समाधान व्यवस्थित ढंग से करता है तथा भूत, वर्तमान तथा भविष्य के बीच अन्तर समझने लगता है। इस अवस्था में बालक परिकल्पनाएँ बनाता है। उसकी व्याख्या करता है तथा निष्कर्ष भी निकालने की कोशिश करता है। उसकी सोच भी वयस्क जैसी हो जाती है। नैतिक तथा अनैतिक (Moral and Immoral) के अंतर को समझने लगता है।

इस तरह पियाजे ने संज्ञानात्मक विकास सिद्धान्त के माध्यम से बौद्धिक विकास की हर अवस्था को विस्तृत ढंग से प्रस्तुत किया है।

4.11 शब्दावली

1. **संज्ञान (Cognition):**मानसिक प्रक्रिया जिसका संबंध चिंतन (Thinking), समस्या-समाधान, भाषा संप्रेषण तथा और भी बहुत सारी मानसिक प्रक्रियाओं से है।

2. **स्कीमाटा (Schemata):** अनुभव (Experience) या व्यवहार (Behavior) को संगठित करने की ज्ञानात्मक संरचना।
3. **संगठन (Organization):** प्रत्यक्षीकृत तथा बौद्धिक सूचनाओं (perceptual and cognitive information) को सही तरीके से बौद्धिक संरचनाओं (cognitive structure) में व्यवस्थित करना।
4. **अनुकूलन (Adaptation):** वह प्रक्रियाजिसमें बालक अपने को बाहरी वातावरण (External Environment) के साथ समायोजन करने की कोशिश करता है।
5. **आत्मसातीकरण (Assimilation)**: एक नई वस्तु अथवा घटना को वर्तमान अनुभवों में सम्मिलित करने की प्रक्रिया है।
6. **समाविष्टिकरण (Accommodation):** वह प्रक्रिया जिसमें बालक नए अनुभवों की दृष्टि से पूर्ववर्ती संरचना में सुधार लाने या परिवर्तन लाने की कोशिश करता है।
7. **संरक्षण (Conservation):** वातावरण में परिवर्तन तथा स्थिरता को समझने और वस्तु के रंग-रूप में परिवर्तन तथा उसके तत्व के परिवर्तन में अन्तर करने की प्रक्रिया।
8. **संज्ञानात्मक सरंचना (Cognitive structure):**मानसिक योग्यताओं का समूह।
9. **मानसिक प्रचालन (Mental Operation):** संज्ञानात्मक संरचना की सक्रियता।
10. **स्कीम्स (Schemes):** मानसिक प्रचालन (Mental operation) संप्रत्यय का बाह्य रूप।
11. **स्कीमा (Schema):** ऐसी मानसिक संरचना जिसका समान्यीकरण (Generalization) संभव हो।
12. **विकेन्द्रण (De centering):** यथार्थ चिंतन की क्षमता अर्थात कोई बालक किसी समस्या के समाधान के संबंध में किस सीमा तक वास्तविक ढंग से सोच-विचार करता है।
13. **जीववाद (Animism)**: निर्जीव वस्तुओं को भी सजीव समझना ।
14. **आत्मकेन्द्रिता (Egocentrism)**: खुद को केन्द्र में रखकर कोई निर्णय लेना।
15. **साम्यधारणा (Equilibration)**: आत्मसातीकरण और समाविष्टिकरण में संतुलन करने की प्रक्रिया।

4.12 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. समाविष्टिकरण
2. विकेन्द्रण
3. स्विट्जरलैंड
4. पियाजे
5. संज्ञानात्मक संरचना
6. दो

7. चार
8. सात
9. आत्मकेन्द्रिता
10. औपचारिक – सक्रिय अवस्था
11. जीववाद
12. पूर्व सक्रियात्मक अवस्था
13. आत्मकेन्द्रिता

4.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीवास्तव, डी०एन० व प्रीति वर्मा (2008), बाल मनोविज्ञान, बाल विकास, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
2. हर्लाक एलिजावेथ (1997) : विकास मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
3. सिंह,ए0के0 (2007): उच्चतर मनोविज्ञान, वाराणसी, मोतीलाल बनारसी दास।
4. मंगल, एस0 के0 (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, नई दिल्ली, प्रैंटिस हाल ऑफ इंडिया।
5. सिंह,ए0के0 (2007): शिक्षा मनोविज्ञान, पटना, भारती भवन पब्लिसर्श।

4.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।
   Critically evaluate the cognitive development theory of Piaget.
2. संज्ञानात्मक विकास से आप क्या समझते हैं ? पियाजे के अनुसार संज्ञानात्मक विकास के अवस्थाओं का वर्णन कीजिए।
   What do you mean by cognitive development? Describe the stages of cognitive development according to Piaget.
3. जन्म से किशोरावस्था तक बालकों में संज्ञानात्मक विकास की प्रक्रिया कैसे संपन्न होती है, का वर्णन करें।
   Describe how cognitive development takes place among children from birth to adolescence.
4. पियाजे के सिद्धान्त के कुछ महत्वपूर्ण संप्रत्ययों जैसे स्कीमाटा, संगठन, आत्मसातीकरण, समाविष्टिकरण तथा साम्यधारणा की व्याख्या कीजिए।
   Discuss some major concepts such as schemata, organization, assimilation, accommodation and equilibration of Piaget's cognitive development theory.

इकाई 5- लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास का सिद्धान्त तथा इसका शैक्षिक निहितार्थ

Lawrence Kohlberg's Theory of Moral Development and Its Educational Implications

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 लॉरेन्स कोहलबर्ग
5.4 नैतिक विकास से संबंधित संप्रत्यय
5.5 कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त
5.6 लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की अवधारणाएँ
5.7 अवस्था संप्रत्यय का महत्व
5.8 शैक्षिक निहितार्थ
5.9 लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त का मूल्यांकन
5.10 सारांश
5.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

वृद्धि एवं विकास की विशेषता प्रदर्शित करने वाला कुन्जी-पद, किसी व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व के संरचनात्मक एवं क्रियात्मक पक्षों में होने वाला परिर्वतन (Changes)है । विकास संरचनात्मक एवं क्रियात्मक सम्पूर्ण परिवर्तन से संबंधित है। इसे क्रमित एवं संगत परिवर्तन की प्रगतिशील श्रेणी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है । प्रगतिशील (Progressive) पद परिवर्तनों की अभिदिशा जिससे वे पश्चगामी होने के बजाए अग्रगामी होते है , को व्यक्त करता है ।'क्रमित' एवं 'संगत' पदों से यह तार्त्पय है कि वे आगे बढ़ते है या जीवन विस्तार की कालावधि की शारीरिक विकास, पेशीय विकास ,संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक विकास, भावनात्मक विकास तथा नैतिक विकास जैसी विभिन्न क्रियाओं में होने

वाले परिवर्तनों की प्रवृत्ति की व्याख्या करता है। जैसा कि विकास किसी व्यक्ति की संरचना एवं इसकी क्रियात्मकता में होने वाले मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तनों को सम्मिलत करता है , यह एक प्रकिया है जो कि जीवन की संकल्पना से प्रारम्भ होकर मृत्यु तक चलती है। विकास की प्रक्रिया समय के सापेक्ष जीव में होने वाले मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तनों से अत्यधिक संबंधित है। समय के साथ-साथ एक शिशु वृद्धि एवं विकास के चरम पर होता है जिसे वयस्क कहते हैं। यह एक विशेष प्रवृत्ति (Trend) या तरीके का अनुसरण करता है। वृद्धि एवं विकास की प्रवृत्ति इसके सिद्धान्तीकरण के लिए हमेशा से ही विकासात्मक मनौवैज्ञानिकों का केन्द्रित क्षेत्र रहा है । व्यवहार के शारीरिक संज्ञानात्मक,भावनात्मक,सामाजिक,नैतिक पक्षों के उम्र विशेष परिवर्तनों को जानने हेतु बालक की विकासात्मक गतिकी सम्बन्धी सिद्धान्त अत्यधिक सहायक हैं। आजकल ,नैतिक विकास का अध्ययन मनोवैज्ञानिक शोधों का एक केन्द्र -बिंदु बन गया है। परिणामस्वरूप विकास के इस क्षेत्र का वर्तमान ज्ञान नैतिक विकास के ढांचे का एक स्वच्छ एवं सम्पूर्ण चित्र तथा इस ढांचे से विचलन के कारणों को प्रस्तुत करता है। नैतिक विकास के क्षेत्र में, ज्याँ पियाजे का नैतिक विकास सिद्धान्त, लॉरेन्स कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त, ब्रोन्फेन्ब्रेनर का नैतिक विकास सिद्धान्त विख्यात सिद्धान्तों में से कुछ सिद्धान्त हैं। नैतिक विकास को समझने हेतु यहाँ हम लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की विभिन्न विमाओं की चर्चा करेंगे।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. नैतिकता के सही अर्थ को जान सकेंगे।
2. नैतिक विकास की प्रकृति का वर्णन करने में सक्षम होंगे।
3. लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त से सम्बन्धित विभिन्न सम्प्रत्ययों की व्याख्या कर सकेंगे।
4. लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।
5. लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त के विवेचनात्मक मूल्यांकन कर सकेंगे।
6. लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थो की सोदाहरण व्याख्या करने मेंसक्षम होंगे।

5.3 लॉरेन्स कोहलबर्ग

लॉरेन्स कोहलबर्ग का कार्य पियाजे के परम्परागत शोधों का एक अतुलनीय उदाहरण है। एक श्रेष्ठ विकासात्मक मनोवैज्ञानिक कोहलबर्ग ने नैतिक विकास पर प्रकाश डाला तथा नैतिक चिन्तन के अवस्था सिद्धान्त को प्रस्तावित किया। यह सिद्धान्त पियाजे की मूल धारणाओं, जो कि नैतिक परिप्रेक्ष्य में व्यवहार में परिवर्तनों के होने पर विचार करता है, से एक कदम आगे है।

कोहलबर्ग (जन्म 1927) ब्रान्क्सविली, न्यूयार्क में पले बढ़े तथा इन्होंने मस्साचुसेट्स की एन्डोवर अकेडमी (Andover Academy) -तेज तथा सामान्यतया सम्पन्न छात्रों हेतु एक निजी उच्च विद्यालय, से अध्ययन किया । सन् 1948में आप स्नातक उपाधि प्राप्त करने हेतु शिकागो विश्वविद्यालय (University of Chicago) में नामांकित हुए। आपने यह कार्य एक वर्ष में ही सम्पन्न कर लिया। आप मनोविज्ञान में ग्रेजुएट कार्य हेतु शिकागो में ही रूके। सर्वप्रथम आपकी सोच एक नैदानिक मनोवैज्ञानिक (Clinical Psychologist) बनने की रही। जबकि आप जल्द ही पियाजे के कार्यों में रूचि लेने लगे तथा सामाजिक विषयों पर बच्चों एवं किशोरों का साक्षात्कार लेना प्रारम्भ कर दिया। आपका शोध परिणाम एक डॉक्टोरल शोध-प्रबन्ध (1958) था जो कि आपकी नूतन नैतिक विकास के अवस्था सिद्धान्त के रूप में परिणित हुआ।

कोहलबर्ग, एक विनीत व्यक्ति हैं जो कि एक विशुद्ध विद्वान भी हैं, ने मनोविज्ञान एवं दर्शन शास्त्र के विस्तृत विषयों के लिए गहन एवं लम्बे समय तक अध्यापन कार्य किया। कोहलबर्ग ने शिकागो विश्वविद्यालय में सन् 1962 से 1968 तक अध्यापन किया और 1968 से हार्वर्ड विश्वविद्यालय में अध्यापन में लगे रहे।

5.4 नैतिक विकास से संबंधित संप्रत्यय

लॉरेन्स कोहलबर्ग द्वारा विकसित नैतिक विकास के सिद्धान्त का विस्तरण प्रारम्भ करने से पूर्व हम नैतिकता, नैतिक व्यवहार, अनैतिक व्यवहार, निर्नैतिक व्यवहार, नैतिकता- अधिगम, नैतिक विकास एवं नैतिक न्याय के सही संप्रत्ययों को जानेंगे।

नैतिकता (Morality)

नैतिकता नैतिक मानक या नियम के अनुपालन तथा विरोध के संबंध को इंगित करती है। यह अधिकारों के मानक द्वारा जाँचे जाने वाले एक अभिप्राय, एक चरित्र, एक क्रिया, एक सिद्धान्त, या एक मनोभाव के गुणों से सम्बन्धित है। यह (नैतिकता) एक क्रिया का गुण है। जो इसे अच्छा बना देती है। नैतिकता अधिकार के अनुमोदित मानकों के किसी नियम का अनुपालन है। नैतिक जिम्मेदारियों के नियमों या सिद्धान्तों, या व्यक्तियों के सामाजिक जीवन की जिम्मेदारियों को नैतिकता कहा जाता है।

नैतिक व्यवहार (Moral Behaviour)

नैतिक व्यवहार से तात्पर्य उस व्यवहार से है जो कि किसी सामाजिक समूह के नैतिक नियमों के अनुपालन में किया जाता है। नैतिक शब्द का अंग्रेजी पर्याय मॉरल (Moral) लैटीन शब्द मोर्सि (Mores) से बना है जिसका अर्थ आचरणों, रीति-रिवाजों तथा लोक प्रथाओं से है। नैतिक व्यवहार, नैतिक सम्प्रत्ययों- उन व्यवहारों के नियम के व्यवहार जिससे एक संस्कृति के लोग अभ्यस्त हो चुके हैं तथा जिससे समूह के सभी सदस्यों के अपेक्षित व्यवहार रचना का पता लगाया जाता है द्वारा नियन्त्रित होते हैं। (ई0बी0 हरलॉक, 1997)

नैतिकता-अधिगम (Morality Learning)

सामाजिक अनुमन्य आचरण के रूप में व्यवहार करना सीखना एक लम्बी, मन्द प्रक्रिया है जो किशोरों में विस्तृत होती है। यह बचपन के महत्वपूर्ण विकासात्मक कार्यों में से एक है, छात्रों के विद्यालय में प्रवेश करने से पूर्व, उनसे यह आशा की जाती है कि वह सामान्य परिस्थितियों में उचित को अनुचित से अलग कर सकने में तथा चेतना के विकास का आधार बनाने में सक्षम है। बचपन के कालावधि के समाप्त होने से पूर्व, बच्चों से यह आशा की जाती है कि नैतिक निर्णयों को लेने हेतु वे मूल्यों का एक पैमाना तथा उनके निर्देशनार्थ चेतना का विकास कर लेगें।

नैतिक अधिगम के चार आवश्यक तत्व हैं:

1. समाज के नियमों, रीति रिवाजों तथा कानूनों के रूप में समाज के सदस्यों की सामाजिक प्रत्याशाओं को सीखना।
2. चेतना का विकास करना।
3. समूह की प्रत्याशाओं के अनुपालन में किसी व्यक्ति के व्यवहार के असफल होने पर अपराध-बोध एवं शर्मिन्दगी का अनुभव करना सीखना, तथा
4. समूह के सदस्यों के आशानुरूप सामाजिक अंतःक्रिया सीखने का अवसर प्राप्त करना।

सामान्यतः नैतिक व्यवहार सीखने की तीन विधियाँ हैः प्रयत्न एवं भूल अधिगम (Trial and Error learning) प्रत्यक्ष शिक्षण (Direct Teaching) तथा पहचान (Identification)

- प्रयत्न एवं भूल विधि योजना के बजाए एक सांयोगिक विधि है। यदि किसी व्यक्तिका व्यवहार समाजिक अपेक्षाओं से मेल नहीं खाता है तो वह सामाजिक स्वीकृति हेतु अगले व्यवहार के लिए प्रयत्न करता है। यह "आघात (Hit)"या "चूक (Miss)"विधि है।
- समाजिक रूप से अनुमन्य तरीके में व्यवहार करना सीखने में, बच्चों को सर्व प्रथम विशेष परिस्थितियों में ठीक विशेष अनुक्रिया करना सीखना चाहिए। यह उनके द्वारा माता पिता तथा अन्य प्रभूत्व वाले लोगों द्वारा तय किए गए नियमों के अनुसरण द्वारा किया जाता है। इसे प्रत्यक्ष शिक्षण कहते हैं।
- जब बच्चे उन लोगों, जिनकी वे प्रशंसा करते हैं, से तादात्म्य स्थापित करते हैं तो वे उन व्यवहार के तरीकों जिनका वे प्रेक्षण करते हैं, का उनसे अनुकरण- सामान्यतया अचेतन रूप में तथा बिना किसी दबाव में करते हैं। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं, नैतिक व्यवहार अधिगम के रूप में पहचान (Identification) उत्तरोत्तर महत्वपूर्ण हो जाता है।

अनैतिक व्यवहार (Immoral Behaviour)

अनैतिक व्यवहार वह व्यवहार है जो सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुपालन में असफल हो जाता है। इस प्रकार का व्यवहार सामाजिक प्रत्याशाओं की अनभिज्ञता के कारण नहीं होता अपितु सामाजिक मानक की अस्वीकृति या अनुपालन के कर्त्तव्य की भावना में कमी के कारण होता है।

निर्नैतिक व्यवहार (Unmoral Behaviour)

निर्नैतिक व्यवहार समूह के मानकों का जानबूझ कर उल्लंघन करने के बजाए सामाजिक समूह के प्रत्याशाओं की अनभिज्ञता के कारण होता है। छोटे बच्चों के कुछ अभद्र व्यवहार अनैतिक होने के बजाए निर्नैतिक होते हैं।

नैतिक विकास (Moral Development)

किसी व्यक्ति के न्याय-बोध (Sense of Justice) का विकास ही नैतिक विकास है। नैतिक विकास व्यक्तियों के द्वारा नीतिपरक विषयों के बारे में तर्क करने के तरीकों एवं इस तर्क तथा उनके वास्तविक व्यवहार के मध्य सम्बन्धों को इंगित करता है। नैतिक विकास बौद्धिक तथा आवेगी (Impulsive) दोनो पक्षों को शामिल करता है। उचित और अनुचित की सही पहचान करना बच्चों को अवश्य सीखना चाहिए तथा जैसे ही बच्चे बड़े होते हैं उनके समक्ष शीघ्रातीत कोई चीज क्यों उचित है, अथवा क्यों अनुचित की व्याख्या अवश्य प्रस्तुत की जानी चाहिए। उन्हें सामूहिक क्रिया-कलापों में भाग लेने का अवसर भी प्रदान करना चाहिए। जिससे की वे समूह की प्रत्याशाओं के अनुरूप सीख सकें। जबकि यह ज्यादा महत्वपूर्ण है कि उन्हें उचित कार्य करने, जन कल्याण के लिए कार्य तथा अनुचित कार्य से बचने की प्रबल इच्छा का विकास करना चाहिए।

उचित नैतिकता का स्तर प्राप्त करने हेतु नैतिक विकास दो भिन्न चरणों में होता है:

- नैतिक व्यवहार का विकास तथा
- नैतिक संप्रत्ययों का विकास

नैतिक न्याय (Moral Judgement)

उचित एवं अनुचित के निर्णय लेने की क्षमता नैतिक न्याय (Moral Judgement) है। प्रायोगिक रूप में नित्य ही हमें उचित और अनुचित के बारे में निर्णय लेना होता है। जब हम ऐसा करते हैं तो हम सामाजिक विषयों के बारे में तर्क करते हैं। किशोरों एवं वयस्कों द्वारा की जाने वाली नैतिक तर्कणा तथा बच्चों द्वारा की जाने वाली नैतिक तर्कणा में प्रायः बिलकुल अन्तर होता है। वास्तव में पियाजे (1932) के कुछ प्रारम्भिक कार्य यह सुझाव देते हैं कि लोग अपनी नैतिक तर्कणा के विकास में चरण-दर-चरण गुजरते है जैसा कि वे संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं में करते हैं। पियाजे के कार्य के आधार पर लॉरेन्स

कोहलबर्ग (1976) ने विभिन्न उम्र के लोगों से नैतिक धर्मसंकटों (Moral Dilemmas) के समाधानों को पूछकर नैतिक तर्कणा के विकास का अध्ययन किया। नैतिक धर्मसंकटों का समाधान करना नैतिक न्याय करने की क्षमता को प्रदर्शित करता है। नैतिक न्याय करने की क्षमता नैतिक विकास का अभिसूचक है। क्या एक व्यक्ति जो अपने भोजन का खर्च वहन नहीं कर सकता, को चोरी प्रारम्भ कर देनी चाहिए ? क्या एक व्यक्ति जो अपनी मर रही पत्नी के इलाज हेतु दवा के खर्च को वहन नहीं कर सकता, को दवा चुरा लेनी चाहिए ? क्या एक चिकित्सक को भयानक दर्द से पीड़ित एक घातक बीमार व्यक्ति को दया-मृत्यु दे देनी चाहिए ? क्या एक महत्वपूर्ण व्यक्ति का जीवन बचाना या ढेर सारे महत्वहीन व्यक्तियों का जीवन बचाना उत्तम है? नैतिक धर्मसंकटों के उदाहरण हैं। ये नैतिक धर्मसंकट नैतिक न्याय करने की क्षमता को निष्कर्षित करने में सहायक हैं और इसीलिए नैतिक विकास के सिद्धान्त के निर्माण में भी सहायक हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. नैतिक अधिगम के आवश्यक तत्व क्या हैं?
2. किसी व्यक्ति के _____ का विकास ही नैतिक विकास है।
3. उचित एवं अनुचित के निर्णय लेने की क्षमता _____ है।
4. नैतिक विकास के चरणों को लिखिए।

5.5 कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त Kohlberg's Theory of Moral Development

कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त स्विस मनोवैज्ञानिक ज्याँ पियाजे द्वारा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त का अनुकुलन मात्र है। लॉरेन्स कोहलबर्ग ने शिकागो विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान परास्नातक विद्यार्थी के रूप में इस प्रकरण पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था तथा जीवनपर्यन्त इस सिद्धान्त को विस्तृत एवं विकसित करते रहे।

इस सिद्धान्त के अनुसार, नैतिक तर्कणा नीतिपरक व्यवहार के लिए आधार है। इसकी छः चिन्हित विकासात्मक अवस्थाएँ हैं। प्रत्येक विकासात्मक अवस्था नैतिक धर्मसंकट की स्थिति में अनुक्रिया करने में अपनी पूर्ववर्ती अवस्था से अधिक उपयुक्त होती है। पूर्व में पियाजे द्वारा आयु पर किए गए अध्ययन से बहुत दूर कोहलबर्ग नैतिक न्याय के विकास का अनुसरण करते हैं। पियाजे संरचनात्मक अवस्था से तर्कणा तथा नैतिकता के विकास का दावा करते हैं। पियाजे के कार्य को आगे बढ़ाते हुए कोहलबर्ग ने पाया कि नैतिक विकास की प्रक्रिया मुख्यतः न्याय से संबंधित होती है तथा जीवन पर्यन्त चलती रहती है। कोहालबर्ग ने हिन्ज धर्मसंकट (Heinz Dilemma) जैसी कहानियों पर अध्ययन में विश्वास किया तथा व्यक्ति किसी समतुल्य नैतिक धर्मसंकट की परिस्थिति में छोड़ा जाता है तो अपनी अनुक्रियाओं को किस प्रकार से उचित सिद्ध करता है (तर्कसंगत बताता है) में रूचि ली। तब उन्होंने प्रकट नैतिक तर्कणा के

निष्कर्षों के बजाए उसकी अवस्थाओं का विश्लेषण किया तथा इसे छः विभिन्न अवस्थाओं की एक अवस्था के रूप में वर्गीकृत किया।

कोहलबर्ग की इन छः अवस्थाओं को सामान्यतः प्रत्येक दो अवस्थाओं के तीन स्तरों में समूहित किया जा सकता है प्राक्परम्परागत, परम्परागत तथा उत्तर परम्परागत (अवस्था विशेष रूप से तालिका 1 में प्रस्तुत की गई है)। कोहलबर्ग ने पियाजे की अवस्था प्रतिमान हेतु संरचनावादी आवश्यकताओं, जैसा कि पियाजे ने अपने संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की व्याख्या करी, का अनुसरण किया है। अवस्थाओं का पश्च प्रत्यागमन अत्यधिक दुर्लभ है। किसी अवस्था को छोड़कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता हैं क्योंकि पूर्ववर्ती अवस्थाओं से अधिक विस्तृत तथा विभेदित किन्तु उनसे समाकलित प्रत्येक अवस्थाएँ एक नूतन एवं आवश्यक परिप्रेक्ष्य प्रदान करती हैं।

स्तर	अवस्था	स्तर विशेष उन्मुखीकरण	प्रमुख संबंध	आयु
प्राक्-परम्परागत	प्राक नैतिक	दण्ड और आज्ञाकारिता उन्मुखीकरण	दण्ड से बचाव	4-10 वर्ष
		स्वरूचि उन्मुखीकरण	स्वलाभ व्यवहार	
परम्परागत	सामाजिक नैतिकता	अर्न्तवैयक्तिक सहमति	तथा अच्छा लड़का/ अच्छी लड़की दृष्टिकोण	10-13 वर्ष
		प्रभुत्व तथा सामाजिक क्रम संपोषण उन्मुखीकरण	कानून व्यवस्था नैतिकता	
उत्तर-परम्परागत	स्व-अनुमोदित नैतिकता	सामाजिक संविदा उन्मुखीकरण	लोकतांत्रिक अनुमोदित कानून	13+ या मध्य या उत्तर प्रौढ़ता तक या कभी नहीं
		सार्वभौमिक नीतिपरक सिद्धान्त	सैद्धान्तिक चेतना	

5.6 लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की अवधारणा

यह स्मरणीय है कि कोहलबर्ग पियाजे के समीपस्थ अनुसरणकर्त्ता हैं। तद्नुसार विकासात्मक परिवर्तन को सम्मिलित करते हुए कोहलबर्ग के सैद्धान्तिक प्रकथन अपने परामर्शदाताओं के विचारों को प्रतिबिम्बित करते हैं।

नैतिक विकासात्मक अवस्थाएँ परिपक्वन का उत्पाद नहीं हैंक्योंकि अवस्था संरचनाएँ एवं अनुक्रम अनुवांशिक रूपरेखा के अनुसार साधारणतया रहस्योद्घाटन नहीं करती हैं। नैतिक विकासात्मक अवस्थाएँ समाजीकरण का उत्पाद नहीं हैं, क्योंकि सामाजिक अभिकर्त्ता (उदाहरणार्थ माता-पिता तथा शिक्षक) चिन्तन के नूतन तरीकों को प्रत्यक्षतः नहीं सिखाते हैं। वास्तव में, उसी अनुक्रम एवं उसके विशेष स्थान में प्रत्येक नूतन अवस्था संरचना को व्यवस्थित ढंग से सिखाने की कल्पना करना कठिन है।

ये अवस्थाएँ , वास्तव में, अपनी स्वयं की नैतिक समस्याओं के चिन्तन से प्रकट होती हैं। सामाजिक अनुभूतियाँ विकास को अवश्य प्रोत्साहित करती हैं परन्तु वे ऐसा हमारी मानसिक प्रक्रियाओं के उद्दीपन द्वारा ऐसा कर पाती हैं। जब हम दूसरों के साथ विचार-विमर्श तथा बहस करते हैं तो हम अपने विचारों को प्रश्नचिन्ह लगाते व चुनौतीपूर्ण पाते हैं और इसलिए ये नूतन, अधिक विस्तृत प्रकथनों के साथ प्रस्तुत होने को अभिप्रेरित होती हैं। नूतन अवस्थाएँ इस व्यापक विचार-बिन्दु को प्रकट करती हैं।(कोहलबर्ग व अन्य, 1975)

संज्ञानात्मक द्वन्द अथवा नैतिक धर्मसंकटों के समाधान का सामना नैतिक विकास में सार्थक सहयोग करता है। इसलिए किसी विशेष परिस्थिति में घसीटा गया व्यक्ति अपने दृष्टिकोण विरोधी कृछ तथ्यों को पाता हैं तथा वह इस प्रसंग में पुनर्चिन्तन के लिए बाध्य होता है। अतः उसके व्यवहार का नूतन तरीका उसकी नैतिकता हो जाती है।

कोहलबर्ग कर्त्तव्यपूर्ण अवसरों एवं दूसरों के विचार बिंदुओं के मनन के अवसरों के द्वारा होने वाले परिवर्तनों पर जोर देते हैं। (ई.जी., 1976) जैसे ही बच्चे एक दूसरे से अन्तःक्रिया करते हैं वे विचार बिन्दुओं में मतभेद करते हैं तथा सहकारी क्रिया-कलापों में उनका संयोजन किस प्रकार से किया जाए , को सीखते हैं। जैसे ही वे अपनी समस्याओं पर विचार विमर्श करते हैं तथा उनके अन्तरों को हल करते हैं वे न्यायोचितता के अपने संप्रत्ययीकरणों का विकास करते हैं।

कोहलबर्ग के अनुसार जब अन्तःक्रियाएँ मुक्त एवं लोक-तान्त्रिक होती हैं तो ये अपना सर्वोत्तम कार्य प्रस्तुत करतीं हैं। ये बालक के नैतिक विकास में सार्थक योगदान प्रस्तुत करती हैं।

5.7 अवस्था संप्रत्यय का महत्व

पियाजे के प्रस्तावानुसार सत्य मानसिक अवस्थाएँ कुछ मापदण्डों को प्राप्त होती है जो कि निम्नवत् हैं-

1. गुणात्मक विभेदता :चिन्तन के विभिन्न तरीके
2. संरचित पूर्णताएँ
3. निश्चर (Invariant) अनुक्रम में प्रगति
4. क्रमित समाकलनों के रूप में परिलक्षितः तथा
5. अन्योन्य-सांस्कृतिक (Cross-Cultured) सार्वभौमिक अनुक्रम

कोहलबर्ग ने उनकी अवस्थाएँ किस प्रकार से इन सभी मापदण्डों को प्राप्त होती हैं, को प्रदर्शित करने के प्रयास में, इन मापदण्डों को बहुत गम्भीरतापूर्वक लिया। संक्षिप्त रूप में सभी मापदण्डों पर विचार-विमर्श किया गया है।

1. गुणात्मक विभेदता (Qualitative Differences):

यह एक तथ्य है कि कोहलबर्ग की अवस्थाएँ आपस में एक दूसरे से भिन्न हैं। उदाहरणार्थ- अवस्था 1 की अनुक्रियाएँ जो कि आज्ञाकारिता से प्रभुत्व तक केन्द्रित है वहीं अवस्था 2 की अनुक्रियाएँ , जो कि प्रत्येक व्यक्ति स्वेच्छया व्यवहार करने के लिए स्वतन्त्र है को प्रमाणित करती है, में बहुत अधिक भिन्नता है। ये दोनों अवस्थाएँ किसी मात्रात्मक विमा में भिन्न प्रतीत नहीं होतीं अपितु ये गुणात्मक रूप से भिन्न प्रतीत होती हैं।

2.संरचित पूर्णता :

"संरचित पूर्णताओं" से कोहलबर्ग का यह तात्पर्य है कि अवस्थाएँ केवल पृथक्कृत अनुक्रियाएँ नहीं हैं अपितु ये चिन्तन की सामान्य आकृतियाँ हैं जो कि विभिन्न प्रकार के विषयों (मुद्दों) में निरन्तर प्रदर्शित होंगी।

3.निश्चर अनुक्रम (Invariant Sequence):

कोहलबर्ग, उनकी अवस्थाएँ निश्चर अनुक्रम में प्रकट होती हैं, में विश्वास करते हैं। बच्चे हमेशा अवस्था 1 से अवस्था 2 में, अवस्था 2 से अवस्था 3 में तथा इसी प्रकार से आगे (बढ़ते) गुजरते हैं। बच्चे किसी अवस्था को छोड़कर अथवा समिश्रित क्रम में होकर आगे नहीं बढ़ते हैं। सभी बच्चे आवश्यक रूप से उच्चतमअवस्था तक नहीं पहुँचते, उनमें बौद्धिक उद्दीपन में कमी हो सकती है। परन्तु एक मात्रा तक वे इन अवस्थाओं से होकर गुजरते हैं तथा क्रम में ही आगे बढ़ते हैं।

4.क्रमित समाकलन (Hierarchic Integration)

कोहलबर्ग के कथनानुसार अवस्थाएँ क्रमित रूप में समाकलित होती हैं। इसका यह तात्पर्य है कि लोग प्रारम्भिक अवस्था में प्राप्त सूझ को नहीं खोते हैं अपितु वे इसे नूतन, व्यापक ढाँचे में समाकलित करते हैं। उदाहरणार्थ अवस्था 4 के व्यक्ति अवस्था 3 के विचारों या तर्कों को समझ सकते हैं, परन्तु वे अब इन्हें व्यापक मनन हेतु अधीनस्थ बना लेते हैं। क्रमित समाकलन का संप्रत्यय बहुत ही महत्पूर्ण है क्योंकि यह अनुक्रम अवस्था की अभिदिशा की व्याख्या करने में सक्षम बनाता है। चूंकि वह परिपक्वतावादी नहीं हैं, वे यह नहीं कह सकते हैं कि ये अनुक्रम जीन में पिरोये होते हैं। इसीलिए वे ये प्रदर्शित करना चाहते हैं कि प्रत्येक नूतन अवस्थाएँ किस प्रकार सामाजिक विषयों (मुद्दों) के समाधान हेतु एक व्यापक ढाँचा प्रस्तुत करती हैं।

5.सर्वाभौमिक अनुक्रम (Universal Sequence)

सभी अवस्था सिद्धान्तकारो की तरह कोहलबर्ग अपनी आवस्थाओं के अनुक्रम को सार्वभौमिक मानते हैं। कोहलबर्ग यह प्रस्ताव करते हैं कि यह अवस्था अनुक्रम सभी संस्कृतियों में समान होगा तथा प्रत्येक अवस्था संप्रत्ययात्मक रूप से अगले से अधिक उन्नत है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

5. नैतिक विकास सिद्धान्त के अनुसार, _____ नीतिपरक व्यवहार के लिए आधार है।

6. कोहलबर्ग की नैतिक तर्कणा की अवस्थाओं के स्तरों के नाम लिखिए।

अब हम लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त कीअवस्थाओं एवं स्तरों पर संक्षिप्त विचार-विमर्श करेंगे।

1.प्राक्-परम्परागत स्तर की नैतिकता (04-10 वर्ष)

विशेषतया बच्चों में प्राक्-परम्परागत स्तर की नैतिक तर्कणा सामान्य बात है। यद्यपि कि वयस्कों में भी इस प्रकार की तर्कणा प्रदर्शित (प्रकट) होती है। इस स्तर पर बच्चे क्रिया के प्रत्यक्ष परिणामों के द्वारा इसकी नैतिकता की परख करते हैं। या तो दण्ड से बचने या फिर पुरस्कार प्राप्त करने हेतु (इस प्रकार के निर्णय लेने के लिए) राजी किए जाते हैं। प्राक्-परम्परागत स्तर प्रथम एवं द्वितीय अवस्था के नैतिक विकास को शामिल करता है, तथा यह एक आत्मकेन्द्रित तरीके में सिर्फ स्वयं से सम्बन्धित है। प्राक्-परम्परागत नैतिकता वाला बच्चा उचित या अनुचित से सम्बन्धित समाज की प्रथाओं/परम्पराओं को अभी तक आत्मसात या ग्रहण नहीं कर पाता है परन्तु इसके बजाए वह बाह्य परिणामों, जो कि किसी क्रिया द्वारा प्राप्त हो सकते है, पर ज्यादा केन्द्रित होते हैं।

प्रथम अवस्था (आज्ञाकारिता एवं दण्ड प्रेरित): इस अवस्था में बच्चे स्वयं पर अपनी क्रियाओं की प्रत्यक्ष परिणामों पर केन्द्रित होते हैं। उदाहरणार्थ, एक क्रिया को नैतिकतः अनुचित समझा जाता है क्योंकि कर्त्ता दण्डित किया जाता है "पिछली बार मैं इस कार्य के लिए दण्डित किया गया इसलिए मैं इस कार्य को पुनः नहीं करूँगा"।जिस कार्य के लिए दण्ड जितना कड़ा होता है वह कार्य उतना ही बुरा समझा जाता है। यह 'आत्मकेन्द्रित', पहचान की कमी होती हैक्योंकि किसी व्यक्ति के स्वयं के विचार दूसरों से भिन्न होते हैं।

द्वितीय अवस्था (आत्म-रूचि उन्मुखित): प्राक्-नैतिक स्तर की द्वितीय अवस्था में बच्चों के नैतिक निर्णय आत्म-रूचि एवं दूसरे इसके बदले में क्या कर सकते हैं कि मान्यताओं पर आधारित होते हैं। इस अवस्था में उचित व्यवहार व्यक्ति की सर्वोत्तम रूचि जिस में है, द्वारा परिभाषित होती है। द्वितीय अवस्था की तर्कणा दूसरों की आवश्यकताओं में एक सीमा तक रूचि प्रदर्शित करती है परन्तु केवल उस बिन्दु तक

जहाँ यह पुनः व्यक्ति की आत्म-रूचि हो सकती हैपरिणामस्वरूप दूसरों को महत्व देना आत्म सम्मान या निष्ठा पर आधारित नहीं होता है अपितु तुम मेरी पीठ खुजलाओ और मैं तुम्हारी खुजआऊँगा (तुम मेरी सहायता करो मैं तुम्हारी करूँगा) -विचार धारा पर आधारित होता है। प्राक्-परम्परागत अवस्था में एक सामाजिक परिप्रेक्ष्य की कमी सामाजिक अनुबन्ध (अवस्था पाँच), जैसा कि सभी कार्य व्यक्ति की स्वयं की आवश्यकताओं और रूचियों को पूरा करने का उद्देश्य रखते हैं, से बिल्कुल भिन्न है।

2.परम्परागत नैतिकता स्तर (10-13 वर्ष)

इस अवस्था में भी बच्चों का नैतिक न्याय (निर्णय) समाज में बनी परम्पराओं, नियमों एवं अधिनियमों तथा कानून व्यवस्थओं- दूसरों की पसन्द तथा नापसन्द के द्वारा नियन्त्रित होता है। परम्परागत स्तर नैतिक विकास की तृतीय एवं चतुर्थ अवस्था से बना है। परम्परागत नैतिकता उचित एवं अनुचित से संबंधित समाज की परम्पराओं की स्वीकृति द्वारा प्रदर्शित होता है। इस अवस्था में एक व्यक्ति नियमों का पालन करता है तथा समाज के मानकों का अनुसरण करता है जबकि आज्ञापालन या अवज्ञा का कोई भी परिणाम नहीं है।

तृतीय अवस्था (अंतर्वैयक्तिक संगति तथा अनुपालन प्रेरित): नैतिक विकास के द्वितीय स्तर के प्रारम्भिक वर्षों में, बालक का नैतिक न्याय (निर्णय) दूसरों की स्वीकृति प्राप्त करने की इच्छा पर आधारित होता है। व्यक्ति दूसरों से स्वीकृति या अस्वीकृति, जैसा कि यह ज्ञात भूमिका के साथ समाज की अनुरूपता को प्रदर्शित करता है, को प्राप्त करने के लिए उत्सुक होतेहैं। ये इन प्रत्याशाओं तक जीने हेतु एक "अच्छा लड़का"या "अच्छी लड़की" बनने का प्रयास करते हैं। ये सीख लेते हैं कि ऐसा करने में अन्तर्निहित मूल्य होते हैं। तृतीय अवस्था की तर्कणा वैयक्तिक सम्बन्धों, जो कि अब सम्मान, कृतज्ञता तथा "स्वर्णनियम"जैसी चीजों को सम्मिलित करता है, के पदों में इनके परिणामों के मूल्यांकन द्वारा किसी कार्य की नैतिकता का निर्णय (न्याय) ले सकती है।

चतुर्थ अवस्था (प्रभुत्व एवं सामाजिक आज्ञापालन प्रेरित): परम्परागत नैतिकता स्तर के बाद के वर्षों में बच्चों के नैतिक न्याय (निर्णय) परम्पराओं ठीक वैसे ही जैसे कि सामाजिक व्यवस्था के नियमों एवं रीति-रिवाजों के द्वारा नियन्त्रित होते हैं। ये क्रियात्मक समाज को बनाए रखने में अपने महत्व के कारण, नियमों, अभियुक्तियों (Dictums) तथा सामाजिक परम्पराओं का पालन महत्वपूर्ण है, को सीखते हैं। इसलिए चतुर्थ अवस्था में नैतिक तर्कणा, तृतीयअवस्था में परिलक्षित वैयक्तिक स्वीकृति की आवश्यकता से परे है। यदि एक व्यक्ति किसी नियम का उलंघन करता है, शायद प्रत्येक लोक कर सकते हैं, इसलिए नियम-कानून को कायम रखना एक जिम्मेदारी एवं एक कर्त्तव्य है। जब कोई व्यक्ति किसी कानून को तोड़ता है, तो यह नैतिकतः अनुचित है।

3.नैतिकता का उत्तर परम्परागत स्तर (13 + आयु)

उत्तर परम्परागत स्तर को चरित्रवान (सिद्धान्ती) स्तर के नाम से जाना जाता है। यह नैतिक विकास की पाँचवी व छठीं अवस्था से मिलकर बना है। एक विकासशील अनुभूति है कि व्यक्तियों की समाज से अलग सत्ता है तथा व्यक्तियों के स्वयं के दृष्टिकोण समाज के विचारों से अग्रगामी हो सकते हैं। ये अपने स्वयं के सिद्धांतों के असंगत नियमों की अवज्ञा कर सकते हैं। ये लोग उचित एवं अनुचित से संबंधित अपने स्वयं के अमूर्त सिद्धांतों - वे सिद्धान्त जो कि जीवन, स्वतंत्रता एवं न्याय जैसे मूल मानवीय अधिकारों को विशेषतः शामिल करते हैं; के द्वारा अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उत्तर परम्परागत नैतिकता प्रदर्शित करने वाले लोग नियमों को उपयोगी परन्तु परिवर्तनशील प्रक्रम के रूप में देखते हैं। आदर्शतः नियम सामान्य सामाजिक व्यवस्था को कायम रख सकते हैं तथा मानवाधिकारों की रक्षा कर सकते हैं। नियम परम (Absolute) आदेश नहीं होते हैं जिनका पालन बिना प्रश्न के अवश्य होना चाहिए।

पंचम अवस्था (सामाजिक अनुबन्ध प्रेरित)- इस अवस्था में व्यक्ति का नैतिक निर्णय (न्याय) इस प्रकार से अंतःकरित (Internalized) होता है कि यदि वह प्राधिकारी की माँग आधारित सिद्धान्तों से सहमत होता है तो वह प्राधिकारी के लिए सकारात्मक अनुक्रिया करता है। इस अवस्था में व्यक्ति समझदारी पूर्वक चिन्तन करना, मानवाधिकारों का मूल्यांकन करना तथा समाज का कल्याण करना प्रारम्भ कर देता है इस अवस्था में दुनिया को विभिन्न विचारों, अधिकारो एवं मूल्यों वाला समझा जाता है। इस प्रकार के दृष्टिकोण का प्रत्येक व्यक्ति एवं समुदाय द्वारा अद्वितीय रूप से परस्पर सम्मान किया जाना चाहिए। कानून (नियम) राजाज्ञा के बजाए सामाजिक अनुबन्ध समझे जाते हैं। वे कानून जो आम कल्याण को प्रोत्साहित नहीं करते, "अधिकाधिक लोगों को अधिक कल्याण" प्राप्त होने की आवश्यकता हेतु परिवर्तित किए जाने चाहिए। इसे बहुमत निर्णय (Majority decision) और अटल समझौते के द्वारा प्राप्त किया जाता है। जनतांत्रिक सरकार प्रत्यक्षतः अवस्था पाँच की तर्कणा पर आधारित है।

षष्टम अवस्था (सार्वभौमिक नीति-परक सिद्धान्त प्रेरित)- इस अवस्था में नैतिक निर्णय (न्याय) को नियंत्रित करने वाले बल कूट-कूट कर भरे होते हैं। व्यक्ति के निर्णय अब चेतना आधारित हो जाते है तथा आदर (सम्मान), न्याय तथा समानता के सार्वभौमिक सिद्धान्तों में उसका विश्वास हो जाता है वास्तव में नैतिक तर्कणा सार्वभौमिक नीति-परक सिद्धान्तों के प्रयोग वाली अमूर्त तर्कणा पर आधारित होती है। कानून केवल तभी तक वैध है जब तक कि वह कानून न्याय मेंतथा अनुचित नियमों के उल्लंघन की एवं जिम्मेदारी के साथ-न्याय की वचन बद्धता में क्रियान्वित होता है। अधिकार अनावश्यक है, जैसा कि सामाजिक अनुबन्ध जनतांत्रिक नैतिक व्यवहारों के लिए आवश्यक नहीं है। यद्यपि कि कोहलबर्ग कहते (आग्रह करते) हैं कि अवस्था छः अस्तित्व में होती है परन्तु जिन लोगों पर इस स्तर में नियमित रूप से क्रियान्वित की जाती है, में इसकी पहचान कठिन है।

5.8 शैक्षिक निहितार्थ Educational Implications

कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त यह सुझाव देता है कि नैतिक विकास आयु या अवस्था विशेष तथ्य है। बच्चे क्रमशः नैतिक न्याय के उच्चतमसम्भव अवस्था तक प्रगति करते हैं। इसलिए इन में नैतिक मूल्यों को धारण कराने हेतु अवस्था विशेष नैतिक विकासात्मक कार्य को ध्यान में रखा जाना चाहिए।

कोहलबर्ग विश्वास करते हैं कि बालक अपने चिन्तन को पुनर्संगठित करते हैं इसलिए वे अधिक क्रियाशील रहना चाहते हैं। पूर्ण नैतिक तर्कणा की क्षमता रखने हेतु छात्रों को अधिगम-परिस्थितियों में सक्रिय सहभागिता के अवसर प्रदान करना आवश्यक है। वास्तव में कोहलबर्ग का मुख्य विचार है कि बालक अवस्थाओं से कैसे गुजरते हैं? वे उन विचारों, जो कि उनके चिन्तन को चुनौती देते हैं तथा उन्हें बेहतर तर्क करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं, के द्वारा ऐसा कर पाते हैं (कोहलबर्ग व अन्य, 1975)। यह नैतिक प्रोत्साहन से संबंधित वातावरण के संयोजन में बहुत सहायक होता है।

नैतिक धर्मसंकटों का (हल) प्रस्ताव नैतिक विकास की गति को बढ़ाता है इसलिए एक शिक्षक होने के नाते नैतिक धर्मसंकटों जिन्हें छात्रों द्वारा हल किया जाए की परिस्थितियाँ प्रदान की जानी चाहिए। किसी समस्या के बारे में अधिक गहराई से चिन्तन करने की चुनौतियाँ भी नैतिक विकास की गति को बढ़ा देती है, इसलिए माता-पिता, शिक्षकों या अन्य आदर्शों को बच्चों के सामने हल करने हेतु समस्याओं को प्रस्तुत करना चाहिए।

एक व्यक्ति द्वारा किए गए नैतिक न्याय की कोटि उसकी उम्र पर निर्भर करती है। बालकों की विकासात्मक अवस्था के अनुसार, उन्हें नैतिक रूप से सक्षम (Competent) बनाने हेतु नैतिकता को प्रोत्साहित करने वाले वातावरण को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

पियाजे के साम्य (Equilibration) प्रतिमान की तरह कोहलबर्ग संज्ञानात्मक द्वन्द, जो कि नैतिक विकास में वृद्धि करता है, की विधि को मानते हैं। बालक एक विचार को उठाता है, विसंगत (असंगत) सूचानाओं द्वारा उलझ जाता है तथा फिर एक अधिक उन्नत एवं व्यापाक स्थिति उत्पन्न करके उलझन को हल करता है। यह विधि सुकरात की डायलेक्टिक (Dialectic) प्रक्रिया भी है। छात्र एक विचार प्रकट करता है, अध्यापक उसके विचार की अपर्याप्तता दर्शाने हेतु प्रश्न पूछता है और फिर वे (बालक) उत्तम कथनों के सूत्रीकरण के लिए प्रोत्साहित होते हैं। इस तरह बालक नैतिक विकास की सीढियां उत्तरोत्तर चढ़ता जाता है।

बच्चों कि इसमें रूचि ही नैतिक विकास में अधिक परिवर्तन लाती है। जैसा कि यह प्रकथन पियाजे के सिद्धान्त तथा कोहलबर्ग के सिद्धान्त के निष्कर्षों पर आधारित हैं। बच्चे इसलिए विकास नहीं करते कि उनको बाह्य पुनर्बलनों द्वारा ढाला गया है बल्कि यह विकास उनकी उत्सुकता की जागृति के कारण होता है। वे उन सूचनाओं में रूचि लेते हैं जो उनमें निहित संज्ञानात्मक संरचनाओं में पूर्णतः ठीक नहीं बैठते तथा इसी से अपने चिन्तन की पुनरावृत्ति के लिए प्रेरित होते हैं। इसलिए बच्चे की रूचि एवं उत्सुकता नैतिक साँचे में इनके विकास हेतु नैतिक पाठों के अन्तरण के दौरान (समय) बच्चों की रूचि एवं उत्सुकता को ध्यान (मस्तिष्क) में रखा जाना चाहिए।

बच्चों की नैतिक चिन्तन में प्रगति उनके समुदाय से संबंधित अनुभवों से बढ़ती है। उन्हें सामाजिक या सामुदायिक अनुभवों को अत्याधिक दिया जाना चाहिए जिससे कि उनके नैतिक विकास की गति त्वरित हो सके।

5.9 लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त का मूल्यांकन

पियाजे के अनुसरणकर्ता कोहलबर्ग ने नैतिक चिन्तन हेतु नवीन एवं अधिक विस्तृत अवस्था अनुक्रम को प्रस्तुत किया है। जब कि पियाजे ने मूलतः नैतिक चिन्तन की दो अवस्थाओं को पाया, जिसकी द्वितीय अवस्था प्रारम्भिक किशोरावस्था में परिलक्षित होती है। कोहलबर्ग ने किशोरावस्था एवं वयस्कावस्था में पूर्ण विकसित अतिरिक्त अवस्थाओं को बताया। उन्होंने सुझाव दिया है कि कुछ लोग नैतिक चिन्तन के उत्तर परम्परागत स्तर तक पहुँचने के बावजूद अपने समाज को अधिक समय तक स्वीकार नहीं कर पाते परन्तु एक उत्कृष्ट समाज की परिकल्पना हेतु स्वायत्तता पूर्वक एवं विचार पूर्वक चिन्तन करते हैं।

उत्तर परम्परागत नैतिकता का सुझाव सामाजिक विज्ञान में अनुपयोगी है। शायद इसे इस प्रकार के सुझाव हेतु एक संज्ञानात्मक विकासात्मकवादीयों की सूची लिया इसके संज्ञानात्मक विकासात्मकवादी स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता से ज्यादा प्रभावित हुए। जब कि ज्यादातर सामाजिक वैज्ञानिक समाज के द्वारा बच्चों के चिन्तन को ढ़ालने के तरीकों से प्रभावित हुए। यदि बच्चे पर्याप्त मात्रा में स्वतन्त्र चिन्तन में व्यस्त होंगे तो वे परिणामतः अधिकारों, मूल्यों एवं सिद्धान्तों जिससे वे विद्यमान सामाजिक व्यवस्था का मूल्यांकन करते हैं,की संकल्पनाएँ बनानाप्रारम्भ कर देगें। शायद कुछ लोग यद्यपि कि सार्वभौमिक नीति परक सिद्धान्तों के बदले उसी समय प्रशासनिक अवज्ञा की वकालत करने वाले कुछ महान नैतिक नेतृत्वकर्त्ताओं एवं दार्शनिकों को परिलक्षित करने वाले चिन्तन के प्रकारों में उन्नत होंगे।

कोहलबर्ग का सिद्धान्त एक उत्तम विवेचना को परिलक्षित करता है। सर्वप्रथम, सभी लोग उत्तर परम्परागत नैतिकता के संप्रत्यय के लिए उत्साहित नहीं होते, उदाहरणार्थ, होगन (1973, 1975) का अनुभव है कि समाज और कानून से ऊपर लोगों के अपने सिद्धान्तों को प्रतिस्थापित करना खतरनाक है। यह हो सकता कि इसी प्रकार बहुत से मनोवैज्ञानिक कोहलबर्ग पर प्रतिक्रिया करें तथा यह प्रतिक्रिया उनके शोध की वैज्ञानिक श्रेष्ठता पर बहुत सी परिचर्चाओं को जन्म दे। अन्य लोगों का तर्क है कि कोहलबर्ग की अवस्थाएँ सांस्कृतिक रूप से पूर्वाग्रह से ग्रसित है। उदाहरणार्थ सिम्पसन (1974) कहते हैं कि कोहलबर्ग ने पाश्चात्य दार्शनिक परम्परा पर आधारित अवस्था प्रतिमान को विकसित किया है तथा फिर बिना उनके विभिन्न नैतिक दृष्टिकोणों के स्तरों पर विचार किए अपाश्चात्य संस्कृति में इस प्रतिमान का प्रयोग किया है।

दूसरी आलोचना यह है कि कोहलबर्ग का सिद्धान्त लिंग-पूर्वाग्रहित है। गिल्लीगन (1972) देखती हैं कि कोहलबर्ग की अवस्थाएँ केवल पुरुषों के साक्षात्कार से व्युत्पन्न थी तथा वह आरोप लगाती हैं कि यह अवस्थाएँ निश्चित रूप से पुरूष उन्मुखीकरण को प्रदर्शित करती है। पुरूषों के उन्नत नैतिक चिन्तन - नियमों, अधिकारों एवं अमूर्त सिद्धान्तों के चारो ओर घूमते हैं। औपचारिक निणर्य (न्याय) ही आदर्श है

जिसमें सभी पक्ष एक दूसरे के दावे का निष्पक्ष तरीके से मूल्यांकन करते हैं। गिल्लिगन का तर्क है कि नैतिकता का यह संप्रत्यय नैतिक मुद्दों पर महिलाओं की आवाजों (मांगों) को समझने में असफल है।

गिल्लीगन कहती हैं कि महिलाओं के लिए नैतिकता अधिकारों एवं नियमों पर केन्द्रित नहीं होती अपितु यह अन्तर्वैयक्तिक संबंधों एवं सहानुभूति के मूल्यों पर केन्द्रित होती है। अन्तर्वैयक्तिक न्याय आदर्श नहीं है अपितु यह अधिक सम्बद्धित जीवन जीने का तरीका है। इसके अतिरिक्त महिलाओं की नैतिकता अधिक प्रसांगिक है, यह वास्तविकता,काल्पनिक धर्मसंकटों के बजाए जीवन्त संबंधों से संबंधित है।

विकास एक से अधिक रेखाओं के अनुदिश अग्रसर हो सकता है। नैतिक चिन्तन की एक रेखा तर्क, न्याय एवं सामाजिक संगठन पर तथा दूसरी अन्य रेखाएँ अन्तर्वैयक्तिक संबंधों पर केन्द्रित होती है। कोहलबर्ग का सिद्धान्त इस प्रकार की गतिकी की व्याख्या करने में असफल हो जाता है। कोहलबर्ग के कार्य की अन्य आलोचनाएँ भी हैं जो कि अपरिवर्तित अनुक्रम की समस्या, पीछे हटने का प्रचलन तथा चिन्तन एवं कार्य के मध्य संबंध जैसी आनुभाविक विषयों से संबंधित है।

चाहे जितनी भी आलोचनाएँ एवं प्रश्न हों, इसमें कोई संदेह नहीं है कि कोहलबर्ग का कार्य उत्तम (महान) है। उन्होंने सिर्फ नैतिक निर्णय की पियाजे की अवस्थाओं का विस्तार ही नहीं किया अपितु उन्होंने यह कार्य बड़े ही उत्साह के साथ किया है। उन्होंने नैतिक तर्कणा के विकास का अध्ययन किया जैसा कि यह महान नैतिक दार्शनिकों के चिन्तन की ओर कार्य कर सकता है। इसलिए कोहलबर्ग ने नैतिक विकास, ऐसा ही हो सकता है जैसे चुनौतिपूर्ण दृष्टिकोणों को प्रस्तुत नहीं किया है यद्यपि कि सुकारात, काण्ट, या मॉर्टिन लूथर किंग की तरह कुछ अन्य लोगों ने नैतिक मुद्दों पर सोचना शुरू कर दिया होगा।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. प्राक-परम्परागत स्तर की प्रथम अवस्था_____ होती है।
8. प्राक-परम्परागत स्तर की द्वितीय अवस्था_____ होती है।
9. पियाजे के साम्य प्रतिमान की तरह कोहलबर्ग_____ की विधि को मानते हैं।

5.10 सारांश

कोहलबर्ग ने पियाजे के शोध कार्यों को आगे बढ़ाया तथा पियाजे के दो स्तरों वाले नैतिक विकास के स्थान पर तीन स्तरों वाले नैतिक विकास के सिद्धान्त का विस्तरण किया। कोहलबर्ग के तीन स्तरों का प्रत्येक स्तर दोनो स्तरों को सम्मिलित करता है।

प्रथम स्तर, "प्राक् परम्परागत नैतिकता" में बालक का व्यवहार बाह्य नियन्त्रणों के अधीन होता है। इस स्तर की प्रथम अवस्था 'अच्छा बालक नैतिकता' में, बालक आज्ञाकारिता एवं दण्ड-उन्मुख होता है तथा किसी कार्य की नैतिकता भौतिक परिणामों के पदों में निर्णित होती है। इस स्तर की द्वितीय अवस्था में, बालक पुरस्कारों को प्राप्त करने हेतु सामाजिक प्रत्याशाओं का अनुपालन करता है।

द्वितीय स्तर "परम्परागत नैतिकता" या परम्परागत नियमों एवं अनुपालन की नैतिकता है। इस स्तर की प्रथम अवस्था मेंबालक दूसरों के अनुमोदन को प्राप्त करने हेतु नियमों का अनुपालन करता है तथा उनके साथ उत्तम संबंध बनाए रखता है। इस स्तर की द्वितीय अवस्था में, बालक यह विश्वास करते हैं कि यदि सामाजिक समूह सभी सदस्यों के लिए उचित नियमों को स्वीकार करता है तो उन्हें सामाजिक अस्वीकृति तथा निन्दा से बचने हेतु उनका (नियमों का) अनुपालन करना चाहिए।

तृतीय स्तर को कोहलबर्ग ने "उत्तर परम्परागत नैतिकता" या स्वानुमोदित सिद्धान्तों की नैतिकता नाम दिया। इस तरह की प्रथम अवस्था मेंबालक विश्वास करता है कि सामाजिक मान्यताओं में लचीलापन होना चाहिए जो कि इसे परिष्कृत करना सम्भव बनाए तथा सामाजिक मानकों को परिवर्तित करे यदि यह सम्पूर्ण समूह के लिए लाभकारी सिद्ध हो। इस स्तर की द्वितीय अवस्था में, लोग सामाजिक निन्दा के बजाए आत्मनिन्दा से बचने हेतु सामाजिक मानकों का अनुपालन तथा आदर्शों का आत्मीकरण, दोनों करते हैं। यह व्यक्तिगत इच्छाओं के बजाए दूसरों के लिए सम्मान पर आधारित एक नैतिकता है। लॉरेन्स कोहलबर्ग द्वारा प्रतिपादित नैतिक विकास का अवस्था सिद्धान्त निम्न तालिका की सहायता से सारांशित किया जा सकता है -

स्तर	**अवस्था**	**स्तर विशेष उन्मुखीकरण**	**प्रमुख संबंध**	**आयु**
प्राक्-परम्परागत	प्राक्नैतिक	दण्ड और आज्ञाकारिता उन्मुखीकरण	दण्ड से बचाव	4-10 वर्ष
		स्वरूचि उन्मुखीकरण	स्वलाभ व्यवहार	
परम्परागत	सामाजिक नैतिकता	अंतर्वैयक्तिक सहमति	तथा अच्छा लड़का/ अच्छी लड़की दृष्टिकोण	10-13 वर्ष
		प्रभुत्व तथा सामाजिक क्रम संपोषण उन्मुखीकरण	कानून व्यवस्था नैतिकता	
उत्तर-परम्परागत	स्व-अनुमोदित नैतिकता	सामाजिक संविदा उन्मुखीकरण	लोकतांत्रिक अनुमोदित कानून	13+ या मध्य या उत्तर प्रौढ़ता तक या कभी नहीं
		सार्वभौमिक नीतिपरक सिद्धान्त	सैद्धान्तिक चेतना	

इस सिद्धान्त की नैतिक शिक्षा-कैसे और कब कार्यन्वित होनी चाहिए, पर वृहत प्रभाव है। नैतिक विकास की सटीक गतिकी को जानने हेतु इस सिद्धान्त की विस्तृत विवेचना की गई।

5.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. नैतिक अधिगम के चार आवश्यक तत्व हैं-

a. समाज के नियमों, रीति रिवाजों तथा कानूनों के रूप में समाज के सदस्यों की सामाजिक प्रत्याशाओं को सीखना।
b. चेतना का विकास करना।
c. समूह की प्रत्याशाओं के अनुपालन में किसी व्यक्ति के व्यवहार के असफल होने पर अपराध-बोध एवं शर्मिन्दगी का अनुभव करना सीखना, तथा
d. समूह के सदस्यों के आशानुरूप सामाजिक अंतःक्रिया सीखने का अवसर प्राप्त करना।

2. न्याय-बोध
3. नैतिक न्याय
4. नैतिक विकास के चरण हैं:
    i. नैतिक व्यवहार का विकास तथा
    ii. नैतिक संप्रत्ययों का विकास
5. नैतिक तर्कणा
6. प्राक परम्परागत, परम्परागत तथा उत्तर परम्परागत
7. आज्ञाकारिता एवं दण्ड प्रेरित
8. आत्म-रूचि उन्मुखित
9. संज्ञानात्मक द्वन्द

5.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. कोहलबर्ग, एल0 (1963). दी डेवेलपमेन्ट ऑफ चिल्ड्रेन्स ओरिएन्टेशन टूवर्ड्स अ मॉरल ऑर्डरः सीक्वेन्स इन दी डेवेलमेन्ट ऑफ मॉरल थॉट, वीटा हुमाना, वैसेल.
2. कोहलबर्ग, एल0 (1969). स्टेजेज इन दी डेवेलपमेन्ट ऑफ मॉरल थॉट एण्ड एक्शन, न्यूयार्कः होल्ट.
3. कोहलबर्ग, एल0 (1973). स्टेजेज एण्ड एजींग इन मॉरल डेवेलपमेन्टः सम स्पेकुलेशन्स, जेरोन्टोलॉजिस्टटअ.
4. हरलॉक, ई0वी0 (1997). चाइल्ड डेवेलपमेन्ट (6वॉ संस्करण). न्यू देहली, टाटा मैक ग्रॉ हिल एडिशन.
5. मंगल, एस0के0 (2005). एडवान्स्ड एजुकेशनल साइकॉलजी (2 सरा संस्करण), न्यू देहली प्रेन्टीस हॉल आफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड.
6. डब्ल्यू0 सी0 क्रेन (1985). थीयरीज ऑफ डेवेलपमेन्ट. प्रेन्टिस हॉल. पी0पी0 118-136
7. मॉर्गन, टी0सी0, किंग, ए0आर0, विज, आर0जे0 एण्ड स्कॉप्लर, जे0 (1993). इन्ट्रोडक्शन टू साइकॉलजी (7वाँ संस्करण) न्यू देहली, टाटा मैकग्रॉ हिल एडिशन

5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. नैतिक चिन्तन एवं नैतिक कार्य में विसंगतियाँ एक व्यक्ति के व्यक्तित्व में कुसमंजन को अग्रसर होती हैं। सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
2. कोहलबर्ग का नैतिक विकास सिद्धान्त पियाजे के नैतिक विकास सिद्धान्त से एक कदम आग्रे है, कैसे?
3. शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों के सापेक्ष कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त की विवेचना कीजिए।
4. किसी अवस्था सिद्धान्त के अभिलक्षण क्या हैं ? लॉरेन्स कोहलबर्ग के नैतिक विकास सिद्धान्त के आलोक में इस पर विचार विमर्श कीजिए।
5. नैतिक विकास संज्ञानात्मक विकास से सार्थकतः सह-सम्बन्धित हैं। विभिन्न उदाहरणों की सहायता से इसकी व्याख्या कीजिए।
6. नैतिक धर्मसंकटों से आप क्या समझते हैं? प्राथमिक स्तर की कक्षा परिस्थितियों से नैतिक धर्मसंकट के चार उदाहरण दीजिए।
7. नैतिक, अनैतिक तथा निर्नैतिक व्यवहार के पदों में सोदाहरण अन्तर स्पष्ट कीजिए।
8. नैतिक संप्रत्ययों एवं नैतिक व्यवहार के मध्य विसंगतियाँ सामान्य तथ्य हैं। बाल्यावस्था की विकासात्मक अवस्था से दो उदाहरण दीजिए।
9. लॉरेन्स कोहलबर्ग की नैतिक विकास सिद्धान्त की अवधारणाएँ क्या हैं ? संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

इकाई 6- जिरोम □स0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त □वं इसके शैक्षिक निहितार्थ

Jerome S. Bruner's Theory of Cognitive Development and Its Educational Implications

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 जिरोम एस0 ब्रूनर एवं संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त
6.4 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूलभूत आयाम
6.5 जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का सिद्धान्त
6.6 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ
6.7 सारांश
6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
6.9 सन्दर्भग्रन्थ सूची
6.10 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

वृद्धि एवं विकास, दोनों पद किसी व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व के परिवर्तन को इंगित करते हैं। विकास, संरचनात्मक एवं क्रियात्मक, सम्पूर्ण परिवर्तन से संबन्धित है। विकास का बहुत ही विस्तृत अर्थ है तथा यह व्यक्तिके जीवन विस्तार की कालावधि की विभिन्न विमाओं से शारीरिक विकास, चलन क्रिया विकास, संज्ञानात्मक विकास, सामाजिक विकास, भावात्मक विकासऔर नैतिक विकास में परिवर्तनों की सामान्य प्रवृत्ति का वर्णन करता है। जैसा कि किसी व्यक्ति के गुणात्मक एवं मात्रात्मक विकास क्रियात्मक एवं संरचनात्मक दोनोंपक्षों को शामिल करता है एक प्रक्रिया है जो किसी जीव या जीवन के अति प्रारम्भिक अवस्था से प्रारम्भ होती है। समय के अनुसार (साथ-साथ) जीव अपनी वृद्धि एवं विकास के चरम, जिसे परिपक्वता कहते हैं, को प्राप्त करता है। विकास की प्रक्रिया की सामान्य प्रवृत्ति का अन्वेषण विभिन्न विकासात्मक मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसकी वास्तविक गतिकी को जानने हेतु किया गया। परिणामस्वरूप, निश्चित विकासात्मक अवस्था किसी के व्यक्तित्व के एक या अन्य विमाओं में होने

वाली विकासात्मक प्रक्रिया को जानने हेतु विभिन्न सिद्धान्तों का अविर्भाव हुआ। संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र में, ज्याँ पियाजे का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, आसुबेल का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त, वाईगोत्सकी का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त और जे0एस0 ब्रूनर का संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त कुछ प्रमुख सिद्धान्त हैं। संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न पक्षों को जानने हेतु हम यहाँ जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विभिन्न पहलूओं पर चर्चा करेंगें।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप:-

1. संज्ञान के अर्थों को जानने में सक्षम होंगे।
2. संज्ञानात्मक विकास की प्रकृति का वर्णन करने में सक्षम होंगे।
3. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के विभिन्न अवयवों की व्याख्या कर सकेंगे ।
4. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विभिन्न अवस्थाओं के मध्य अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे ।
5. जे0एस0 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ को सोदाहरण स्पष्ट करने में सक्षम होंगे।

6.3 जिरोम एस0 ब्रूनर एवं संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त Jerome S. Bruner and his Theory of Cognitive Development

कोई भी विषय विकास की किसी भी अवस्था में इस प्रकार से सिखाया जा सकता है कि वह बालक के संज्ञानात्मक क्षमताओं में स्थापित होता हो। (जे0एस0ब्रूनर)

अमेरिकी मनोवैज्ञानिक जिरोम सेमौर ब्रूनर (जन्म 1915) ने प्रत्यक्षण , संज्ञान एवं शिक्षा के अध्ययन में उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने अमेरिका एवं इंग्लैण्ड के विश्वविद्यालयों में अध्ययन कार्य कियातथा शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों के लेखक के रूप में जाने जाते हैं।

जिरोम सेमौर ब्रूनर का जन्म अप्रवासी माता-पिता हरमन एवं रोज ब्रूनर से 1 अक्टूबर, 1951 को हुआ था। वे जन्मान्ध थे और शैशवास्था में ही मोतियाबिन्द के दो आपरेशनके बाद भी रोशनी प्राप्त न कर सके। उन्होंने सर्वाजनिक विद्यालयो में दाखिला लिया। उसके बाद उच्च विद्यालय से 1933 में स्नातक हुए और ड्यूक विश्वविद्यालय से मनोविज्ञान में विशेष योग्यता प्राप्त की। उन्होंने1973 में ड्यूक विश्वविद्यालय से बी0ए0 एवं 1941 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय से गार्डन अलपोर्ट के दिशा-निर्देशन में की पी-एच0डी0 की उपाधि प्राप्त की। वे द्वितीय विश्व- युद्ध के समय सुप्रीम हेडक्वार्टरस एलायड इक्सेपेडीशनरी कोर्स यूरोप के

मनोवैज्ञानिक युद्ध विभाग में कार्यरत जनरल आईसेन हावर के सानिध्य में सेवारत रहे। युद्धोपरान्त उन्होंने1945 में हार्वर्ड विश्वविद्यालय के मनोविज्ञान संकाय से सेवारम्भ की।

ब्रूनर, जिन्होंने बालकों के संज्ञानात्मक विकास का अध्ययन किया, ने बालकों की बाहरी दुनिया के संज्ञानात्मक प्रदर्शन (प्रस्तुतीकरण) से संबंन्धित एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया। ब्रूनर का सिद्धान्त वर्गीकरण पर आधारित है। वर्गीकरण हेतु प्रत्यक्षीकरण, वर्गीकरण हेतु संप्रत्ययीकरण, वर्ग बनाने हेतु अध्ययन, वर्गीकरण हेतु निर्णय लेनाब्रूनर मानते हैं लोग दुनिया को उसकी समानताओं एवं विषमताओं के पदो में व्याख्यायित करते हैं।

वे दो प्रकार के चिन्तन के प्राथमिक तरीकों, कथन माध्यम एवं रूपदर्शन माध्यम, का सुझाव देते हैं। कथन चिन्तन में मस्तिष्क क्रमागत , क्रिया - उन्मुख एवं विवरण प्रेरित विचार में व्यस्त होता है।

रूप दर्शन चिन्तन(Paradigmatic Thinking) में मन व्यवस्थित व वर्गीकृत संज्ञान को प्राप्त करने हेतु विशिष्टताओं का अतिक्रमण करता है। प्रथम स्थिति में चिन्तन कहानी एव ग्रीपिंग ड्रामा का रूप लेता है। बाद वाली स्थिति में चिन्तन तार्किक प्रवर्तकों (Logical operators) से जुड़े कथनों (Propositons) के रूप में संरचित है।

बालकों के विकास पर अपने अनुसंधान (1966) में ब्रूनर ने प्रस्तुतीकरण के तीन तरीको को प्रस्तावित किया सक्रियता प्रस्तुतीकरण (क्रिया-आधारित), दृश्य प्रतिमा प्रस्तुतीकरण (प्रतिमा- आधारित) एवं सांकेतिक प्रस्तुतीकरण (भाषा- आधारित) । ये प्रस्तुतीकरण के तीनों तरीके आपस में समाकलित होते हैं तथा केवल स्वतंत्रता पूर्वक क्रमिक होते हैं जिससे कि वे परस्पर अनुवादित हो सकें। सांकेतिक प्रस्तुतीकरण का अन्तिम तरीका है। ब्रूनर के सिद्धान्त के अनुसार, यह तब प्रभावी होती है जब ये पदार्थ का सामना सक्रिया से दृश्य प्रतिमा, दृश्य प्रतिमा से सांकेतिक प्रस्तुतीकरण की एक श्रेणी का अनुसरण करता है। यही क्रम वयस्क विद्यार्थियों के लिए भी सत्य है। एक सही अनुदेशनात्मक चित्रकार ब्रूनर का कार्य यह भी सुझाव देता है कि एक विद्यार्थी (चाहे व बहुत ही कम उम्र का हो) किसी भी पाठ को सीखने में सक्षम होता है जब तक कि अनुदेशन उचित प्रकार से संगठित है। (पियाजे को मान्यताओं तथा दूसरे अवस्था के सिद्धान्तकारों के विपरीत) ब्लूम टैक्सोनामी की तरह एक कूट कृत करने का तन्त्र जिसमें लोग सम्बन्धित वर्गों की एक निश्चित क्रम में व्यवस्था बनाते हैं का सुझाव देते हैं। वर्गों का प्रत्येक उच्चतर अनुक्रमिक स्तर अधिक विशिष्ट बन जाता है प्रतिध्वनित बेन्जामीन ब्लूम टैक्सोनॉमी की ज्ञान प्राप्ति की समझ जैसे कि अनुदेशनात्मक स्कैफोल्डिंग से संबन्धित विचार। सीखने की इसी समझ के साथ, ब्रूनर एक चक्राकार पाठ्यचर्या, का प्रस्ताव करते हैं। एक अध्यापन उपागम जिससे प्रत्येक विषय या कौशल क्षेत्र का निश्चित समयान्तरालों पर प्रत्येक बार अधिक सतर्कता पूर्वक पुनरीक्षण किया जाता है। 1987 में आपको बालजन पुरस्कार से सम्मानित किया गया। यह सम्मान आपके मानव मनोविज्ञान की प्रमुख समस्याओं पर किए गए शोध के लिए दिया गया। आपने अपने प्रत्येक शोध में मानव की मनोवैज्ञानिक संकायों के सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक मूल्यों के विकास में मूल एवं वास्तविक योगदान दिया है।

जे0एस0 ब्रूनर द्वारा विकसित संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के विस्तरण से पहले हमें संज्ञान एवं संज्ञानात्मक विकास के सही संप्रत्यय को जानना आवश्यक है।

संज्ञान (Cognition) उच्चतर स्तर का अधिगम है और इसमें यह प्रत्यक्षण, संग्रहीकरण एवं इन्द्रियों द्वारा संग्रहीत सूचनाओं की प्रक्रिया आदि सम्मिलित हैं यह उन सभी मानसिक प्रक्रियाओं को शामिल करता है जिससे स्वयं के, दूसरों के एवं वातावरण के बारे में ज्ञान प्राप्त होता है एवं प्राप्त ज्ञान व्याख्यायित होता है। मानवीय चिन्तन प्रक्रियाएँ (प्रत्यक्षीकरण, तर्कणा तथा स्मरण) संज्ञान के उत्पाद हैं। संज्ञानात्मक प्रक्रियाएँ वह प्रक्रियाएँ हैं जो ज्ञान एवं जागरूकता के लिए उत्तरदायी हैं। वे अनुभव, प्रत्यक्षणा और स्मृति (स्मरण) तथा ठीक वैसे ही प्रकट शाब्दिक चिन्तन की प्रक्रियाओं को साम्मिलित करते हैं। यह मस्तिष्क की आंतरिक संरचनाओं एवं उसकी क्रियाओं से सम्बन्धित है। ये आन्तरिक संरचनायें और प्रक्रियाएँ संवेदन प्रत्यक्षणा, अवधान, अधिगम , स्मरण, भाषा, चिन्तन तथा तर्कणा को शामिल करते हुए ज्ञानार्जन एवं ज्ञान की उपयोगिता में साम्मिलित रहती हैं। ये सभी संज्ञान के विभिन्न पक्ष हैं। एक जीव के विशेष परिस्थितियों में प्रकट व्यवहार पर आधारित संज्ञान के क्रियात्मक अवयवों के बारे में सिद्धान्तों का संज्ञानात्मक वैज्ञानिक परीक्षण करते हैं तथा प्रस्तावित करते हैं।सम्पूर्ण जीवन में संज्ञान की व्यापक व्याख्या, ज्ञान-प्रेरित एवं ज्ञानेन्द्रिय प्रक्रियाओं तथा नियन्त्रित एवं स्वचालित प्रक्रियाओं के मध्य अन्तः क्रिया के रूप में की जा सकती है।

संज्ञानात्मक विकास (Cognitive development) बाल्यावस्था से किशोरवस्था, किशोरावस्था से वयस्कता तक स्मरण योग्यता, समस्या समाधान और निर्णय-लेने की योग्यता को सम्मिलित करते हुए चिन्तन प्रक्रियाओं की संरचना से सम्बंधित है।

एक समय यह भी विश्वास किया जाता था कि शिशुओं में चिन्तन या जटिल विचारों को बनाने की क्षमता, में कमी होती है और जब तक वे भाषा नहीं सीख लेते तब तक बिना संज्ञान के होते हैं। अब यह ज्ञात हुआ है कि बच्चे जन्म से ही अपने वातावरण के प्रति जागरूक होते हैं तथा सम्बन्धित गवेषणा में रूचि रखते हैं। जन्म से ही शिशु सक्रिय रूप से अधिगम करना शुरू कर देते हैं। वे ऐसा प्रत्यक्षणा एवं चिन्तन कौशल के विकास हेतु प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग करकेअपनी चारो तरफ की सूचनाओं को एकत्रित करते हैं, छटनी करते हैं एवं प्रक्रिया करते हैं।

इस प्रकार, संज्ञानात्मक विकास, एक व्यक्ति कैसे प्रत्यक्षण करता है, कैसे समझ चिन्तन करता है और अनुवांशिक एवं अधिगमित कारकों से अन्तःक्रिया के द्वारा प्राप्त अपनी दुनिया की समझ कैसेप्राप्त करता है, को निर्देशित करता है। सूचना की प्रक्रिया , बुद्धि, तर्कणा, भाषा विकास एवं स्मृति संज्ञानात्मक विकास के क्षेत्र हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. ब्रूनर का सिद्धान्त _____ पर आधारित है।

2. बालकों के विकास पर अनुसंधान में ब्रूनर के प्रस्तुतीकरण के तीन तरीकों के नाम लिखिए।
3. सूचना की प्रक्रिया,बुद्धि, तर्कणा, भाषा विकास एवं स्मृति _____ के क्षेत्र हैं।

6.4 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त के मूलभूत आयाम Fundamental Aspects of Bruner's Theory of Cognitive Development

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की सटीक गतिकी को समझने हेतु निम्नलिखित कारक प्रमुख स्थान रखते हैं:-

वर्गीकरण (Categorization)

ब्रूनर के विचार वर्गीकरण पर आधारितहैं "वर्गीकरण के लिए प्रत्यक्षण, वर्गीकरण के लिए संप्रत्यायीकरण, वर्गीकरण करने हेतु अधिगम, वर्गीकरण के लिए निर्णयीकर"। मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है। ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रों की संरचना में सूचनाओं के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया। उनका विश्वास है कि प्रत्यक्षण, संप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णयीकरण और अनुमानीकरण ये सभी वर्गीकरण में सम्मिलित होते हैं।

संगठन (Organisation)

संगठन से तात्पर्य सूचनाओं को कूटकृत तन्त्र में व्यवस्थित करने से है। कूट-कृत तन्त्र संवेदी निवेश को पहचानने हेतु प्रेषित वर्ग होते हैं। ये उच्चतर संज्ञानात्मक क्रियाएँ , प्रमुख संगठनात्मक चर होते हैं। इससे परे तात्कालिक संवेदी आँकड़े संबन्धित वर्गों के आधार पर अनुमान लगाने में सम्मिलित हैं। संबंन्धित वर्ग एक कूट-कृत तन्त्र बनाते हैं। ये संबन्धित वर्गों की क्रमबद्धित व्यवस्थाएँ हैं। ब्रूनर ने एक कूट-कृत तंत्र का सुझाव दिया जिसमें लोग संबन्धित वर्गों की श्रेणी बद्ध व्यवस्था बनाते हैं। प्रख्यात बेन्जामीन ब्लूम की ज्ञानार्जन की समक्ष एँ व अनुदेशानात्मक स्कैफोल्डिंग से सम्बन्धित विचार के प्रत्येक क्रमागत उच्चतर स्तर और भी विशेष हो जाते हैं।(ब्लूम टैक्सोनॉमी)

मानसिक प्रदर्शन के माध्यम (Modes of Mental Representations)

ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम है- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक। बच्चे आन्तरिक सूचना संसाधन एवं संग्रहण तंत्र द्वारा बाहरी वास्तविकता के मानसिक प्रदर्शन का विकास करते हैं। मानसिक प्रदर्शन हेतु भाषा बहुत सहायक होती है।

भाषा (Language)

ब्रूनर के तर्क के अनुसार संज्ञानात्मक प्रदर्शन के आयाम भाषा से मदद प्राप्त करते हैं। उन्होंने भाषा-ज्ञान में सामाजिक व्यवस्था के महत्व पर जोर दिया इनके विचार पियाजे के विचारों के समान हैं, परन्तु वे विकास के सामाजिक प्रभावों पर ज्यादा जोर देते हैं। भाषा प्रतीकों का तंत्र है जो संज्ञानात्मक विकास या वृद्धि के विकास में मुख्य स्थान रखती है। यह आन्तरिक संप्रत्ययों के संचार में सहायक होती है।

शिक्षक □वं शिक्षार्थी के मध्य अन्तःक्रिया (Interaction Between Teacher and Taught)

शिक्षक-शिक्षार्थी के मध्य प्रगाढ़ अन्तःक्रिया, शिक्षार्थी के संज्ञानात्मक विकास में सार्थक अन्तर स्थापित करती है। समाज का कोई भी सदस्य शिक्षक हो सकता है। माता, पिता, मित्र या वह कोई जो कुछ सीखा सकता है, शिक्षक हो सकता है।

अधिगमकर्त्ता का अभिप्रेरण (Motivation of Learner)

ब्रूनर, पियाजे के बच्चों के संज्ञानात्मक विकास के विचारों से प्रभावित थे। 1940 के दशक के दौरान उनके प्रारम्भिक कार्य आवश्यकता, अभिप्रेरण एवं प्रत्याशा (मानसिक प्रवृत्ति) और उनके प्रत्यक्षण पर प्रभाव पर केन्द्रित रहे। उन्होंने यह दृष्टिकोण प्रस्तुत किया कि बच्चे सक्रिय समाधानकर्ता होते है तथा 'कठिन विषयों' के अन्वेषण में सक्षम होते हैं जैसा कि बच्चे आन्तरिक अभिप्रेरणा से ओत-प्रोत होते हैं। उन्होंने संज्ञानात्मक विकास के एक फलन के रूप में अधिगम हेतु अभिप्रेरणा का अन्वेषण किया। उन्होंने महसूस किया कि आदर्शतः विषय वस्तु में रूचि, अधिगम हेतु सबसे उपयुक्त (अच्छी) उद्दीपक है। ब्रूनर श्रेणी अथवा कक्षा श्रेणी-क्रम जैसे बाहरी प्रतिस्पर्धात्मक उद्देश्यों (goals) को प्रसन्द नहीं करते थे।

संरचनावादी प्रक्रिया की तरह अधिगम (Learning as Constructivist Process)

अधिगम वास्तविकताओं/ को संरचित करने की प्रक्रिया है जो कि अन्ततः संज्ञानात्मक विकास में जुड़ जाती है। ब्रूनर का सैद्धान्तिक ढाँचा इस विषय-वस्तु पर आधारित है कि अधिगमकर्त्ता विद्यमान ज्ञान के आधार पर नए विचार या संप्रत्यय संरचित करते हैं। अधिगम एक सक्रिय प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के आयामों में सूचनाओं का चयन एवं रूपान्तरण, निर्णयीकरण, परिकल्पनाएँ बनाना और सूचनाओं एवं अनुभवों से अर्थ निकालना सम्मिलित है।

सूझपूर्ण □वं विशलेषणात्मक चिन्तन (Intuitive and Analytic Thinking)

ब्रूनर का विश्वास है कि सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक दोनों चिन्तन प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किए जाने चाहिए। उनका विश्वास था कि सूझपूर्ण (अर्न्तज्ञात) कौशलों को कम-बल दिया जाता था और वे प्रत्येक क्षेत्र में सूझ पूर्ण छलांग (कदम) हेतु विशेषज्ञों की क्षमताओं पर चिन्तन करते हैं। यह एक बिना विश्लेषणात्मक कदम के मुक्तिपूर्ण लेकिन तात्कालिक प्रतिपादन पर पहुँचने की बृद्धिपूर्ण तकनीकी है

जिससे इस तरह के प्रतिपादन वैध या अवैध निष्कर्ष पाए जाएँगे। (दण्डपाणी, 2001) सूझपूर्ण चिन्तन बृद्धि पूर्ण अनुमान, अटकलों आदि से प्रदर्शित होता है।

खोज-अधिगम (Discovery learning)

खोज अधिगम संज्ञान की क्रियात्मक क्षमता को बढ़ाता है। ब्रूनर में 'खोज-अधिगम'को विख्यात किया। खोज-अधिगम एक पूछ-ताछ आधारित संरचनावादी अधिगम सिद्धान्त है जो कि समस्या समाधान परिस्थितियों में होता है जहाँ अधिगमकर्त्ता अपने स्वयं की अनुभूतियों एवं विद्यमान ज्ञान के प्रयोग से तथ्यों, उनके सम्बन्धों एवं नए सत्यों को सीखने हेतु खोजता है। शिक्षार्थी वस्तुओं के जोड़-तोड़ एवं अन्वेषण से एवं वाद-विवाद से जूझकर या प्रयोगों को सम्पन्न करके (वातावरण) से अन्तःक्रिया करता है। परिणामस्वरूप, शिक्षार्थी स्वयं द्वारा अन्वेषित ज्ञान एवं संप्रत्ययों को आसानी से स्मरित कर सकेंगे (अन्तरणवादी प्रतिमान के विपरित)। प्रतिमान जो खोज-अधिगम पर आधारित है- निर्देशित- खोज , समस्या आधारित अधिगम, अनुकरण आधारित अधिगम, स्थिति आधारित अधिगम, अनुषंगिक अधिगम आदि को सम्मिलित करता है।

इस सिद्धान्त के प्रस्तावकों का विश्वास है कि खोज अधिगम के निम्नलिखित सहित कई लाभ हैं -

- सक्रिय विनियोजन को प्रोत्साहित करना।
- संज्ञानात्मक कौशलों को बढ़ावा देना।
- संज्ञानात्मक विकास की प्रगति को त्वरित करना।
- प्रेरण को प्रोत्साहित करना।
- स्वायत्तता, जिम्मेदारी, स्वतन्त्रता को प्रोत्साहन देना।
- समस्या-समाधान कौशलों एवं सृजनात्मकता का विकास करना।
- उचित अधिगम अनुभव

खोज अधिगम से हानियाँ भी हो सकती है जो कि निम्नवत हैं :

- संज्ञानात्मक अतिभार उत्पन्न होना।
- बड़े समूहों व मन्द अधिगमकर्त्ता ओं के लिए इसका कठिन अधिगम प्रक्रिया हो सकना
- सम्भावित भ्रान्त धारणाएँ
- समस्याओं एवं भ्रान्त धारणाओं को चिन्हित करने में शिक्षक असफल हो सकते हैं।

अनुभवजन्य अधिगम (Experientiol Learning)

अनुभवजन्य अधिगम बौद्धिक विकास में बहुत सहायक होता है। यह आगमनात्मक, अधिगमकर्त्ता - केन्द्रित एवं क्रिया-कलाप उन्नमुखित होता है। अनुभव के बारे में वैयक्तिक चिन्तन और दूसरी परिस्थितियों में अधिगमित ज्ञान का प्रयोग करने में योजनाओं का प्रतिपादन (सुत्रीकरण) प्रभावी अनुभवजन्य अधिगम के लिए क्रान्तिक (विवेचनात्मक) कारण है। अनुभवजन्य अधिगम में अधिगम के प्रक्रिया पर जोर दिया जाता है न कि अधिगम के उत्पाद पर संज्ञानात्मक विकास पर अधिगम की प्रक्रिया का अत्याधिक (अवश्य) प्रभाव होता है। अनुभवजन्य अधिगम को उन पाँच चरणों वाले चक्र के रूप में देखा जा सकता है जिसमें सभी चरण आवश्यक हैं:-

- अनुभव करना (क्रिया कलाप का होना)
- साझा करना या प्रकाशित करना (प्रतिक्रियाएँ एवं प्रेक्षण साझा किए जाते हैं)
- विश्लेषण करना या प्रक्रिया करना (ढाँचा एवं गति की निश्चित होती है।)
- निष्कर्ष निकालना या सामान्यीकरण करना। (सिद्धान्त व्युत्पन्न होते हैं),तथा
- विनियोग करना (applying) (नई परिस्थितियों में अधिगम के प्रयोग हेतु योजनाएँ बनती हैं।)

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

4. वर्गीकरण क्या है?
5. ब्रूनर ने आन्तरिक संज्ञानात्मक मानचित्रों की संरचना में _____ के वर्गीकरण पर ज्यादा जोर दिया।
6. ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम कौन से हैं?

6.5 जे0 □ 0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का सिद्धान्त J.S. Bruner's Theroy of the Stages of Cognitive Development

जिरोम ब्रूनर ने 1960 के दशक में संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विकसित किया। उनका यह उपागम (पियाजे के विपरित) वातावरणीय एवं अनुभवजन्य कारकों को महत्व देता है। ब्रूनर सुझावित करते है कि बुद्धि का प्रयोग जैसे-2 किया जाता है चरण-दर-चरण परिवर्तनों की अवस्था में बौद्धिक क्षमता विकसित होती है। ब्रूनर का चिन्तन उत्तरोत्तर लेव वाइगोत्सकी जैसे लेखकों द्वारा प्रभावित हुआ और वे अन्त: वैयक्तिक केन्द्र, जो कि उनका विषय रहा पर और अधिक विश्लेषणात्मक हुए और सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों पर कम ध्यान दिया।

प्रक्रिया सिद्धान्तवादी जिरोम ब्रूनर (1973) संज्ञानात्मक विकास को आंशिक रूप से आन्तरिक प्रदर्शनों के बढ़ते हुए विश्वास के रूप में देखते हैं। ब्रूनर के अनुसार शिशुओं के पास बुद्धि का उच्चतम क्रिया उन्नमुखित रूप होता है। वे किसी वस्तु को केवल उस स्तर तक जानते हैं जिससे कि वे उस पर क्रिया कर सकें। नवजात शिशु किसी वस्तु को उसके प्रत्यक्षण द्वारा जानते हैं और परिणामस्वरूप वे वस्तुओं घटनाओं के सुस्पष्ट प्रत्यक्षणात्मक विशेषताओं द्वारा दृढ़तापूर्वक प्रभावित होते हैं। बड़े बच्चे व किशोर वस्तुओं को अन्तरतः तथा प्रतिमानों के द्वारा जानते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे इन मानसिक प्रतिमाओं को दिमाग (बुद्धि) (Mind) में रखने हेतु वस्तुओं एवं क्रियाओं के आन्तरिक प्रतिमाओं एवं प्रदर्शनों को विभाजित करने में सक्षम होते हैं। ब्रूनर बालक की बढ़ती हुई क्षमताएँ वातावरण से कैसे प्रभावित होती है विशेषतया-प्रोत्साहन एवं दण्ड, जिसे लोग विशेष बुद्धि को विशेष प्रकार से प्रयोग करने हेतु प्राप्त करते है, में रूचि रखते हैं। ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्थाओं को बताया।

प्रथम अवस्था को उन्होंने 'सक्रियता' (Enactive) नाम दिया। सक्रियता एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओं के उत्पादों के द्वारा वातावारण को समझता है। द्वितीय अवस्था "दृश्य प्रतिमा (Iconic)" कहलाई जिसमें प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।

अन्तिम अवस्था "सांकेतिक" (Symbolic) अवस्था थी जिसमें अधिगमकर्त्ता अमूर्त पदों में चिन्तन करने की क्षमता का विकास करता है। इस त्रि-अवस्थीय मत के आधार पर ब्रूनर ने मूर्त, चित्रात्मक और फिर सांकेतिक क्रियाओं जो कि अधिक प्रभावी अधिगम को अग्रसर होगी, के संगठनात्मक प्रयोग की अनुशंसा की।

ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त पियाजे के सिद्धान्त से अत्यधिक साम्य रखता है परन्तु कुछ महत्वपूर्ण एवं स्पष्टतया मूल अन्तर भी हैं। पियाजे का कार्य 'क्या होता है'की व्याख्या से अत्याधिक संबंधित है। वे उस क्रिया विधि पर विचार करते हैं जिसमें मुख्यतः व्याख्याओं को स्पष्ट करने के क्रम में बुद्धि का विकास होता है। दूसरी तरफ ब्रूनर संज्ञानात्मक विकास "कैसे" और ''क्यों" होता है के प्रश्नों से अपने आप को ज्यादा संबंधित रखते हैं। जबकि पियाजे वयस्कता प्रक्रियाओं को सम्भवतः सबसे महत्वपूर्ण कारकों और संस्कृति एवं शिक्षा को परिष्कारित कारकों के रूप में महत्व देते हैं। ब्रूनर इन अन्तिम दो को ज्यादा महत्व देते हैं। वे पियाजे के इस विचार से असहमत है कि महत्वपूर्ण अभिप्रेरक या बौद्धिक विकास में प्रभाव, जैविक हैं और दावा करते हैं कि यदि जैविक विकास व्यक्ति को अधिक सामजस्यपूर्ण व्यवहार की ओर 'धकेलता' है तो वातावारण उसी दिशा में "खींचता"है। यहाँ ब्रूनर जोर दे रहे हैं कि बालक का अध्ययन केवल उसके अनुभव एवं वातावरण के परीक्षण के बिना एक अपूर्ण चित्र देने की सीमा है। जहाँ पियाजे केवल यह कहते है कि संज्ञानात्मक विकास व्यक्ति और वातावरण के मध्य एक अन्तःक्रिया महत्व को देता है वहीं ब्रूनर इस बिन्दु पर जोर देते हैं और महत्व देते हैं कि बालक का वातावरण ध्वनिक्षेपक की तरह हो जिससे बालक की क्षमताओं का विस्तार हो।

जबकि पियाजे की ही तरह ब्रूनर का मानना है कि विकासशील बालक अपने विकास में स्वयं सक्रिय भागीदारी निभाता है यद्यपि कि परिवार, शैक्षिक तन्त्र एवं बालक के मित्र भी। उदाहरण के लिए विकास

को महत्व देने हेतु बालक अपनी स्वयं की दुनिया की समझ बनाता है। प्रत्यक्षण एक सक्रिय, संरचनात्मक प्रक्रिया है, हम कच्चे (अपरिष्कृत) संवेदी सूचनाओं से अनुमान लगाते हैं तथा निर्णय लेते हैं कि वास्तव में वहाँ क्या है। ठीक उसी तरह हम उद्दीपकों की प्रक्रिया करते हैं और हम अपने स्वयं के निष्कर्ष बनाते हैं, इसलिए ब्रूनर विचार करते हैं कि हम अवश्य ही समझने और अपने वातावरण से अधिक सफलता पूर्वक अन्तःक्रिया करने के क्रम में अपनी संज्ञानात्मक क्षमताओं का विकास करते हैं।

अपने वातावरण पर नियन्त्रण के योग्य होने के लिए हमें इसकी भविष्यवाणी करना सीखना होगा, अतः हमें अपने अनुभवों को प्रदर्शित करना और अन्तरतः संगठन करना सीखना होगा। जो कि पूर्णतः जो वाह्य वास्तविकताएँ बनाते हैं उसके मानसिक प्रदर्शनों के प्रकारों (प्रतीकों) पर निर्भर करता है।

हम अपने वातावरण को प्रदर्शित करने की क्षमता का अन्तरतः विकास किस प्रकार से करते हैं और भविष्य में जो कुछ घटित होगा उसकी भविष्यवाणी करने में इन सूचनाओं का प्रयोग कैसे करते हैं, में ब्रूनर रूचि लेते रहे। इन्होंने तीन प्रकार के प्रदर्शनों को चिन्हित किया जो कि उनके विश्वास में संज्ञानात्मक विकास के आधार हैं। जिस क्रम में ये मनुष्य में प्रकट होते हैं उसी क्रम में ये व्याख्यायित होंगे। इनकी तुलना पियाजे की विकासात्मक अवस्थाओं से की जानी चाहिए। पियाजे की प्रस्तावित अवस्थाएँ , जैविक रूप से बालक स्वयं जितना कार्य करने की क्षमता रखता है, की व्याख्या करती हैं। जबकि ब्रूनर के प्रदर्शन के प्रकार व्यक्ति के वातावरण का उसका निष्कर्षण तथा भविष्यवाणी में होने वाले परिवर्तनों से अधिक सम्बन्धित है।

सक्रियता प्रदर्शन (Enactive Representation) बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने 'सक्रियताप्रदर्शन' (Enactive representations) का नाम दिया है। 'चलन' या 'पेशीय स्मरण'के लिए यह प्रथम प्रकार उपयोगी चिन्तन का तरीका है। भूत-अनुभवों को सांकेतिक रूप में संग्रहित नहीं किया जा सकता है। एक शिशु अपने भूत-अनुभवों को केवल पेशीय ढाँचे(Motor Pattern) के रूप में व्यक्त (Represent) कर सकता है।

It might, for example, at one time have a string of rattling beads strung across its cot, and be able to make them rattle by hitting them with its hands. You might notice that when they are taken away it continues to move its hands as if to hit them. It seems to show that it has some form of internal representations of its experience with the beads, and indicates this in motor form by repeating the motor patterns associated with them. No images of the beads need to be involved; this earliest form of internal representation does not seem to require the use of visual images.

प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations) दूसरे प्रकार के प्रकट होने वाले प्रदर्शन को प्रतिमा प्रदर्शन (Iconic Representations)नाम दिया गया। प्रतिमा का अंग्रेजी पर्याय आइकॉनिक (Iconic) है जो कि आइकन शब्द से बना है जिसका अर्थ है समानता या साम्य। ज्ञानेन्द्रियों तक पहुँचने वाले उद्दीपकों के विश्वसनीय प्रदर्शन के रूप में अब बालक दृश्य-श्रवण या स्पर्श-प्रतिमाओं को याद करने की क्षमता का विकास करता है। यह विधि वातावरण के बारे में सूचनाओं के संग्रहित करने की सबसे अच्छी विधि है। वे बच्चे जो प्रतिमा प्रदर्शन (Imaging)का प्रयोग करते हैं, चित्र व नामांकन के सुस्पष्ट विश्वसनीय प्रदर्शन बनाने में और आवश्यकतानुसार प्रत्यास्मरित करने में सक्षम होते हैं। दूसरी तरफ वे बच्चे जो प्रमिता नहीं बना पाते या प्रतिमा बनाने में बहुत कमजोर होते हैं नामांकन को याद करने में तथा इसे सही चित्र में स्थापित (Fit) करने में कठिनाई महसूस करते हैं क्योंकि शब्द अपने आप में किंचित इंगित नहीं कर पाते कि वे किस चित्र में स्थापित होंगे। प्रतिमा-कल्पना इतनी अपरिवर्तनीय (कठोर) है कि यह बालक को प्रायः वातावरण के भागों के केवल विशेष चित्रों को सीखने के लिए स्वीकृत करती है और वस्तुओं में निहित साम्यता को निष्कर्षित करना कठिन बना देती है। अतः प्रतिमा कल्पना करने वाले बच्चों को प्रतिमा-कल्पना न करने वाले बच्चों की अपेक्षा वस्तुओं का वर्गीकरण करने में अधिक कठिनाई होती है।

सांकेतिक प्रदर्शन (Symbolic Representation)सक्रियता (Enactive) तथा प्रतिमा (Iconic) दोनों प्रदर्शनों के साथ यह समस्या है कि ये सापेक्ष तथा कठोर (अपरिवर्तनीय) हैं, सक्रियता प्रदर्शन बालक को केवल पेशीय तरीके के रूप में वातावारण को निष्कार्षित करने में सक्षम बनाता है, जबकि प्रतिमा प्रदर्शन उसे केवल चित्र के रूप में वातावरण को प्रदर्शित करने में सक्षम बनाता है। चूंकि वातावरण निरन्तर परिवर्तनशील है, इसलिए केवल ये दोनों रूप सक्रियता तथा प्रतिमा, वातावरण की सभी सूचनाओं को प्रभावी रूप में कूट-कृत नहीं कर सकते एवं भविष्यवावणी करने में सक्षम नहीं हो सकते हैं।

सांकेतिक प्रदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है समस्या का समाधान प्रतीकों के प्रयोग द्वारा करते हैं। एक प्रतीक कुछ अतिरिक्त को प्रदर्शित करता है, उदाहरण के लिए दो व्यक्तियों का हाथ मिलाना यह प्रदर्शित करता है कि वे एक दूसरे पर आक्रमण नहीं करेंगे(हम प्रायः दाहिने हाथ को मिलाते हैं जिससे युद्ध की स्थिति में हथियार उठाए जाते हैं।) अतः ब्रूनर का विश्वास है कि मानव भाषा-शब्द एवं वाक्यों के रूप में प्रतीकोंका एक क्रम, जिससे इस निरन्तर परिर्वतनशील वातावरण की सूचनाओं को प्रदर्शित एवं संग्रहित किया जा सकता है। 'सब्जीयाँ' शब्द कागज पर टंकित एक शब्द विन्यास मात्र हो सकता है किन्तु जब आप इसे पढ़ते हैं तथा इसके अर्थ को निष्कर्षित करते हैं तो यह एक बड़ी मात्रा की सूचना का प्रत्यास्मरण करता है। वास्तव में ब्रूनर सांकेतिक प्रदर्शन के विकास में भाषा को एक महत्वपूर्ण सहायक उपकरण मानते हैं क्योंकि भाषा वर्गीकरण एवं क्रम निश्चित करने में हमें सक्षम बनाती है।ब्रूनर द्वारा प्रतिपादित संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं का आरेखी प्रदर्शन यहाँ इस प्रकार से किया जा रहा है कि इसके निश्चित क्रम की सही कल्पना की जा सके।

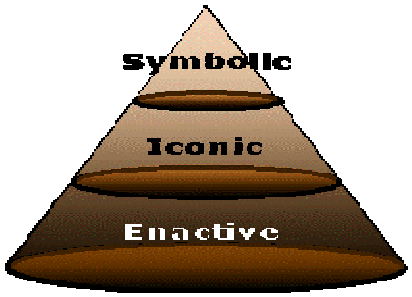

चित्र.1- संज्ञानात्मक विकास की तीन अवस्था (ब्रूनर)

- सक्रियता **(Enactive)**जहाँ एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा वातावरण के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा **(Iconic)**जहाँ अधिगम प्रतिमानों एवं प्रतिमाओं के द्वारा होता है।
- सांकेतिक **(Symbolic)**जो अमूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

पियाजे एवं ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्तों में कुछ उभयनिष्ठ कारक हैं। अवस्थाओं के पदों में दोनों सिद्धान्तों के लिए तुलनात्मक तालिका निम्नवत दी गई है।

पियाजे एवं ब्रूनर के सिद्धान्त के तुलान्तमक स्तर को प्रदर्शित करती तालिका:-

पियाजे के सिद्धान्त की अवस्था	**ब्रूनर के सिद्धान्त की अवस्था**
संवेदी पेशीय अवस्था	सक्रियता प्रदर्शन
प्राक् संक्रियात्मक अवस्था	प्रतिमा प्रदर्शन
ठोस संक्रिया की अवस्था	
औपचारिक संक्रिया की अवस्था	सांकेतिक प्रदर्शन

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. जिरोम ब्रूनर ने 1960 के दशक में _____ का सिद्धान्त विकसित किया।

8. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के नाम लिखिए।
9. सक्रियता अवस्था क्या है?
10. _____ अवस्था में प्रतिमानों एवं चित्रों के प्रयोग से अधिगम होता है।
11. बालक में प्रकट होने वाले प्रथम प्रकार के प्रदर्शन को ब्रूनर ने_____का नाम दिया है।

6.6 ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त का शैक्षिक निहितार्थ

जिरोम ब्रूनर ने शिक्षा की प्रक्रिया एवं पाठ्यचर्या सिद्धान्त के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका कार्य औपचारिक, निरौपचारिक, अनौपचारिक शिक्षकों तथा उन सभी जीवन पर्यन्त अधिगम (LLL) से सम्बन्धित लोगों के लिए महत्वपूर्ण पाठों पर प्रकाश डालता है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के संगठन एवं इसे जारी रखने हेतु ब्रूनर का सिद्धान्त बहुत ही सहायक है। ब्रूनर सिद्धान्त के पदानुक्रमानुसार प्रभावी अधिगम-उत्पाद हेतु अधिगम अनुभवों को सक्रियता (Enactive) प्रतिमा (Iconic)सांकेतिक (Symbolic) क्रम में रखा जाना चाहिए। ठीक यही गुणार्थ, एक प्राचीन चीनी लोकोक्ति से भी संप्रेषित होती है।

"जो मैं सुनता हूँ, भूल जाता हूँ, (सांकेतिक प्रदर्शन)

जो मैं देखता हूँ, याद हो जाती है, (प्रतिमा प्रदर्शन)

जिसे मैं करता हूँ, समझ जाता हूँ"। (सक्रियता प्रदर्शन)

अतः शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में किसी भी अधिगम-पाठ को उचित तरीके से समझने हेतु "करके सीखना (Learning by doing)" विधि को प्राथमिकता देनी चाहिए।

यह एक स्थापित तथ्य भी है कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को, किए गए कार्य द्वारा सीखना (सक्रियता अधिगम माध्यम) दूसरे सीखने के तरीकों की तुलना में अधिक स्थाई होता है, को बल प्रदान करता है। लोगों को 10 प्रतिशत जो वे पढ़ते हैं, 20 प्रतिशत जो वे सुनते हैं, 30 प्रतिशत जो वे देखते हैं, 50 प्रतिशत जो वे देखते और सुनते हैं, 70 प्रतिशत जो वे कहते हैं या लिखिते हैं तथा 90 प्रतिशत वे किसी कार्य को करकेहैं, याद रहता है। यह प्रतिशतता चित्र-2 में चित्रित की गई है। यह अनुसंधान परिणाम शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया की योजना बनाने व उसके क्रियान्वयन में बहुत सहायक होगी जो कि ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को बल प्रदान करती है।

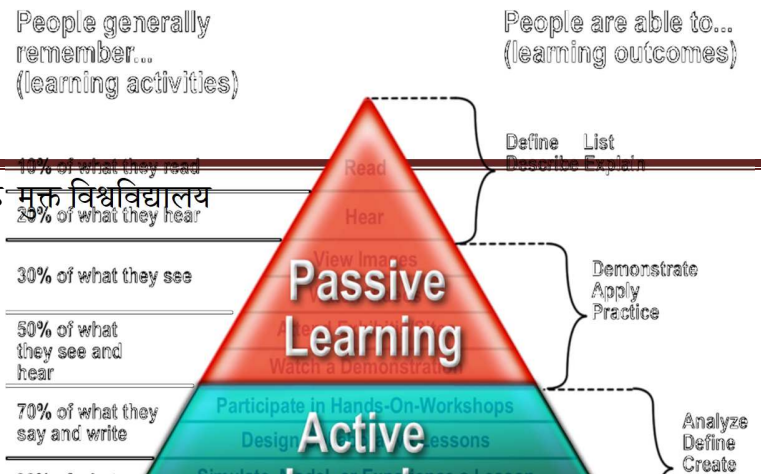

चित्र.2 अधिगम के माध्यम से उसकी प्रभाविता को प्रदर्शित करता चित्र

एडगर डेल द्वारा विभाजित "अनुभव शंकु" भी ब्रूनर के सिद्धान्त का ही उत्पाद है। मानसिक प्रदर्शनों की प्रकृति के अनुसार एडगर डेल ने शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया परिस्थितियों में प्रयोग आने वाली दृश्य-श्रव्य सामग्रियों को वर्गीकृत किया। जब डेल ने अधिगम और शिक्षण विधियों पर अनुसंधान किया तो पाया कि हम जो प्राप्त करते हैं उनमें से ज्यादातर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अनुभवों के सत्य होते हैं। इन्हें 'सूची स्तम्भ (Pyramid) या 'चित्रीय यंत्र' के रूप में संक्षिप्त किया जा सकता है जिसे डेल ने "अधिगम शंकु"कहा। उन्होंने कहा कि "शंकु-यंत्र"अधिगम अनुभव का एक दृश्य-रूपक है जिसमें विभिन्न प्रकार के दृश्य-श्रव्य सामग्रीयाँ प्रत्यक्ष अनुभव से शुरू करके अमूर्तता के क्रम में व्यवस्थित होती हैं।

डेल की पुस्तक ''आडियो विजुवल मेथड्स इन टीचिंग"-1957 मूल नामांकन के दस वर्ग (अनुभवों के माध्यम) प्रत्यक्ष (Direct), सोद्देश्य अनुभव (Purposeful Experiences), आविष्कारित अनुभव (Contrived Experiences) नाटकीय सहभागिता (Dramatic Participation), प्रदर्शन (Demonstration), क्षेत्र भ्रमण (Field Trips), प्रदर्शनी चल चित्र (Motion Picture), रेडियो, ध्वन्यालेखन (Recordings) स्थिर चित्र, दृश्य संकेत (Visual Symbol) तथा शाब्दिक संकेत (Verbal Symbols) हैं। ये सभी ब्रूनर द्वारा अन्वेषित मानसिक प्रदर्शनों के उप वर्ग हैं। मध्यस्थ अधिगम अनुभव के परिवर्तित प्रकारों के लिए डेल का वर्गीकरण तंत्र जो कि प्रभावी शिक्षण हेतु बहुत सहायक है, यहाँ प्रस्तुत है।

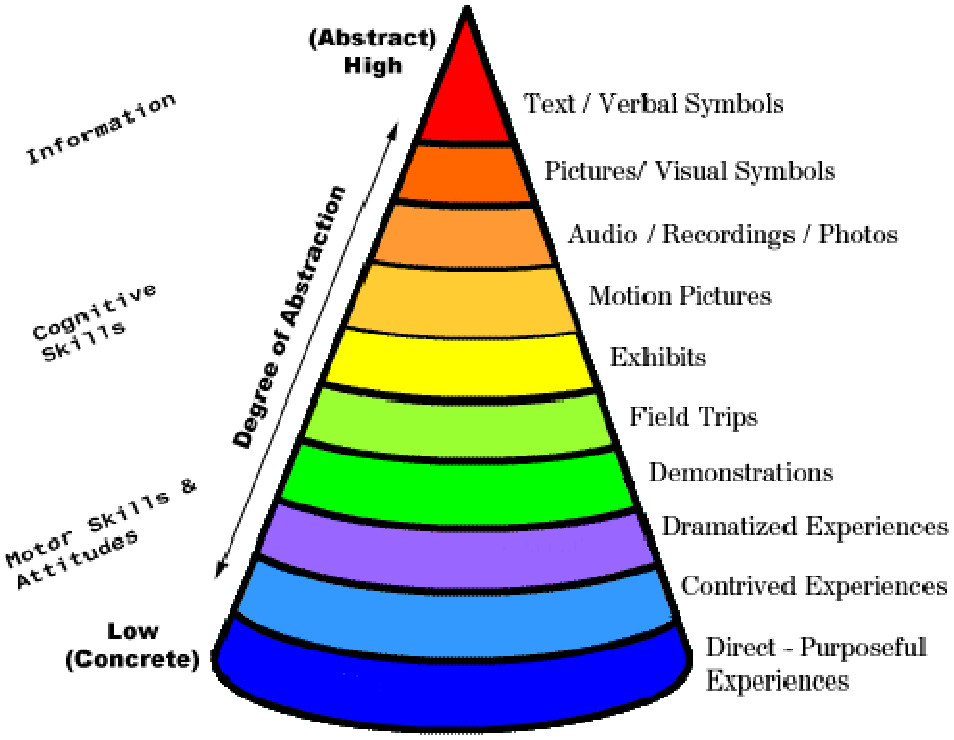

Graphic courtesy of Edward L. Counts, Jr.

चित्र.3 अध्यस्थ अधिगम अनुभव के परिवर्तित प्रकारों के लि□डेल का वर्गीकरण

कुण्डली पाठ्यचर्या Spiral Curriculum

शिक्षण-अधिगम की प्रभावशीलता बढ़ाने हेतु पाठ्यचर्या संगठन के माध्यम इसके बहुत ही महत्वपूर्ण पहलू हैं। इसके लिए ब्रूनर ने 'कुण्डली पाठ्यचर्या का संप्रत्यय दिया। कुण्डली पाठ्यचर्या से तात्पर्य विचारों को बार-बार दुहराने का विचार, उस पर निर्माण और पूर्ण समझ तथा निपुणता के स्तर के विस्तार से है।'कुण्डली पाठ्यचर्या' -एक पाठ्यचर्या है जैसा कि यह विकास करती है, बारम्बार इस मूल विचार को दुहराया जाना चाहिए, उस पर तब तक निर्माण करती है जबतक कि छात्र पढ़ेगए पाठ के औपचारिक यंत्र को पूर्णरूपेण सीख नहीं लेता है। अतः एक विषय की पाठ्यचर्या उस विषय को संरचना प्रदान करने वाले निहित सिद्धान्तों को प्राप्त कर सकने वाले अत्याधिक मूल समझ द्वारा ज्ञात होनी चाहिए (ब्रूनर, 1960) उत्तरोत्तर जटिल स्तरों पर किसी विषय के सिद्धान्त को सरल स्तर से शुरू करना और तत्पश्चात अधिक जटिल स्तर तक प्रकरणों को दुहराना समझा जा सकता है।

ब्रूनर ने अपनी दो पुस्तकों- "दि प्रासेस ऑफ एजूकेशनः टूवर्डस ए थियरी ऑफ इन्सट्रक्सन (1966)" तथा "दि रेलिवेन्स आफ एजूकेशन (1971)" में अपने विकसित विचारों के उन तरीकों के बारे में वातावरण के मानसिक प्रतिमानों, जिन्हें शिक्षार्थी निर्मित करते हैं,उसकी व्याख्या करते हैं तथा स्थानान्तरण करते हैं को प्रभावित करते हैं को सम्मुख रखा। अनुदेशनात्मक कौशल जे0एस0ब्रूनर का मुख्य योगदान है। इसलिए शिक्षा प्रक्रिया की प्रभावी उत्पादकता हेत ब्रूनर का सिद्धान्त एक विशेष अध्याय ही है। किसी को अनुदेशित करनाध्यान देने योग्य परिणामों को प्राप्त करने का विषय नहीं है। इसके बावजूद यह ज्ञान की स्थापना को सम्भव बनाने वाली प्रक्रिया में सहभागिता करना सीखाता है। हम किसी विषय को छोटी-मोटी जीवन्त पुस्तकालय बनाने हेतु नहीं सीखाते अपितु इसलिए सीखाते हैं कि एक छात्र गणितीय तरीके से चिन्तन करे, इतिहासकारों की तरह मुद्दो पर विचार करे और ज्ञान-प्राप्त करने की प्रक्रिया में भाग ले । जानना एक प्रक्रिया है न कि उत्पाद। (1966-72)

ब्रूनर के सिद्धान्त का कूटकृत तन्त्र, यह विचार कि लोग वातावरण (दुनिया) को अधिकांशतः साम्यता व अन्तर के पदों में निष्कर्षित करते हैं, प्रस्तुत करता है। यह संप्रत्यय उन शिक्षकों के लिए बहुत सहायक है, जो संप्रत्ययीकरण के सही गतिकी को जानना चाहते हैं। ब्रूनर कीका मानना है कि प्रत्यक्षणा, सप्रत्ययीकरण, अधिगम, निर्णय-लेना तथा निष्कर्षण ये सभी वर्गीकरण को सम्मिलित करते हैं। शिक्षकों को अपने अनुदेशन के दौरान वर्गीकरण की प्रक्रिया पर केन्द्रित होना चाहिए जिससे कि संज्ञानात्मक प्रक्रिया प्रभावी बने।

ब्रूनर के अनुसार छात्रों के संज्ञानात्मक कौशलों का विकास करने के लिए विचारों के सूझपूर्ण एवं विश्लेषणात्मक चिन्तन, दोनों को प्रोत्साहित एवं पुरस्कृत किया जाना चाहिए।

शिक्षण और अधिगम के लिए ब्रूनर का निहित सिद्धान्त जो कि मूर्त, चित्रात्मक तथा फिर सांकेतिक क्रियाकलापों का एक संयोग है, अधिक प्रभावी अधिगम की ओर ले जाता है। यह मूर्त अनुभवों से शुरू होकर चित्रों तक फिर अन्ततः सांकेतिक प्रदर्शनों का प्रयोग करने का एक क्रम (श्रेणी) है।

पियाजे के विपरीत ब्रूनर का प्रस्ताव यह है कि शिक्षकों को छात्रों के नए स्कीमा (Schemas) बनाने के सहायतार्थ सक्रियतापूर्वक हस्तक्षेप करना चाहिए। शिक्षकों को केवल तथ्य ही नहींअपितु संरचना, अभिदिशा, परामर्श तथा अवलम्ब प्रदान करना चाहिए।

वाइगोत्सकी की तरह ही ब्रूनर भी शिक्षकों द्वारा प्रदत्त स्कैफोल्डिंग(Scaffolding) या अवलम्ब के प्रयोग को प्रस्तावित करते हैं। अवलम्ब क प्रयोग बालक को समझ के उच्च स्तर तक पहुँचने में सहायता करता है। यह इसलिए संभव हो पाता है क्योंकि अवलम्ब के प्रयोग से कार्य सरल, लक्ष्य युक्त, अभिप्रेरित, प्रोत्साहित हो जाता है। साथ ही इससे इस कार्य के सामान कार्यों का प्रदर्शन या प्रतिमान मिलना संभव हो पाता है ।

ब्रूनर एक विषय में सक्रिय समस्या समाधान प्रक्रिया के द्वारा श्रेणी पर जोर देते हैं । ब्रूनर कहते हैं कि शिक्षक सिर्फ तथ्यों को प्रस्तुत करने के बजाए निहित सिद्धान्तों एवं संप्रत्ययों को प्रस्तुत करते हैं। यह अधिगमकर्त्ता ओं को प्रदत्त सूचनाओं के परे जाने एवं स्वयं के विचार विकसित करने में सक्षम बनाता है। अतः शिक्षकों को अधिगमकर्त्ता ओं में विषय के अन्दर एवं विषयों के मध्य कड़ियाँ (Links) बनाने हेतु प्रोत्साहित करना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12. ब्रूनर की दो पुस्तकों के नाम लिखिए।

6.7 सारांश

जिरोम एस0 ब्रूनर शिक्षा पर अत्यधिक प्रभाव रखते रहे हैं। 1960 के दशक में ब्रूनर ने संज्ञानात्मक विकास का सिद्धान्त विकसित किया। उनका यह उपागम (पियाजे के विपरीत) वातावरणीय एवं अनुभवजन्य करकों को देखता है। ब्रूनर ने सुझाव दिया कि बुद्धि का प्रयोग जैसे -2 होता है बौद्धिक क्षमता चरण-दर-चरण परिवर्तनों के द्वारा स्तरों में विकसित होती हैं। ब्रूनर के बौद्धिक विकास के सिद्धान्त के तीन चरण निम्नवत हैं -

- सक्रियता (Enactive) जहाँ एक व्यक्ति वस्तुओं पर संक्रिया के द्वारा दुनिया के बारे में सीखता है।
- प्रतिमा (Iconic) जहाँ प्रतिमानों एवं चित्रों के माध्यम से अधिगम होता है।
- सांकतिक (Symbolic)जो मूर्त रूप में चिन्तन करने की क्षमता की व्याख्या करता है।

परिणामस्वरूप, जे0एस0ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की विशेषताओं को निम्नवत गिनाया जा सकता है।

- जिरोम ब्रूनर सामाजिक संदर्भ में मस्तिष्क में ज्ञान की संरचना के रूप में संज्ञानात्मक विकास पर जोर देते हैं।
- ब्रूनर के प्रेक्षणानुसार इस दुनिया के ज्ञान को संरचित करने की प्रक्रिया एकान्त में नहीं होती अपितु सामाजिक संदर्भ में होती है।
- बालक एक सामाजिक प्राणी है और, इस सामाजिक जीवन द्वारा वह अनुभवों के निष्कर्षीकरण के लिए एक ढ़ाँचा तैयार करता है।
- ब्रूनर के अनुसार सभी अधिगमकर्त्ता ओं के लिए कोई एक अद्वितीय क्रम नहीं है और किसी विशेष अवस्था में अनुकूल वातावरण, भूत-अनुभव, विकास की अवस्था, पदार्थ की प्रकृति और वैयक्तिक विभिन्ता को सम्मिलित करते हुए विभिन्न करकों पर निर्भर करेगी।

- प्रभावी पाठ्यचर्याबच्चों के लिए बहुत से अवसर एवं विकल्प प्रदान करती है और इसलिए संज्ञानात्मक विकास में सहायक है।
- बहु-उम्र व्यवस्था में बच्चों को अपने अधिगम- अनुभवों को चुनने का अवसर मिलता है।
- इसके अतिरिक्त , बहु-उम्र व्यवस्था में प्रयुक्त विभिन्न शिक्षण विधियाँ बच्चों को कई तरीकों से ज्ञान प्राप्त करने के अवसर प्रदान करती हैं।

ब्रूनर का सिद्धान्त पियाजे के सिद्धान्त से बहुत साम्यता रखता है। पियाजे की तरह ब्रूनर का सिद्धान्त भी बच्चे के शैशवावस्था एवं बाल्यावस्था में अधिक प्रयोज्य है। ब्रूनर के अनुसार शिक्षकों को बच्चे के शैक्षिक उद्देश्यों के लिए उसके आन्तरिक कल्पना विकास का उपयोग करना चाहिए। बच्चे को यह मानसिक कल्पना उसे उसके अनुभवों के संरक्षण एवं नए अनुभवों के साथ अग्रसर होने में सक्षम बनाएगी। इस तरह, यह सिद्धान्त शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया पर विशाल प्रभाव छोड़ता है। ब्रूनर के सिद्धान्त के व्यावहारिक पहलू को जानने हेतु इसके शैक्षिक निहितार्थ की चर्चा विस्तृत रूप में की गई।

6.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. वर्गीकरण
2. ब्रूनर के प्रस्तुतीकरण के तीन तरीके निम्न हैं-
   i. सक्रियता प्रस्तुतीकरण (क्रिया-आधारित)
   ii. दृश्य प्रतिमा प्रस्तुतीकरण (प्रतिमा- आधारित)
   iii. सांकेतिक प्रस्तुतीकरण (भाषा- आधारित)
3. संज्ञानात्मक विकास
4. मस्तिष्क सूचनाओं का सरलीकरण कैसे करता है जो कि लघु-अवधि स्मृति में प्रवेश करता है , वर्गीकरण है।
5. सूचनाओं
6. ब्रूनर के विचारों में मानसिक प्रदर्शन के तीन माध्यम हैं- दृश्य, शब्द तथा प्रतीक।
7. संज्ञानात्मक विकास
8. ब्रूनर की संज्ञानात्मक विकास की अवस्थाओं के नाम हैं-
   i. सक्रियता अवस्था (Enactive)
   ii. दृश्य प्रतिमा अवस्था (Iconic)
   iii. सांकेतिक अवस्था (Symbolic)
9. सक्रियता अवस्था एक ऐसी अवस्था है, जिसमें एक व्यक्ति भौतिक वस्तुओं पर क्रिया करके एवं उन क्रियाओंके उत्पादों के द्वारा वातावारण को समझता है।
10. दृश्य प्रतिमा
11. सक्रियताप्रदर्शन

12. ब्रूनर की दो पुस्तकों के नाम हैं –
    i. दि प्रासेस ऑफ एजूकेशनः टूवर्डस ए थियरी ऑफ इन्सट्रक्सन
    ii. दि रेलिवेन्स आफ एजूकेशन

6.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ब्रूनर , जे0 (1960). दी प्रॉसेकस ऑफ एजूकेशन कैम्ब्रीज, एमए: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस हार्ले, 1995.
2. ब्रूनर , जे0 एस0 (1966). टूवर्डस् अ थीयरी ऑफ इन्स्ट्रक्शन, कैम्ब्रीज, मास0 वेल्काप्प प्रेस 176 + x ग पेजेज.
3. ब्रूनर , जे0 एस0 (1971). दी रेलीवेन्स ऑफ एजूकेशन , न्यूयार्कः नार्टन,
4. ब्रूनर , जे0 (1996). दी कल्चर ऑफ एजूकेशन, कैम्ब्रीज, मास0ः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 224 + xvi पेजेज.
5. ब्रूनर , जे0 (1973). गोइंग बियॉन्ड दी इन्फार्मेशन गीवेन, न्यूयार्क: नार्टन.
6. ब्रूनर , जे0 (1983). चाइल्ड्स टॉक: लर्निंग टू यूस लैंग्वेज, न्यूर्याक: नार्टन.
7. ब्रूनर , जे0 (1986). एक्चुअल माइन्ड्स, पॉसिबल वल्ड्स, कैम्ब्रीज, एम एः हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

6.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. संज्ञान' से आप क्या समझते हैं ? संज्ञानात्मक प्रक्रिया के पाँच उदाहरण लिखिए।
2. आप यह कैसे कह सकते है कि संज्ञान में परिवर्तन मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों होता है? उपयुक्त उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए।
3. अधिगम और बौद्धिक विकास में वर्गीकरण कैसे सहायक है?
4. आप मानसिक प्रदर्शन से क्या समझते हैं? सभी तीन प्रकार के मानसिक प्रदर्शनों केलिए उपर्युक्त उदाहरण दीजिए।
5. ज्ञान की क्रियात्मक क्षमता की वृद्धि में खोज अधिगम कैसे सहायक है?
6. क्या आप इस कथन से सहमत है कि "अधिगम प्रक्रिया अनुभवों की पुनर्रचना है"? सोदाहरण व्याख्या कीजिए।
7. सांकेतिक अवस्था (जो केवल सक्रियता एवं प्रतिमा अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात आती है) को प्राप्त करना संज्ञानात्मक विकास का उच्चतम स्तर है, को सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
8. एक शिक्षक या अनुदेशक के रूप में आप ब्रूनर के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त को कैसे प्रयोग कर सकेंगें?

इकाई 7 –सीखना या अधिगम: प्रत्यय , अधिगम के सिद्धांत
Learning : Concept, Theories of Learning

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 अधिगम का अर्थ एवं परिभाषा
7.4 अधिगम के सिद्धान्त
7.5 थॉर्नडाइक का (संबन्धवाद) प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धान्त
7.6 पावलव का शास्त्रीय अनुबन्ध का सिद्धान्त
7.7 स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त
7.8 शास्त्रीय एवं सक्रिय अनुबंधन में अन्तर
7.9 सारांश
7.10 शब्दावली
7.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न
7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.13 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना (Introduction)

सीखना या अधिगम एक बहुत ही व्यापक एवं महत्वपूर्ण शब्द है। मानव के प्रत्येक क्षेत्र में सीखना जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त तक पाया जाता है। दैनिक जीवन में सीखने के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। सीखना मनुष्य की एक जन्मजात प्रकृति है।प्रतिदिन प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में नए अनुभवों को एकत्र करता रहता है, ये नवीन अनुभव, व्यक्ति के व्यवहार में वृद्धि तथा संशोधन करते हैं। इसलिए यह अनुभव तथा इनका उपयोग ही सिखना या अधिगम करना कहलाता है। इस इकाई में आप अधिगम के विभिन्न सिद्धांतों का अध्धयन करेंगे तथा उनके शैक्षिक निहितार्थों को जान पाएंगे।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

1. अधिगम का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगें।

2. अधिगम की परिभाषा दे पाएंगे।
3. अधिगम की विशेषताओं की व्याख्या कर सकेंगें।
4. थॉर्नडाइक के सीखने के सिद्धान्त का वर्णन कर पाएंगे।
5. अधिगम के सिद्धांतों की चर्चा कर पाएंगे।
6. पावलोव के शास्त्रीय अनुबन्धन के सिद्धान्त की व्याख्या कर पाएंगे।
7. स्किनर के क्रिया अनुबंधन के सिद्धान्त का वर्णन कर पाएंगे।
8. विभिन्न सिद्धांतों के शैक्षिक निहितार्थ लिख पाएंगे।

7.3 अधिगम का अर्थ □वं परिभाषा
Meaning and Definition of Learning

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यन्त कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।
सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behaviour) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

वुडवर्थ के अनुसार,"नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया, सीखने की प्रक्रिया है। "

"The process of acquiring new knowledge and new responses in the process of learning." -**Woodworth**

गेट्स एवं अन्य के अनुसार, "अनुभव और प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में परिवर्तन लाना ही अधिगम या सीखना है।"

"Learning is the modification of behavior through experience and training."

क्रो □वं क्रो के अनुसार , "सीखना या अधिगम आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।"

"Learning is the acquisition of habits knowledge and attitudes."

क्रॉनवेक के अनुसार, "सीखना या अधिगम अनुभव के परिणाम स्वरूप व्यवहार में परिवर्तन द्वारा व्यक्त होता है।"

"Learning is shown by a change in behavior as a result of experience."

मॉर्गन और गिलीलैण्ड के अनुसार, "अधिगम या सीखना, अनुभव के परिणाम स्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है, जो कम से कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।"

"Learning is some modification in the behaviour of the organism as a result of experience which is retained for at least certain period of time."

जी.डी. बोआज के अनुसार, "सीखना या अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण अर्जित करता है जो कि सामान्य जीवन की माँगोंकोपूरा करने के लिए आवश्यक है।"

"Learning is the process by which the individual acquires various habits, knowledge and attitudes that are necessary to meet the demand of life in general."

हिलगार्ड के अनुसार,"सीखना या अधिगम एक प्रक्रम है जिससे प्रतिफल परिस्थिति से प्रतिक्रिया के द्वारा कोई क्रिया आरम्भ होती है या परिवर्तित होती है, बशर्ते कि क्रिया में परिवर्तन की विशेषताओं को जन्मजात प्रवृत्तियों,परिपक्वता और प्राणी की अस्थाई अवस्थाओं के आधार पर ना समझाया जा सकता हो।"

"Learning is the process by which an activity originates or is changed through reacting to an encountered situation, provided that the characteristics of the change in activity cannot be explained on the basis of native tendencies, maturation or temporary status of organism."

ब्लेयर,जोन्स और सिम्पसन के अनुसार,"व्यवहार में कोई परिवर्तन जो अनुभवों का परिणाम है और जिसके फलस्वरूप व्यक्ति आने वाली स्थितियों का भिन्न प्रकार से सामनाकरता है- अधिगम कहलाता है।"

"Any change of behaviour which is a result of experience and which causes people to face later situation differently may be called learning." – Blair, Jones and Simpson

सरटैन,नार्थ, स्ट्रेंज तथा चैपमैन के अनुसार के अनुसार:- " सीखना एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा अनुभूति या अभ्यास के फलस्वरूप व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन होता है ।"

Learning may be defined as the process by which a relatively enduring change in behavior occurs as experience or practice".

मार्गन, किंग, विस्ज तथा स्कॉपलर के अनुसार:- "अभ्यास या अनुभूति के परिणामस्वरूप व्यवहार में होने वाले अपेक्षाकृत स्थाई परविर्तन को सीखना कहा जाता है ।"

Learning can be defined as any relatively permanent change in behavior that occurs as a result of experience".

ऊपर की परिभाषाओं एवं अनेक अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई लगभग समान परिभाषाओं का यदि एक संयुक्त (analysis) विश्लेशण किया जाए , तो सीखने का स्वरूप बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है। इस तरह के विश्लेषण करने पर हम निम्नांकित निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :-

(i) **सीखना व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है (Learning is the change in behaviour):-** प्रत्येक सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है । अगर परिस्थिति ऐसी है जिसमें व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन नहीं होता है, तो उसे हम सीखना नहीं कहेंगें। व्यवहार में परिवर्तन एक अच्छा एवं अनुकूली (adaptive) परिवर्तन भी हो सकता है या खराब में कुसमंजित (Maladaptive) परिवर्तन भी हो सकता है।

(ii) **व्यवहार में परिवर्तन अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है (The change in behaviour occurs as a function of practice or experience) :-** सीखने की प्रक्रिया में व्यवहार में जो परिवर्तन होता है, वह अभ्यास या अनुभूति के फलस्वरूप होता है।

(iii) **व्यवहार में अपेक्षाकृतस्थाईपरिवर्तन होता है (There is relatively permanent change in behaviour) :-** ऊपर दी गई परिभाषाओं में इस बात पर विशेष रूप से बल डाला गया है कि सीखने में व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन होता है।

7.4 अधिगम के सिद्धान्त

सीखने के आधुनिक सिद्धांतों को निम्नलिखित दो मुख्य श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है-

a. व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धान्त (Behavioural Associationist Theories)
b. ज्ञानात्मक एवं क्षेत्र संगठनात्मक सिद्धान्त (Cognitive Organisational Theory)

विभिन्न उद्दीपनों के प्रति सीखने वाले की विशेष अनुक्रियाएँ होती हैं। इन उद्दीपनों तथा अनुक्रियाओं के साहचर्य से उसके व्यवहार में जो परिवर्तन आते हैं उनकी व्याख्या करना ही पहले प्रकार के सिद्धांतों का उद्देश्य है। इस प्रकार के सिद्धांतों के प्रमुख प्रवर्तकों में थोर्नडाइक, वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जहाँ थोर्नडाइक द्वारा प्रतिपादित विचार प्रणाली को संयोजनवाद (Connectionism) के नाम से जाना जाता है, वहाँ वाटसन और पैवलोव तथा स्किनर की प्रणाली को अनुबन्धन या प्रतिबद्धता (Conditioning) का नाम दिया गया है।

दूसरे प्रकार के सिद्धान्त सीखने को उस क्षेत्र में, जिसमें सीखने वाला और उसका परिवेश शामिल होता है, आए हुए परिवर्तनों तथा सीखने वाले द्वारा इस क्षेत्र के प्रत्यक्षीकरण किए जाने के रूप में देखते हैं। ये सिद्धान्तसीखने कीप्रक्रियामें उद्देश्य (Purpose), अन्तर्दृष्टि (Insight) और सूझबूझ (Understanding) के महत्व को प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार के सिद्धांतों के मुख्य प्रवर्तकों में वर्देमीअर (Werthemier), कोहलर (Kohler), और लेविन (Lewin) के नाम उल्लेखनीय है।

इस इकाई में आप व्यवहारवादी साहचर्य सिद्धांतों का अध्ययन करेंगे।

7.5 थॉर्नडाइक का (संबन्धवाद) प्रयास □वं त्रुटि का सिद्धान्त

थॉर्नडाइक(Thorndike) को प्रयोगात्मक पशु मनोविज्ञान (experimental psychology) के क्षेत्र में एक प्रमुख मनोवैज्ञानिक माना गया है। उन्होंने सीखने के एक सिद्धान्त का प्रतिपादन (1898) में अपने पीएच0डी0 शोध प्रबन्धन (Ph. D. thesis) जिसका नाम 'एनिमल इन्टेलिजेन्स'(Animal intelligence) था, में किया। टॉलमैन (Tolman, 1938) ने थॉर्नडाइक के इस सिद्धान्त पर टिप्पणी करते हुए कहा है कि उनका यह सिद्धान्त इतना पूर्ण तथा वैज्ञानिक था कि उस समय के अन्य सभी मनोवैज्ञानिकों ने थॉर्नडाइक को अपना प्रारम्भ बिन्दु (starting point) माना था।

थॉर्नडाइक ने सीखने की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया (response) करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध (connection) उसी विशेष उद्दीपक (stimulus) के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना (learning) कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद (Connectionism) की संज्ञा दी गई है। थॉर्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है।

थॉर्नडाइक ने उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि अनेक प्रयोग करके किया है। उनके प्रयोग बिल्ली, कुत्ता, मछली तथा बन्दर पर अधिकतर किए गए हैं। इन सभी प्रयोगों में बिल्ली पर किया गया प्रयोग काफी मशहूर है।

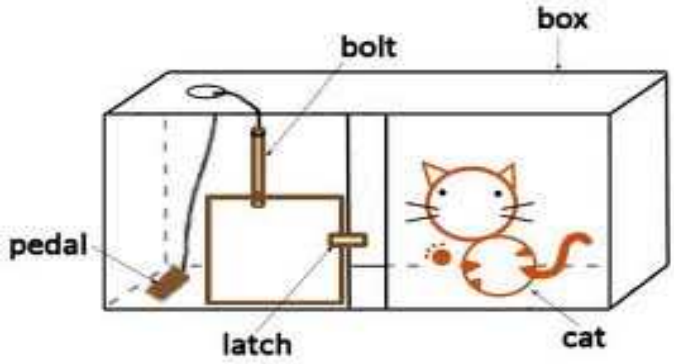

इस प्रयोग में एक भूखीबिल्ली को एक पहेली बॉक्स में बन्द कर के रखा गया। इस बॉक्स के अन्दर एक चिटकिनी (knob) लगी थी, जिसको दबाकर गिरा देने से दरवाजा खुल जाता था। दरवाजे के बाहर भोजन रख दिया गया था। चूँकि बिल्ली भूखी थी, अत: उसने दरवाजा खोलकर भोजन खाने की पूरी कोशिश करनी प्रारंभ कर दी। प्रारंभ के प्रयासों (trials) में जब बिल्ली को बॉक्स के अन्दर रखा गया, तो बहुत सारे अनियमित व्यवहार जैसे उछलना, कूदना, नोचना, खसोटना आदि होते पाए गए। इसी उछल-कूद में अचानक उसका पंजा चिटकिनी पर पड़ गया जिसके दबने से दरवाजा खुल गया और बिल्ली ने बाहर निकलकर भोजन कर लिया। बाद के प्रयासों (trials) में बिल्ली द्वारा किए जाने वाले अनियमित व्यवहार अपने आप कम होते गए तथा बिल्ली सही अनुक्रिया(यानी सिटकिनी दबाकर दरवाजा खोलने अनुक्रिया) को बॉक्स में रखने के तुरन्त बाद करते पाई गई।

थॉर्नडाइक ने सीखने के सिद्धान्त में तीन महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है जो निम्नांकित है:-

1. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
2. तत्परता का नियम (Law of readiness)
3. प्रभाव का नियम (Law of effect)

इन सभी का वर्णन निम्नांकित है:-

1. **अभ्यास का नियम (Law of exercise) :-** यह नियम इस तथ्य पर आधारित है कि अभ्यास से व्यक्ति में पूर्णता आती है (Practice makes man perfect) । हिलगार्ड तथा बॉअर (Hilgard & Bower, 1975) ने इस नियम को परिभाषित करते हुए कहा है "अभ्यास नियम यह बतलाता है कि अभ्यास करने से (उद्दीपक तथा अनुक्रिया का) संबंध मजबूत होता है (उपयोग नियम) तथा अभ्यास रोक देने से संबंध कमजोर पड़ जाता है या विस्मरण हो जाता है (अनुपयोग नियम)" इस व्याख्या से बिलकुल ही यह स्पष्ट है कि जब हम किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराते है तो उसे सीख जाते हैं। इसे थॉर्नडाइक ने उपयोग का नियम (law of use) कहा है। दूसरी तरफ जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बन्द कर देते हैं तो उसे भूल जाते हैं। इसे इन्होंने अनुपयोग का नियम (law of disuse) कहा है।
2. **तत्परता का नियम (Law of readiness) :-** इस नियम को थॉर्नडाइक ने एक गौण नियम माना है और कहा है कि इस नियम द्वारा हमें सिर्फ यह पता चलता है कि सीखने वाले व्यक्ति किन-किन परिस्थितियों में संतुष्ट होते हैं या उसमें खीझ उत्पन्न होती है। उन्होंने इस तरह की निम्नांकित तीन परिस्थितियों का वर्णन किया है-
   i. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है और उसे वह कार्य करने दिया जाता है, तो इससे उसमें संतोष होता है।
   ii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर रहता है परन्तु उसे वह कार्य नहीं करने दिया जाता है, तो इससे उसमें खीझ (annoyance) होती है।

iii. जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तत्पर नहीं रहता है परन्तु उसे वह कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है, तो इससे भी व्यक्ति में खीझ (annoyance) होती है।

ऊपर के वर्णन से यह स्पष्ट है कि संतोष या खीझ होना व्यक्ति के तत्परता (readiness) की अवस्था पर निर्भर करता है।

3. **प्रभाव का नियम (Law of effect):-** थॉर्नडाइक के सिद्धान्त का यह सबसे महत्वपूर्ण नियम है। इसकी महत्ता को ध्यान में रखते हुए कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इसके सिद्धान्त को प्रभाव नियम सिद्धान्त (Law of effect theory) भी कहा है। इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया या कार्य को उसके प्रभाव के आधार पर सीखता है। किसी कार्य या अनुक्रिया का प्रभाव व्यक्ति में या तो संतोषजनक (satisfying) होता है या खीझ उत्पन्न करने वाला (annoying) होता है।प्रभाव संतोषजनक होने पर व्यक्ति उस अनुक्रिया को सीख लेता है तथा खीझ उत्पन्न करने वाला होने पर व्यक्ति उसी अनुक्रिया को दोहराना नहीं चाहता है। फलत: उसे वह भूल जाता है।

इस प्रकार से यह स्पष्ट है कि प्रभाव नियम के अनुसार व्यक्ति किसी अनुक्रिया को इसलिए सीख लेता है क्योंकि व्यक्ति में उस अनुक्रिया को करने के बाद संतोषजनक प्रभाव (satisfying effect) होता है।

इन प्रमुख नियमों के अलावा भी थॉर्नडाइक ने सहायक नियमों (subordinate laws) का भी प्रतिपादन किया परन्तु ये सभी नियम बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो पाए क्योंकि वे स्पष्ट रूप से प्रमुख नियमों से ही संबंधित थे। संक्षेप में इन सहायक नियमों का वर्णन इस प्रकार है:-

i. **बहुक्रिया (Multiple response):-** इस नियम के अनुसार किसी भी सीखने की परिस्थिति में प्राणी अनेक अनुक्रिया (response) करता है जिसमें से प्राणी उन अनुक्रिया को सीख लेता है जिससे उसे सफलता मिलती है।

ii. **तत्परता या मनोवृत्ति (Set or attitude):-** तत्परता या मनोवृत्ति से इस बात का निर्धारण होता है कि प्राणी किस अनुक्रिया को करेगा, किस अनुक्रिया को करने से कम संतुष्टि तथा किस अनुक्रिया को करने से अधिक संतुष्टि आदि मिलेगी।

iii. **सादृश्य अनुक्रिया (Response by similarity or analogy):-** इस नियम के अनुसार प्राणी किसी नई परिस्थिति में वैसी ही अनुक्रिया को करता है जो उसके गत अनुभव या पहले सीखी गई अनुक्रिया के सदृश होता है।

iv. **साहचर्यात्मक स्थानान्तरण (Associative shifting):-** इन नियम के अनुसार कोई अनुक्रिया जिसके करने की क्षमता व्यक्ति में है, एक नए उद्दीपक (stimulus) से भी उत्पन्न हो सकती है। यदि एक ही अनुक्रिया को लगातार एक ही परिस्थिति में कुछ परिवर्तन के बीच उत्पन्न किया जाता है तो अन्त में वही अनुक्रिया एक बिल्कुल ही नए उद्दीपक से भी उत्पन्न हो जाती है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. सामान्य अर्थ में 'सीखना' _____ में परिवर्तन को कहा जाता है।
2. थॉर्नडाइक के सीखने के सिद्धांत को _____के नाम से जाना जाता है।
3. थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियमों के नाम लिखिए।
4. थॉर्नडाइक ने सीखने के सहायक नियमों के नाम लिखिए।
5. जब हम किसी पाठ या विषय को बार-बार दुहराते है तो उसे सीख जाते हैं, इसे थॉर्नडाइक ने _____कहा है।
6. जब हम किसी पाठ या विषय को दोहराना बन्द कर देते हैं तो उसे भूल जाते हैं, इसे थॉर्नडाइक ने _____कहा है।

अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना में अनुबंधन पर अत्यधिक प्रायोगिक कार्य हुए हैं। अनुबंधन को ऐसे साहचर्यात्मक या अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें नवीन प्रकार के उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों का निर्माण करना सीखा जाता है। (Conditioning is the process by which conditioned response are learned-Hilgard et.al., 1975)

7.6 पवलव का शास्त्रीय अनुबन्धन का सिद्धान्त (Classical or Pavlovian Conditioning)

आई0पी0 पवलव (I.P. Pavlov) एक रूसी शरीर- वैज्ञानिक (Physiologist) थे जिन्होंने अपनी जीवन-वृत्ति (career) हृदय के कार्यों केअध्ययन से शुरू की परन्तु बाद में उन्होंने पाचन क्रिया (digestion) के दैहिकी (physiology) का विशेष रूप से अध्ययन करना प्रारम्भ किया और उनका यह अध्ययन इतना महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय हुआ कि 1904 में इसके लिए उन्हें नोबल पुरस्कार (Nobel Prize) भी दिया गया। बिल्कुल ही संयोग से (incidentally) पवलवने इन अध्ययनों के दौरान लारमय अनुबन्धन (salivary conditioning) की घटना (phenomenon) का अध्ययन किया और इससे संबंधित सीखने के एक सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया जिसे अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त (conditioned response theory) कहा जाता है।

पवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन (conditioning) को माना है। पवलवके सीखनेके इसअनुबन्धन सिद्धान्त को शास्त्रीय अनुबन्धन सिद्धान्त (classical conditioning theory) या प्रतिवादी अनुबन्धन सिद्धान्त (Respondent conditioning theory) या टाइप- एस (Type- S) अनुबन्धन भी कहा जाता है। इसे क्लासिकल अनुबंधन इसलिए कहा जाता है क्योंकि पवलव ने ही अधिगम का क्लासिक प्रयोगशाला अध्ययन किया था।

क्लासिकल अनुबन्धन में प्रतिमान की शुरूआत एक उद्दीपक (stimulus) तथा इससे उत्पन्न अनुक्रिया के बीच के संबंध से होता है। पवलवके अनुसार जब कोई स्वाभाविक एवं उपर्युक्त उद्दीपक को जीव के सामने उपस्थित किया जाता है तो वह उसके प्रति एक स्वाभाविक अनुक्रिया (natural response) करता है। जैसे गर्म बर्तन को छूते ही हाथ खींच लेना तथा भूखा होने पर भोजन देखकर मुँह में लार आना, कुछ ऐसी अनुक्रियाओं (responses) के उदाहरण है। जब इस स्वाभाविक एवं उपयुक्त उद्दीपक के ठीक कुछ सेकेण्ड पहले एक दूसरा तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) बार-बार उपस्थित किया जाता है तो कुछ प्रयास (trials) के बाद उस तटस्थ उद्दीपक द्वारा ही स्वभाविक अनुक्रिया (लार आना या हाथ खींच लेना जो सिर्फ स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति होती थी) उत्पन्न होने लगती है। जैसे एक भूखे व्यक्ति के सामने घंटी बजाकर बार-बार भोजन दें तो कुछ प्रयासों के बाद मात्र घंटी बजते ही उस व्यक्ति के मुँह में लार आना प्रारंभ हो जाएगा। पवलव के तटस्थ उद्दीपक (घंटी) तथा स्वाभाविक अनुक्रिया (लार आना) के बीच स्थापित इस नए साहचर्य को सीखने की संज्ञा दिया है।

पवलव का यह निष्कर्ष कि यदि तटस्थ उद्दीपक (neutral stimulus) को किसी उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्दीपक (natural stimulus) के साथ बार-बार दिया जाता है तो तटस्थ उद्दीपक के प्रति व्यक्ति वैसी ही अनुक्रिया (responses) करना सीख लेता है जैसा कि वह उपयुक्त एवं स्वाभाविक उद्दीपक के प्रति करता है। यह निष्कर्ष एक प्रयोग पर आधारित है।

पवलव का प्रयोग

संक्षेप में प्रयोग इस प्रकार था – एक भूखे कुत्ते को एक ध्वनि- नियंत्रित प्रयोगशाला में एक विशेष उपकरण के सहारे खड़ा कर दिया गया। कुत्ते के सामने भोजन लाया जाता था और चूंकि कुत्ता भूखा था इसलिए भोजन देखकर उसके मुँह में लार आ जाती थी। कुछ प्रयासों (trials) के बाद भोजन देने के 4 या 5 सेकेण्ड अर्थात400 या 500 मिलीसेकेण्ड पहले एक घंटी बजाई जाती थी। यह प्रक्रिया कुछ दिनों तक दोहरायी गई तो यह देखा गया कि बिना भोजन आए ही मात्र घंटी की आवज पर कुत्ते के मुँह से लार निकलना शुरू हो गया। पवलव के अनुसार कुत्ता घंटी की आवज पर लार के स्राव करने की क्रिया को सीख लिया है। उनके अनुसार घंटी की आवाज (उद्दीपक) तथा लार के स्राव (अनुक्रिया) के बीच एक साहचर्य (association) कायम हो गया जिसे अनुबन्धन (conditioning) की संज्ञा दी गई।

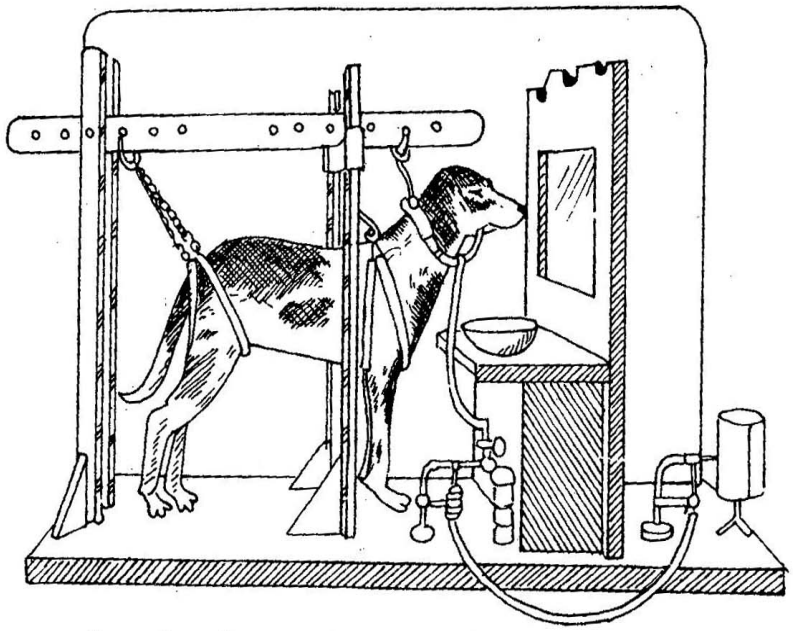

चित्र —प्राचीन या पैवलावियन अनुबंधन का प्रायोगिक प्रारूप : पैवलाव (1927) पर आधारित

स्वाभाविक उद्दीपक (Unconditioned stimulus: UCS)

स्वाभाविक उद्दीपक वैसे उद्दीपक को कहा जाता है जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण (training) के ही प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है। जैसे, पवलव के प्रयोग में भोजन एक स्वाभाविक उद्दीपक (UCS) है जो लार स्राव करने की अनुक्रिया बिना किसी प्रशिक्षण का ही करता है।

स्वाभाविक अनुक्रिया (Unconditioned response: UCR

स्वाभाविक अनुक्रिया वैसी अनुक्रिया को कहा जाता है जो स्वाभाविक उद्दीपक द्वारा उत्पन्न किया जाता है। जैसे, पवलव के प्रयोग में भोजन देखकर कुत्ते के मुँह में लार का स्राव का होना एक स्वाभाविक अनुक्रिया है।

अनुबन्धित उद्दीपक (Conditioned stimulus):

CS:अनुबन्धित उद्दीपक वैसे उद्दीपक को कहा जाता है जिसे यदि स्वाभाविक उद्दीपक के साथ या उससे कुछ सेकेण्ड पहले लगातार कुछ प्रयासों (trials) तक दिया जाता है, तो वह उद्दीपक स्वाभाविक उद्दीपक के समान ही अनुक्रिया उत्पन्न करना प्रारंभ कर देता है। किसी भी उद्दीपक को अनुबन्धित उद्दीपक कहलाने के लिए यह आवश्यक है कि वह प्राणी की ज्ञानेन्द्रियों के पहुँच के भीतर हो, यानी जिसे देखा जा

सके, सुना जा सके, स्पर्श किया जा सके। पवलवके प्रयोग में घंटी की आवाज एक अनुबन्धित उद्दीपक (conditioned stimulus) का उदाहरण है।

अनुबन्धित अनुक्रिया (Conditioned response: CR)

जब अनुबन्धित उद्दीपक (CS) स्वाभाविक उद्दीपक (Unconditioned Stimulus) के साथ संयोजित (paired) किया जाता है तो कुछ प्रयायों के बाद अनुबंधित उद्दीपक (CS) के प्रति प्राणी ठीक वैसी ही अनुक्रिया करता है जैसा कि वह स्वाभाविक उद्दीपक (UCS) के प्रति करता था। इस तरह की अनुक्रिया को अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned response) कहा जाता है। पवलव के प्रयोग में (बिना भोजन देखे ही) घंटी की आवाज सुनने पर जो लार के स्राव की अनुक्रिया होती थी, वह अनुबन्धित अनुक्रिया (conditioned response) का उदाहरण है।

उद्दीपक सामान्यीकरण (Stimulus generalization)

सीखने के प्रारंभ के प्रयासों (trials) में ऐसा देखा गया है कि सिर्फ मूल अनुबंधित उद्दीपक (original conditioned stimulus) के प्रति ही प्राणी अनुक्रिया नहीं करता है बल्कि उससे मिलते-जुलते अन्य उद्दीपकों के प्रति भी उसी ढंग से अनुक्रिया करता है। इसे ही उद्दीपक सामान्यीकरण की संज्ञा दी जाती है। हाउस्टन (Houston, 1976) ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है, "उद्दीपक सामान्यीकरण की घटना में किसी एक उद्दीपक के प्रति अनुबंधित अनुक्रिया उसी तरह के दूसरे उद्दीपकों से भी उत्पन्न होने लगती है"। एक उदाहरण लिया जाए- मान लिया जाए कि किसी प्रयोग में कुत्ते में 1000 Hertz tone or Hz (हर्जटोन) की आवाज पर भोजन देकर लार स्राव की अनुक्रिया को अनुबंधित (conditioned) किया जाता है। यह 1000 Hz की आवाज मूल अनुबंधित उद्दीपक (original conditioned stimulus)का उदाहरण है। इस तरह के अनुबन्धन (conditioning) के दौरान यदि कुत्ते के सामने 1200 Hz, 1100 Hz, 900 Hz, तथा 800 Hz की आवाज दिया जाए तो कुत्ते में पहले के समान ही जार स्राव की अनुक्रिया होगी। इसे ही उद्दीपक सामान्यीकरण (stimulus generalization) की संज्ञा दी जाती

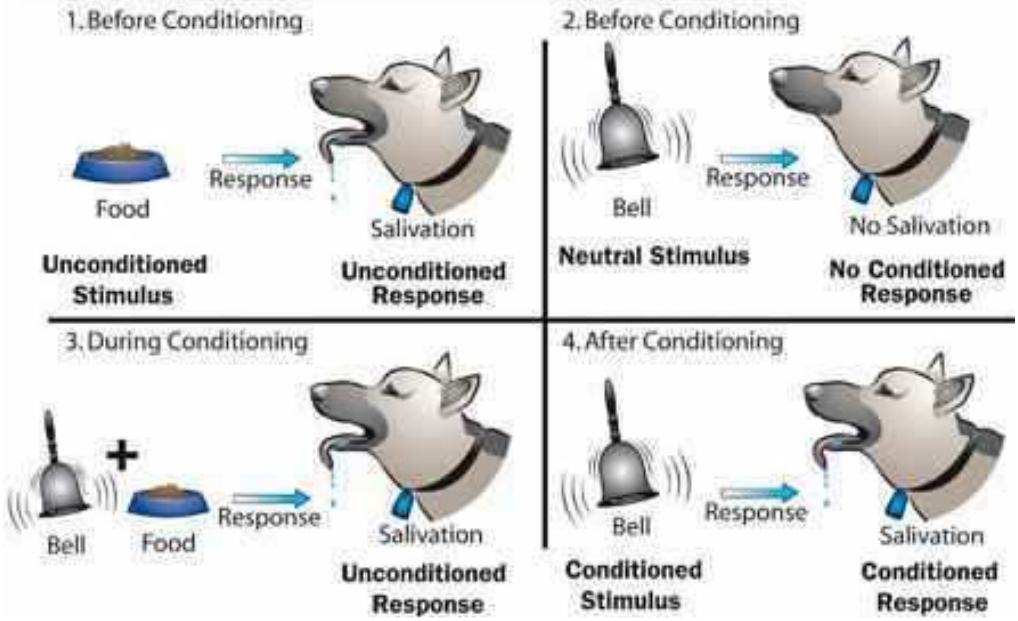

विभेदन (Discrimination)

विभेदन की घटना उद्दीपक सामान्यीकरण (stimulus generalization) के ठीक विपरित घटना है। जैसे-जैसे सीखने के लिए दिए जाने वाले प्रयासों (trial) की संख्या बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे प्राणी मूल अनुबंधित उद्दीपक (original conditioned stimulus) तथा अन्य समान उद्दीपकों (similar stimuli) के बीच स्पष्ट अन्तर या विभेद कर लेता है। इसके परिणाम स्वरूप प्राणी सिर्फ मूल अनुबंधित उद्दीपक के प्रति ही अनुक्रिया करता है, अन्य समान उद्दीपकों के प्रति अनुक्रिया नहीं करता है। इसे ही विभेदन (discrimination) की संज्ञा दी जाती है।

विलोपन, स्वत: पुनर्लाभ, बाह्य अवरोध निवारण तथा पुनर्अनुबन्धन Extinction, Spontaneous recovery, External disinhibition and Reconditioning)-

पवलवने अपने प्रयोग में पाया कि प्राणी (organism) में अनुबन्धन (conditioning) उत्पन्न होने के बाद जब सिर्फ CS (घंटी) दिया जाता है और UCS (भोजन) नहीं दिया जाता है और इस प्रक्रिया को लगातार कई प्रयासों (trials) तक दोहराया जाता है तो धीरे-धीरे सीखी गई अनुक्रिया की शक्ति कम होने लगती है। दूसरे शब्दों में कुत्ता धीरे-धीरे घंटी की आवाज पर लार का स्राव कम करते जाता है। अन्त में, एक ऐसा भी प्रयास (trials) आता है जहाँ घंटी बजती है परन्तु लार का स्राव बिलकुल ही नहीं होता है। पवलव ने इस तरह की घटनाको विलोपन (extinction) की संज्ञा दी है।

विलोपन से ही संबंधित एक दूसरी घटना है जिस पर भी मनोवैज्ञानिकों ने अधिक बल डाला है और वह है स्वत: पुनर्लाभ (spontaneous recovery) की घटना। पवलव तथा उनके शिष्यों ने अपने प्रयोगात्मक

अध्ययनों में पाया है कि जब किसी सीखी गई अनुक्रिया का आंशिक रूप से विलोपन (partial extinction) हो जाता है और उसके कुछ समय बीतने के बाद यदि पुन: CS (घंटी) दिया जाता है, तो प्राणी (कुत्ता) फिर से CR (लार का स्राव) करते पाया जाता है हालांकि ऐसी परिस्थिति में किए गए लार स्राव की मात्रा पहले के जैसे अधिक नहीं होती है। इस तरह से स्वत: पुनर्लाभ में हम पाते हैं कि विलोपन के कुछ समय के बाद CS देने पर विलोपित CR अपने आप पुन: प्राणी द्वारा किया जाता है।

पुनर्बलन (Reinforcement)

पैवलोवियन अनुबन्धन में पुनर्बलन का एक महत्वपूर्ण स्थान है। पवलवके प्रयोग में भोजन एक प्रकार का पुनर्बलन है जो कुत्ते को लार स्राव (salivation) की अनुक्रिया करने के लिए प्रेरित करता है। सचमुच में भोजन यहाँ एक मुख्य पुनर्बलन (primary reinforcement) का उदाहरण है।

कुछ मनोवैज्ञानिकों द्वारा क्लासिकी अनुबंधन की आलोचना निम्नांकित कारकों (factors) के आधार पर की गई है। प्रमुख आलोचनाएँ निम्नांकित हैं :-

1. पवलव एक उद्दीपक अनुक्रिया पुनर्बलन सिद्धान्तवादी (stimulus- response reinforcement theorist) है। अत: इनके अनुसार सीखने के लिए अर्थात उद्दीपक एवं अनुक्रिया में संबंध स्थापित करने के लिए पुनर्बलन (Reinforcement) का होना अनिवार्य है। अत: टालमैन, हॉनजिक एवं ब्लौजेंट आदि मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि सीखने के लिए पुनर्बलन (Reinforcement) की आवश्यकता नहीं होती है।

2. पवलव के सिद्धान्त पर ध्यान देने से यह स्पष्ट हो जाता है कि सीखने की प्रक्रिया में पुनरावृत्ति (repetition) का महत्व अधिक है। पवलवके प्रयोग में एक तटस्थ उद्दीपक (घंटी) तथा स्वाभाविक उद्दीपक (भोजन) को साथ-साथ कई बार दुहराने के बाद ही कुत्ते घंटी की आवाज पर लार स्राव करने की अनुक्रिया को सीखा था। परन्तु अक्सर यह देखा गया है कि व्यक्ति के कुछ पल ऐसे भी होते हैं जहाँ वह मात्र एक ही बार की अनुभूति में सीख लेता है।

3. कुछ मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि पवलव के सिद्धान्त में प्राणी को एक ऐसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में रखा जाता है जहाँ वह पूर्णरूपेण निष्क्रिय (passive) होता है। पवलव काकुत्ता एक ऐसे उपकरण के सहारे बंधा होता है जिसमें उसे एक निष्क्रिय भूमिका करनी होती है। अगर प्रयोगात्मक परिस्थिति ऐसी होती जिसमें प्राणी सक्रिय होकर घूम-फिर सकता है (जैसा कि स्किनर-बाक्स में होता है), तो वैसी परिस्थिति में सीखने की व्याख्या इतनी यांत्रिक (mechanical) नहीं होती जितनी की पवलव ने अपने सिद्धान्त में किया है।

4. कुछ आलोचकों का मत है कि पवलव द्वारा प्रतिपादित सीखना एक अस्थाई तथा आंशिक रूप से प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन करता है। कुत्ता घंटी की आवाज पर तभी तक लार स्राव करता था जब

तक घंटी की आवाज के बाद उसे भोजन दिया जाता है। जब भोजन दिया जाना बन्द कर दिया गया तो कुत्ते में भी लार स्राव की अनुक्रिया धीरे-धीरे लुप्त हो गई। इतना ही नहीं, पवलव के सिद्धान्त के अनुसार किसी अनुक्रिया को सिखाने के लिए एक विशेष प्रकार की प्रयोगात्मक परिस्थिति का होना अनिवार्य है जो हमेशा संभव नहीं भी हो सकता है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी पवलवका सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है और अन्य दूसरे मनोवैज्ञानिकों ने अपने-अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय इनके तथ्यों एवं संप्रत्ययों (concepts) से प्रेरणा ली है।

उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त के अनुसार सीखने की प्रक्रिया में प्राणी उद्दीपक (या समस्या) तथा अनुक्रिया (response) के बीच एक संबंध (connection) स्थापित करता है। कुछ ऐसे सिद्धान्तवादियों का मत है कि उद्दीपक तथा अनुक्रिया के बीच में जो संबंध स्थापित होता है, उसका आधार पुनर्बलन (reinforce) होता है। जब सही अनुक्रिया करने के बाद प्राणी को पुनर्बलन दिया जाता है, तो इसका प्रभाव (effect) यह होता है कि भविष्य में प्राणी उस उद्दीपक के सामने आने पर वही अनुक्रिया करता है। यही कारण है कि इस सिद्धांतको उद्दीपक-अनुक्रिया प्रभाव सिद्धान्त (stimulus-response effect theories) या पुनर्बलन सिद्धान्त (reinforcement theory) भी कहा जाता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. आई0पी0 पवलव (I.P. Pavlov) एक रूसी _____ थे।
8. पवलव द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत को _____कहा जाता है।
9. पवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार_____ को माना है
10. वह उद्दीपक जो बिना किसी पूर्व प्रशिक्षण के ही प्राणी में अनुक्रिया उत्पन्न करता है _____कहा जाता है।

7.7 क्रियाप्रसूत अनुबन्धन का सिद्धान्त (Operant Conditioning Theory of Skinner) या नैमित्तिक अनुबंधन (Instrumental Conditioning)

स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त नैमित्तिक अनुबंधन, सक्रिय अनुबन्धन या क्रिया प्रसूत अनुबन्धन भी कहा जाता है। यह प्राचीन अनुबंधन की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है। प्राचीन अनुबंधन में वांछित व्यवहार उत्पन्न करने के लिए सम्बन्धित उद्दीपक पहले प्रदर्शित किया जाता है। इसके विपरीत सक्रिय अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त

करने या कष्टदायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करनी होती है। अर्थात उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है। इसी कारण इसे नैमित्तिक अनुबंधन कहते हैं (Hulse et. al. 1975)। इसी आधार पर इसे संक्रियात्मक या क्रियाप्रसूत अधिगम (Operant learning) भी कहा जाता है (Hilgard and Bower, 1981)। पोस्टमैन एवं इगन (1967) ने भी लिखा है कि नैमित्तिक अनुबंधन में धनात्मक पुनर्बलन (S+) का प्राप्त होना या नकारात्मक पुनर्बलन (S-) से बचना इस बात पर निर्भर करता है कि किसी अधिगम परिस्थिति में प्रयोज्य कैसा व्यवहार (उचित/अनुचित) करता है।

स्किनर का प्रयोग

चूहों पर प्रयोग करने के लिए उन्होंने एक विशेष बक्से के आकार का एक यंत्र बनाया जिसे उन्होंनेक्रियाप्रसूत अनुबन्धन कक्ष की संज्ञा दी, लेकिन बाद में इसको स्किनर बाक्स (Skinner Box) कहा गया। वास्तव में थॉर्नडाइक के द्वारा प्रयुक्त पहेली पिंजरा (Rezze Box) का एक सुधरा और विकसित रूप था। स्किनर बक्से के अन्दर जालीदार फर्श (Grid floor) प्रकाशव ध्वनि व्यवस्था (Light and Sound Arrangement) लीवर (Lever) तथा भोजन तश्तरी (Food Cup) होता है।

स्किनर के लीवरबाक्स में लीवर को दबाने पर प्रकाश या किसी विशेष आवाज होने के साथ-साथ भोजन-तश्तरी में थोड़ा-सा भोजन आ जाता है। प्रयोग के अवलोकनों को लिपिबद्ध करने के लिए लीवरका सम्बन्ध एक ऐसी लेखन व्यवस्था (Recoding System) में रहता है जो प्रयोगकेबीच में समय के साथ-साथ लीवर दबाने की आवृत्ति की संचयी ग्राफ (Cumulative Graph) के रूप में अंकित करती रहती है।

प्रयोग हेतु स्किनर ने एक भूखे चूहे को स्किनर बाक्स में बन्द कर दिया। प्रारम्भ में चूहाबाक्स में इधर-उधर घूमता रहा तथा उछल-कूद करता रहा । इसी बीच में लीवर दब गया, घण्टी की आवाज हूई और खाना तश्तरी में आ गया। चूहा तुरन्त भोजन को नहीं देख पाता है लेकिन बाद में देखकर खा लेताहै। इसी तरह कई प्रयासों के उपरान्त वह लीवर दबाकर भोजन गिराना सीख जाता है। इस प्रयोग में चूहा लीवर दबाने के लिए स्वतन्त्र होता है वह जितनी बार लीवर दबाएगा घण्टी की आवज होगी और भोजन तश्तरी में गिर जाएगा। स्किनर ने भोजन प्राप्त करने के बाद से समय अन्तराल में लीवर दबाने के चूहे के व्यवहार का विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाला कि भोजन रूपी पुनर्वलन (Reinforcement) चूहे को लीवर दबाने के लिए प्रेरित करता है एवं पुनर्बलन के फलस्वरूप चूहा लीवर दबाकर भोजन प्राप्त करना सीख जाता है। अर्थात क्रिया प्रसूत (Operant Response) के बाद पुनर्बलित उद्दीपक (Reinforcement Stimulus) दिया जाता है तो प्राणी उसे बार-बार दोहराता है और इस प्रकार से मिले पुनर्बलन से सीखने में स्थायित्व आ जाता है।

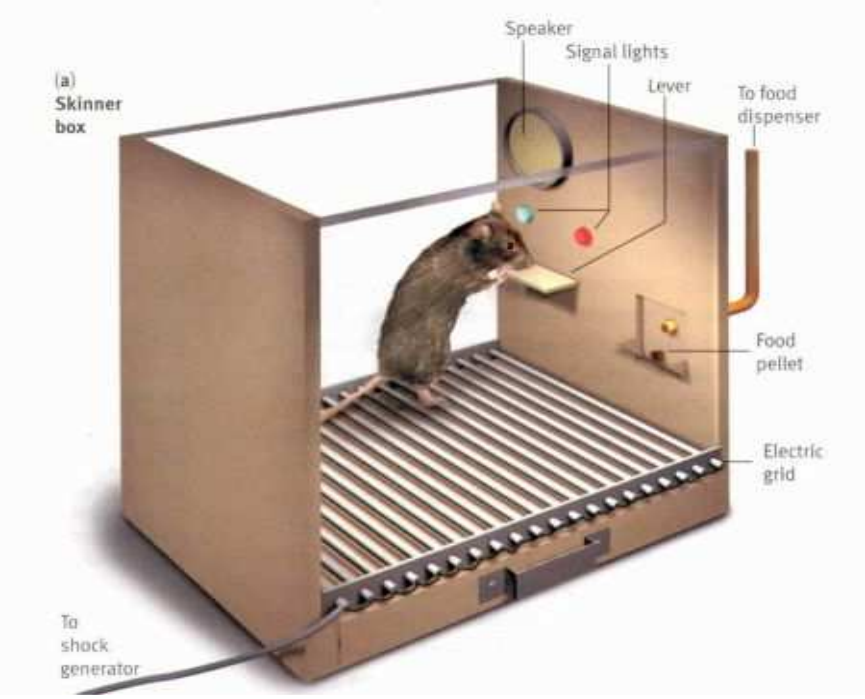

सक्रिय अनुबंधन में पुनर्बलन (Reinforcement in Operant Conditioning)

नैमित्तिक अनुबंधन, सक्रिय अनुबंधन या संक्रियात्मक अनुबंधन में पुनर्बलन की विशेष भूमिका होती है। जैसे-उचित या सही व्यवहार (अनुक्रिया)किएजाने पर धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement) की आपूर्ति की जाती है या अनुचित व्यवहार किए जाने पर नकारात्मक पुनर्बलन(दण्ड) का उपयोग किया जाता है ताकि उसकी पुनरावृत्ति न हो सके। प्रबलनों को चार वर्गों में विभक्त कर सकते हैं –

1. **धनात्मक पुनर्बलन (Positive Reinforcement)** - कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है। जैसे-अच्छे अंक प्राप्त करना। यह सम्बन्धित व्यवहार के प्रदर्शन की संभावना में वृद्धि करता है।
2. **नकारात्मक पुनर्बलन (Negative Reinforcement)** - किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे उचित व्यवहार के घटित होने की संभावना बढ़ती है। जैसे-शरारत कर रहे किसी बच्चे को तब जाने देना जब वह नोक-झोंक बन्द कर दे।

3. **धनात्मक दण्ड (Positive Punishment)** - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना। जैसे-परीक्षा में कम अंक प्राप्त करने पर छात्रा की प्रशंसा न करना या निन्दा करना। इससे अनुचित व्यवहार की पुनरावृत्ति की संभावना घटती है।
4. **नकारात्मक दण्ड (Negative Punishment)** - किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना। इससे अनुचित व्यवहार की संभावना घटती है। जैसे-उदण्ड व्यवहार कर रहे बालक को टीवी देखने से रोक देना।

पुनर्बलन अनुसूची (Schedule of Reinforcement) -

पुनर्बलन की आपूर्ति कई रूपों में की जा सकती है।

1. **स्थिर अनुपात सूची (FixedRatioSchedule) -** निश्चित संख्या में अनुक्रिया करने पर पुरस्कार देना।
2. **परिवर्तनीय अनुपात अनुसूची (VariableRatioSchedule)** - भिन्न-भिन्न संख्या में अनुक्रियाएँ करने पर पुरस्कार देना।
3. **स्थिर अन्तराल अनुसूची (FixedIntervalSchedule) -** एक निश्चित अन्तराल पर पुरस्कार की आपूर्ति करना।
4. **परिवर्तनीय अन्तराल अनुसूची (VariableIntervalSchedule)** - भिन्न-भिन्न अन्तरालों पर पुनर्बलन या पुरस्कार की आपूर्ति करना।

प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधन की प्रक्रियाओं/ में कुछ विशेष प्रकार की घटनाएँ प्राप्त होती हैं। इन्हें अनुबंधन के गोचर कहा जाता हैं।

1. **विलोप (Extinction) -** विलोप का आशय किसी सीखी हुई अनुक्रिया को समाप्त या बन्द करने से है। प्रयोगों में यह देखा गया है कि यदि प्रयोज्यों द्वारा अनुबंधित उद्दीपकों (CS) के प्रति अनुक्रिया (CR) करने पर पुनर्बलन न दिया जाए तो इससे अनुक्रिया की मात्रा में कमी आती है और यदि ऐसे प्रयास की पुनरावृत्ति की जाती रहे तो अनुक्रिया की मात्रा क्रमशः घटती जाती है और एक अवस्था ऐसी आती है जबकि प्रयोज्य अनुक्रिया प्रदर्शित करना बन्द कर देता है। इसी गोचर को विलोप का नाम दिया जाता है (Pavlov, 1927; Skinner, 1938)। इससे स्पष्ट है कि अनुबंधित अनुक्रिया करने पर पुनर्बलन या पुनर्बलन से वंचित करने पर इसका अनुक्रिया के प्रदर्शन की संभावना पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रसंग में कुछ निष्कर्ष भी प्राप्त हुए हैं:-
   a. यदि विलोप की प्रक्रिया न प्रयुक्त की जाए तो अनुबंधितअनुक्रिया का प्रदर्शन दीर्घ अन्तरालों पर भी होता है। अर्थात मात्रा, समय व्यतीत होने से अनुक्रिया में ह्रास कम होता है (Hilgard and Humphreys, 1938; Wundt, /1937; Razarn, 1939; Skinner,1950)।

b. यदि अनुबंधित अनुक्रिया का अत्यधिक प्रशिक्षण किया गया है तो विलोप विलम्ब से होता (Elson, 1938; Osgood, 1953) है।
c. यदि विलोप के समय प्रयासों के बीच मध्यान्तर (Interval) दीर्घ रहा है तो विलोप सरलता से नहीं होगा (रिनाल्ड्स, 1945 ; रोहट, 1947)।
d. प्रारम्भ में विलोप की गति अधिक और बाद में मन्द हो जाती है (Osgood,1953)।
e. जिन अनुक्रियाओं को सीखने में परिश्रम अधिक लगता है उनका विलोप शीघ्र होता है (केपहार्ट आदि, 1958)।
f. सतत पुनर्बलन की अपेक्षा आंशिक पुनर्बलन की दशा में सीखी गई अनुक्रिया का विलोप विलम्ब से होता है (हम्फ्रीज, 1939)।
g. वितरित विधि से सीखी गई अनुक्रिया का विलोप विलम्ब से होता है (रिनाल्ड्स, 1954)।
h. अवसादी (Depressive) - दवाओं के प्रयोगों में यह भी देखा गया है कि उत्तेजक दवाओं के उपयोग से विलोप विलम्ब से होता है (स्किनर, 1935)।

2. **स्वतः पुनरावर्तन (Spontaneous Recovery) -**अनुबंधन के प्रयोगों में यह भी देखा गया है कि यदि विलोप की प्रक्रिया पूरी होने के कुछ समय बाद अनुबंधित उद्दीपक पुनः प्रस्तुत किया जाए तो अनुबंधित अनुक्रिया (CR) की कुछ न कुछ मात्रा प्रदर्शित होती है। इससे स्पष्ट है कि अनुक्रिया के पुनः प्रदर्शित होने में केवल विश्राम कारक का महत्व है। इस गोचर को स्वतः पुनरावर्तन कहते है (देखिए चित्रा 7.14)। पवलव (1927) एवं एलसन (1938) ने क्रमशः प्राचीन एवं नैमित्तिक अनुबंधनों में स्वतः पुनरावर्तन गोचर प्राप्त किया है। इस प्रसंग में भी कुछ निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -
   a. स्वतः पुनरावर्तन से प्राप्त अनुक्रिया की मात्रा कभी भी शत प्रतिशत नहीं होती है।
   b. यदि मध्यान्तर (विश्राम) दीर्घ रखा जाए तो अनुक्रिया की मात्रा अपेक्षाकृतअधिक प्राप्त होती है।
   c. स्वतः पुनरावर्तन विश्राम का परिणाम है।
   d. स्वतः पुनरावर्तन का सम्बन्ध विलोप से है।
3. **अवरोध (Inhibition) -**जिन कारकों का अनुबंधन पर बाधक प्रभाव पड़ता है उन्हें अवरोध का नाम दिया जाता है। अवरोध प्रभाव अनेक प्रकार के हो सकते हैं। यथा, बाह्य अवरोध - यदि अधिगम के समय अप्रासंगिक कारक सक्रिय होकर अधिगम को अवरोधित करते हैं तो उन्हें बाह्य अवरोध कहा जाता है (जैसे, शोर का बाधक प्रभाव)। पवलव ने यह निष्कर्ष भी दिया है कि लार स्राव के समय उनकी उपस्थिति का अनुक्रिया पर अवरोधक प्रभाव पड़ता था। इसके अतिरिक्त विलम्ब का अवरोध भी पाया जाता है। ऐसा पाया गया है कि अनुबंधित उद्दीपक के प्रदर्शन के समय पर अनुक्रिया की मात्रा पूरी प्राप्त नहीं होती है परन्तु जैसे-जैसे अनानुबंधित उद्दीपक के प्रस्तुत होने का समय समीप आता जाता है वैसे-वैसे अनुक्रिया की मात्रा बढ़ती है। इसे विलम्ब का अवरोध कहते हैं। अर्थातअनानुबंधित उद्दीपक के प्रदर्शन का समय भी अनुक्रिया की मात्रा को प्रभावित करता है।

अनुबंधित अवरोध- यदि अनुबंधित उद्दीपक के साथ कोई नया उद्दीपक सम्बद्ध कर दिया जाए परन्तु ऐसे प्रयासों में पुनर्बलन न दिया जाए तो प्रयोज्य ऐसी दशा में अनुक्रिया बन्द कर देता है। जैसे, स्वर उद्दीपक के प्रति अनुबंधित अनुक्रिया का प्रशिक्षण देने के बाद यदि स्वर के साथ कोई नया उद्दीपक (जैसे-स्पर्श) भी दिया जाए परन्तु अनुक्रिया होने पर पुनर्बलन न दिया जाए तो आगे चलकर स्वरस्पर्श की दशा में अनुक्रिया अवरोधित होती है। अतः इसे अनुबंधित अवरोध कहते हैं।

अवरोध के प्रभाव को समाप्त भी किया जा सकता है। ऐसा करने से अवरोधित अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है। ऐसे गोचर को अनावरोध कहते हैं। ऐसा करने के लिए एक नवीन तटस्थ उद्दीपक प्रस्तुत किया जाता है और इस दशा में पुनर्बलन किया जाता है। इससे विलुप्त अनुक्रिया का पुनः प्रदर्शन होने लगता है तथा अनुक्रिया की मात्रा भी बढ़ती है। वुडवरी (1943) ने नैमित्तिक अनुबंधन में भी इसको प्राप्त किया है।

4. **संकलन प्रभाव (SummationEffect)-** यदि एक अनुक्रिया दो अनुबंधित उद्दीपकों के प्रति अनुबंधित की गई है तो दोनों उद्दीपकों को एक साथ प्रस्तुत करने पर प्राप्त होने वाली अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है। अर्थात अनुक्रिया की मात्रा अलग-अलग उद्दीपकों के प्रति प्राप्त होने वाली मात्रा के बराबर भी हो सकती है (Pavlov,1927)। एनिन्जर (1952) ने नैमित्तिक अनुबंधन में भी यह प्रभाव प्राप्त किया है। इसे संकलन प्रभाव कहा जाता है।
5. **सामान्यीकरण (Generalization)-** उद्दीपकों के परिवर्तित होने पर अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना या उद्दीपकों के स्थिर रहने पर अनुक्रिया प्रतिमान का परिवर्तित होना सामान्यीकरण कहा जाता है। प्राचीन एवं नैमित्तिक दोनों ही अनुबंधनों में यह गोचर पाया जाता है। सामान्यीकरण प्रमुख प्रकार निम्नांकित है -
   i. उद्दीपक सामान्यीकरण (StimulusGeneralization) - इससे तात्पर्य है कि यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक (CS) से भिन्न परन्तु मिलता-जुलता नया उद्दीपक प्रस्तुत किया गया जाए तो उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया प्राप्त होगी। जैसे, यदि एक निश्चित तीव्रता के प्रकाश (जैसे, L5) के प्रति अनुक्रिया अनुबंधित की जाए और बाद में कुछ नए प्रकाश उद्दीपक (जैसे, L1,L2,L3,L4,L5,L6,L7,L8,L9) प्रस्तुत किए जायें तो उनके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया हो सकती है। जैसे-जैसे मूल एवं नवीन उद्दीपकों में समानता सम्बन्धी वृद्धि होगी, वैसे-वैसे अनुबंधित के उत्पन्न होने की संभावना भी बढ़ेगी (Hovland, 1937; Candland, 1968)। इससे स्पष्ट है कि उद्दीपक सामान्यीकरण की प्रवणता या मात्रा मूल एवं नवीन उद्दीपकों में समानता की मात्रा पर निर्भर करती है (इप्सटीन एवं वर्सटीन, 1966; वर्सटीन, 1967)। गटमैन एवं कैलिश (1956) ने कबूतरों पर प्रयोग करके नैमित्तिक अनुबंधन में भी यह गोचर प्राप्त किया है।
   ii. अनुक्रिया सामान्यीकरण (ResponseGeneralization) - इस गोचर की दशा में उद्दीपक पूर्ववतरहता है, परन्तु अनुक्रिया प्रतिमान परिवर्तित होता है। जैसे- बेखटरेव (1932) ने कुत्ते को विद्युत आघात से बचने के लिए एक पैर उठाने का प्रशिक्षण दिया और उसके बाद वह पैर बाँध

दिया गया। इस बार प्रयोज्य ने आघात से बचने के लिए दूसरा पैर उठाया जबकि वह पैर उठाने का प्रशिक्षण नहीं दिया गया था। यहाँ स्पष्ट है कि उद्दीपक पूर्ववत था परन्तु अनुक्रिया का प्रतिमान परिवर्तित हो गया। अन्य लोगों ने भी यह गोचर प्राप्त किया है (जैसे-जैसे, 1924; हल 1943; बानू, 1958)।

iii. विलोप का सामान्यीकरण (Generalizationof Extinction) - यदि एक दशा में दो या दो से अधिक अनुक्रियाओं का अनुबंधन कराया गया हो तो उसमें किसी एक का विलोप कर देने से अन्य अनुक्रियाओं का विलोप सरलता से हो जाता है (वास एवं हल, 1934)।

6. **विभेदन (Discrimination) -** दिए गए उद्दीपकों में अन्तर सीखकर उनके प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार करना विभेदन कहा जाता है। जैसे, यदि एक उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया करने पर पुरस्कार और दूसरे के प्रति अनुक्रिया करने पर दण्ड दिया जाए तो प्रयोज्य प्रथम को धनात्मक उद्दीपक (S+) एवं द्वितीय को नकारात्मक उद्दीपक (S-)के रूप में मूल्यांकित करेगा और नकारात्मक उद्दीपक के प्रति व्यवहार करना बन्द कर देगा। अर्थात वह दोनों उद्दीपकों में अन्तर स्थापित कर लेगा। लैश्ले (1930) ने चूहों पर प्रयोग करके निष्कर्ष दिया है कि विभेदन अधिगम में पुनर्बलन का अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। यदि प्रशिक्षणोपरान्त कुछ नवीन उद्दीपक प्रस्तुत किए जायें तो प्रयोज्य उनमें से उस उद्दीपक के प्रति व्यवहार करेगा जो प्रशिक्षण अवधि के धनात्मक उद्दीपक (S+) से मिलता-जुलता होगा। अन्य उद्दीपकों के प्रति वह व्यवहार नहीं करेगा। इससे संकेत मिल रहा है कि विभेदन सीखना सामान्यीकरण की प्रक्रिया से सम्बन्धित है। इस गोचर पर अनेक लोगों ने कार्य किया है (जैसे-हल, 1952; स्पेन्स, 1942; हेनिंग, 1962; मैथ्यूज, 1966य मैकिन्टश, 1965)।

7. **उच्चक्रम अनुबंधन (Higher Order of Conditioning) -** यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक (CS) के साथ कोई नया उद्दीपक युग्मित किया जाए तो प्रयोज्य उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया (SR) करने लगता है। इस गोचर को उच्च क्रम अनुबंधन का नाम दिया गया है। पवलव (1927) एवं बेखटेरव (1932) ने इसका प्रायोगिक अध्ययन भी किया है।

क्रिया प्रसूत अनुबन्ध और शिक्षा
Operant Conditioning and Education

क्रिया प्रसूत अधिगम का शिक्षा में कई प्रकार से प्रयोग होता है।

1. **पुनर्बलन (Reinforcement):** इस अधिगम में अभ्यास द्वारा क्रिया पर विशेष बल दिया जाता है। यह आवश्यक है कि शिक्षक बालक को उचित कार्य के लिए समय-समय पर पुनर्बलन देते रहें।
2. **सीखने का स्वरूप प्रदान करना (Shaping the Behaviour):**इस सिद्धान्त के माध्यम से शिक्षक बालक के सीखे जाने वाले व्यवहार को स्वरूप प्रदान करता है।

3. **शब्द भण्डार (Vocabulary):** बालकों में शब्द भण्डार को बढ़ाने के लिए क्रियाप्रसूत अधिगम सिद्धान्त का प्रयोग किया जाता है।
4. **संतोष(Satisfaction) :** काम की समाप्ति पर या सफलता मिलने पर प्रसन्नता होती है जिससे संतोष प्राप्त होता है और जो क्रिया को बल देता है।
5. **निदानात्मक शिक्षण (Remedial Training):** क्रिया प्रसूत सिद्धान्त मन्द बुद्धि वाले तथा मानसिक रोगियों को आवश्यक व्यवहार के सीखने में सहायता देता है।
6. **पद विभाजन (Small Steps):**क्रिया प्रसूत अधिगम में सीखी जाने वाली क्रिया को कई छोटे-छोटे सोपानों में बाँट लिया जाता है। शिक्षा में इस विधि का प्रयोग करके सीखने की गति तथा सफलता में वृद्धि की जा सकती है।
7. **अभिक्रमित अधिगम (Programmed Learning)**: सीखने के अन्तर्गत अभिक्रमित सम्बन्धी विधि प्रकाश में आई है जिसको कि क्रिया प्रसूत अनुबन्ध द्वारा गति दी जा सकती है।
8. **परिणाम की जानकारी (Knowledge of Result):** स्किनर के अनुसार यदि व्यक्ति को कार्य के परिणामों की जानकारी होती है तो उसके सीखने में इसका काफी प्रभाव पड़ता है उसका व्यवहार प्रभावित होता है। घर के कार्य में संशाधन का भी छात्र के सीखने की गति तथा गुण पर प्रभाव पड़ता है।
9. **अभिप्रेरणा (Motivation):** स्किनरका यह सिद्धान्त अभिप्रेरणा पर बल देता है। अत: शिक्षक का कार्य हे कि वह बालकों को, विषय-वस्तु के उद्देश्य को स्पष्ट करके, उद्देश्य पूर्ति के लिए प्रोत्साहित करता रहे। बालक सदैव क्रियाशील रहें इसके लिए उन्हें प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए।
10. **अभ्यास और पुनरावृत्ति :** शिक्षक को बालक को सिखाने के लिए अभ्यास एवंपुनरावृत्तिजैसीविधियों पर विशेष बल देना चाहिए।

आलोचना

1. मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि पशुओं पर किए गए प्रयोगों के आधार पर उसकी समानता सामाजिक अधिगम परिस्थितियों से कैसे की जा सकती है।
2. क्रिया-प्रसूत (Operant) और उत्तेजक या उद्दीपन प्रसूत (Respondent) में भ्रम रहता है जिससे क्रिया-प्रसूत अनुबन्धन और उद्दीपन प्रसूत अनुबन्धन में साफ अन्तर नहीं किया जा सकता है।
3. स्किनर क्रिया-कलाप और अधिगम (Performance and Learning) में कोई अन्तर नहीं करते हैं जबकि कई मनोवैज्ञानिक इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पुनर्बलीकरण सीखने की अपेक्षा अक्ष्यत: क्रिया-कलाप को प्रभावित करता है।

7.8 प्राचीन एवं क्रिया प्रसूत अनुबंधन में अन्तर

दोनों विधियों में पाए जाने वाले अन्तर इस प्रकार हैं –

प्राचीन अनुबंधन	क्रिया प्रसूत अनुबंधन
1. इसके द्वारा सरल व्यवहारों का ही अधिगम होता है। 2. इसमें प्राणी को दो उद्दीपकों के बीच साहचर्य सीखना पड़ता है (जैसे, प्रकाश एवं भोजन में सम्बन्ध सीखना)। अतः इसे उद्दीपक प्रकार (S-type) का सीखना कहते हैं। 3. प्राचीन अनुबंधन में उद्दीपकों के बीच सान्निध्य (Contiguity) का प्रभाव साहचर्य पर पड़ता है। अर्थात, समयकारक (UCS CS का अन्तराल) का इसमें विशेष महत्व है। 4. प्राचीन अनुबंधन में व्यवहार उत्पन्न होने के लिए उद्दीपक पहले दिया जाता है। इसे प्रतिक्रिया स्वरुप व्यवहार कहते हैं। 5. प्राचीन अनुबंधन में अनैच्छिक क्रियाओं (Involuntary actions) का ही अधिगम किया जाता हैं । इस पर स्वायत तंत्रिका तंत्र का नियंत्रण रहता है (जैसे, लार स्राव)। 6. यदि प्रत्येक प्रयास में पुरस्कार न दिया जाए तो अनुक्रिया का अनुबंधन कठिन हो जाता है।	1. इसके द्वारा जटिल व्यवहारों का भी अधिगम किया जा सकता है। 2. इसमें उद्दीपक तथा अनुक्रिया में साहचर्य सीखा जाता है। अतः इसे अनुक्रिया-प्रकार (R-type) का अधिगम कहा जाता है। 3. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्रभाव का नियम कार्य करता है। जैसे, अनुक्रिया करने का पुरस्कार प्राप्त होने पर उद्दीपक अनुक्रिया सम्बन्ध दृढ़ होता है। 4. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में प्राणी को स्वयं उचित अनुक्रिया करके पुनर्बलन प्राप्त करना होता है। इसे घटित (Emitted) या संक्रियात्मक (Operant) व्यवहार कहते हैं। 5. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में ऐच्छिक क्रियाओं का अधिगम होता है। इन पर केन्द्रीय तंत्रिका तंत्र (CNS) का नियंत्रण रहता है। 6. क्रिया प्रसूतअनुबंधन में सतत के स्थान पर आंशिक पुनर्बलन से भी सरलतापूर्वक अधिगम होता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

11. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में _____ की विशेष भूमिका होती है।
12. कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्राप्त होता है_____ कहलाता है ।
13. किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना _____ कहलाता है ।
14. स्किनर द्वारा दी गई पुनर्बलन अनुसूची के नाम लिखिए ।

7.9 सारांश

अधिगम या सीखना एक बहुत ही सामान्य और आम प्रचलित प्रक्रिया है। जन्म के तुरन्त बाद से ही व्यक्ति सीखना प्रारम्भ कर देता है और फिर जीवनपर्यंत कुछ ना कुछ सीखता ही रहता है।
सामान्य अर्थ में 'सीखना' व्यवहार में परिवर्तन को कहा जाता है। (Learning refers to change in behaviour) परन्तु सभी तरह के व्यवहार में हुए परिवर्तन को सीखना या अधिगम नहीं कहा जा सकता।

थॉर्नडाइक ने सीखने की व्याख्या करते हुए कहा है कि जब कोई उद्दीपक (stimulus) व्यक्ति के सामने दिया जाता है तो उसके प्रति वह अनुक्रिया (response) करता है। अनुक्रिया सही होने से उसका संबंध (connection) उसी विशेष उद्दीपक (stimulus) के साथ हो जाता है। इस संबंध को सीखना (learning) कहा जाता है तथा इस तरह की विचारधारा को संबंधवाद (Connectionism) की संज्ञा दी गई है।

थॉर्नडाइक ने सीखने के सिद्धान्त में तीन महत्वपूर्ण नियमों का वर्णन किया है

1. अभ्यास का नियम (Law of Exercise)
2. तत्परता का नियम (Law of Readiness)
3. प्रभाव का नियम (Law of Effect)

अधिगम के विभिन्न सिद्धान्तों की तुलना में अनुबंधन पर अत्यधिक प्रायोगिक कार्य हुए हैं। अनुबंधन को ऐसे साहचर्यात्मक या अधिगम प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जाता है जिसमें नवीन प्रकार के उद्दीपक-अनुक्रिया साहचर्यों का निर्माण करना सीखा जाता है।

पवलव ने अपने सीखने के सिद्धान्त का आधार अनुबन्धन (conditioning) को माना है। पवलव के सीखने के इस अनुबन्धन सिद्धान्त को क्लासिकल अनुबन्धन सिद्धान्त (classical conditioning theory) या प्रतिवादी अनुबन्धन सिद्धान्त (Respondent conditioning theory) या टाइप- एस (Type- S) अनुबन्धन भी कहा जाता है। इसे क्लासिकल अनुबंधन इसलिए कहा जाता है क्योंकि पवलव ने ही अधिगम का क्लासिक प्रयोगशाला अध्ययन किया था।

क्लासिकल अनुबन्धन में प्रतिमान की शुरूआत एक उद्दीपक (stimulus) तथा इससे उत्पन्न अनुक्रिया के बीच के संबंध से होता है। पवलव के अनुसार जब कोई स्वाभाविक एवं उपर्युक्त उद्दीपक को जीव के सामने उपस्थित किया जाता है तो वह उसके प्रति एक स्वाभाविक अनुक्रिया (natural response) करता है।

स्किनर (1938) द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को सक्रिय अनुबंधन , क्रिया प्रसूत अनुबंधन, नैमित्तिक अनुबंधन या संक्रियात्मक अनुबंधन कहा जाता है। यह प्राचीन अनुबंधन की अपेक्षा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है।

नैमित्तिक अनुबंधन या संक्रियात्मक अनुबंधन में पुनर्बलन की विशेष भूमिका होती है। सक्रिय अनुबंधन की अवधारणा यह है कि प्राणी को वांछित उद्दीपक या परिणाम प्राप्त करने या कष्टदायक उद्दीपक से बचने के लिए प्रत्याशित, उचित या सही अनुक्रिया (व्यवहार) पहले स्वयं प्रदर्शित करना होता है। अर्थात उद्दीपक या परिस्थिति के निमित्त प्राणी द्वारा किया जाने वाला व्यवहार ही परिणाम का स्वरूप निर्धारित करता है।

7.10 शब्दावली

1. **अधिगम:**यह वह प्रक्रिया है जिसमें एक उत्तेजना, वस्तु या परिस्थिति के द्वारा एक प्रत्युत्तर प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त यह प्रत्युत्तर एक प्राकृतिक या सामान्य प्रत्युत्तर है।
2. **प्राचीन अनुबंधन:**उत्तेजना और अनुक्रिया के बीच साहचर्य स्थापित करने की प्रथम विधि प्राचीन अनुबंधन है। यह वह अधिगम प्रक्रिया है जिसमें एक स्वाभाविक एवं एक तटस्थ उद्दीपक के बीच साहचर्य सीखकर अनुबंधित उद्दीपक के प्रति वह अनुक्रिया प्राणी करने लगता है जो पहले केवल अनानुबंधित उद्दीपक के प्रति करता था।
3. **नैमित्तिक अनुबंधन:**नैमित्तिक अनुबंधन वह कोई भी सीखना है, जिसमें अनुक्रिया अवलम्बित पुनर्बलन पर आधारित हो तथा जिसमें प्रयोगात्मक रूप से परिभाषित विकल्पों का चयन सम्मिलित न हो।
4. **पुरस्कार प्रशिक्षण:**पुरस्कार प्रशिक्षण से तात्पर्य है, उचित या शुद्ध अनुक्रिया करके पुरस्कार या धनात्मक पुनर्बलन प्राप्त करना।
5. **पुनर्बलन:** ऐसी कोई वस्तु, कारक या उद्दीपक है जिसके प्रयुक्त किए जाने पर प्रक्रिया की सम्भाव्यता प्रभावित होती है।
6. **धनात्मक पुनर्बलन:**कोई भी सुखद वस्तु या उद्दीपक जो उचित व्यवहार होने पर प्रयोज्य को प्राप्त होता है।
7. **नकारात्मक पुनर्बलन:**किसी उचित व्यवहार के प्रदर्शित होने पर कष्टप्रद वस्तु की आपूर्ति रोक देना।
8. **धनात्मक दण्ड:**किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर किसी कष्टप्रद वस्तु या उद्दीपक को प्रस्तुत करना।
9. **नकारात्मक दण्ड:**किसी अनुचित व्यवहार के घटित होने पर सुखद वस्तु की आपूर्ति रोक देना।
10. **विलोप:**किसी सीखी हुई अनुक्रिया को समाप्त या बन्द करने से है।
11. **स्वतः पुनरावर्तन:**अनुबंध के प्रयोगों में यह देखा गया है कि यदि विलोप की प्रक्रिया पूरी होने के कुछ समय बाद अनुबंधित उद्दीपक पुनः प्रस्तुत किया जाए तो अनुबंधित अनुक्रिया की कुछ न कुछ मात्रा प्रदर्शित होती है। इस गोचर को स्वतः पुनरावर्तन कहते हैं।
12. **अवरोध:**जिन कारकों का अनुबंधन पर बाधक प्रभाव पड़ता है उन्हें अवरोध का नाम दिया जाता है।

13. **संकलन प्रभाव:**यदि एक अनुक्रिया दो अनुबंधित उद्दीपकों के प्रति अनुबंधित की गई है, तो दोनों उद्दीपकों को एक साथ प्रस्तुत करने पर प्राप्त होने वाली अनुक्रिया की मात्रा में वृद्धि होती है, इसे संकलन प्रभाव कहते हैं।
14. **सामान्यीकरण:**उद्दीपकों के परिवर्तित होने पर अनुक्रियाओं का उत्पन्न होना या उद्दीपकों के स्थिर रहने पर अनुक्रिया प्रतिमान का परिवर्तित होने सामन्यीकरण कहा जाता है।
15. **विभेदन:**दिए गए उद्दीपकों में अन्तर सीखकर उनके प्रति भिन्न-भिन्न व्यवहार करना विभेदन कहलाता है।
16. **उच्चक्रम अनुबंधन:**यदि मूल अनुबंधित उद्दीपक के साथ कोई नया उद्दीपक युग्मित किया जाए तो प्रयोज्य उसके भी प्रति अनुबंधित अनुक्रिया करने लगता है। इस गोचर को उच्चक्रम अनुबंधन कहा जाता है।

7.11 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. व्यवहार
2. थॉर्नडाइक ने सीखने के तीन महत्वपूर्ण नियमों के नाम हैं-
   i. अभ्यास का नियम (Law of exercise)
   ii. तत्परता का नियम (Law of readiness)
   iii. प्रभाव का नियम (Law of effect)
3. थॉर्नडाइक ने सीखने के सहायक नियमों के नाम हैं-
   i. बहुक्रिया (Multiple response)
   ii. तत्परता या मनोवृत्ति(Set or attitude)
   iii. सादृश्य अनुक्रिया (Response by similarity or analogy)
   iv. साहचर्यात्मक स्थानान्तरण (Associative shifting)
4. थॉर्नडाइक के अधिगम के सिद्धांत को प्रयास एवं त्रुटि का सिद्धांत तथा सबन्धवाद के नाम से जाना जाता है।
5. उपयोग का नियम
6. अनुपयोग का नियम
7. शरीर- वैज्ञानिक
8. अनुबन्धित अनुक्रिया सिद्धान्त
9. अनुबन्धन
10. स्वाभाविक उद्दीपक
11. प्रबलनों
12. धनात्मक पुनर्बलन
13. नकारात्मक दण्ड

14. स्किनर द्वारा दी गई पुनर्बलन अनुसूची के नाम निम्न हैं-
    i. स्थिर अनुपात सूची
    ii. परिवर्तनीय अनुपात अनुसूची
    iii. स्थिर अन्तराल अनुसूची
    iv. परिवर्तनीय अन्तराल अनुसूची

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मंगल, एस0 के0 (2009) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, पी0एच0आई0 लर्निंग प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. गुप्ता एस.पी. ;(2002) उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन।
3. शुक्ल ओ.पी.;(2002) शिक्षा मनोविज्ञान, लखनऊ: भारत प्रकाशन।
4. सिंह , अरूण कुमार (.2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
5. चौहान, एस0 एस0 (2000) एडवान्स एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।

7.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राचीन या पवलावियन अनुबंधन का उदाहरण सहित वर्णन कीजिए।
2. क्रिया प्रसूत अनुबंधन का वर्णन कीजिए।
3. क्रिया प्रसूत अनुबंधन में पुनर्बलन की विशेष भूमिका का वर्णन कीजिए।
4. प्राचीन अनुबंधन क्या है? प्राचीन एवं क्रिया प्रसूत अनुबंधन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

इकाई 8- गेस्टाल्ट मनोविज्ञान, अधिगम के संज्ञानात्मक सिद्धान्त तथा उनके शैक्षिक निहितार्थ

Gestalt Psychology, Cognitive Theories of Learning andtheir Educational Implications

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्त
8.3.1 अन्तर्दृष्टि अधिगम का गेस्टाल्ट सिद्धान्त
8.3.2 उत्पत्ति
8.3.3 अन्तर्दृष्टि या सूझ अधिगम के सिद्धान्त
8.3.4 कोहलर के प्रयोग
8.3.5 अन्तर्दृष्टि अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ
8.4 कुर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त
8.4.1 शैक्षिक निहितार्थ
8.5 टालमैन का चिन्ह अधिगम सिद्धान्त
8.5.1 अधिगम के प्रकार
8.5.2 टालमैन के अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जिसमें संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण तथा चिन्तन प्रक्रिया के बारे में अध्ययन किया जाता है। मनोविज्ञान में संज्ञानात्मक दृष्टिकोण व्यवहार के उद्देश्य, जानने की प्रक्रिया, समझने की प्रक्रिया तथा तर्क पर जोर देता है। सर्वप्रथम गेस्टाल्ट मनोविज्ञानवादियों ने संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के सिद्धांतों एवं विचारों का प्रत्यक्षीकरण, अधिगम तथा चिन्तन में प्रयोग किया। वे इन प्रक्रियाओं की व्याख्या में पारम्परिक सम्बन्धवादी सिद्धान्त के विरूद्ध थे। सन् 1930 तथा 1940 के दशक में ई0 सी0 टालमैन ने अधिगम के संज्ञानात्मक दृष्टिकोण तथा व्यवहारवादी सिद्धान्तों को संयुक्त रूप में प्रस्तुत किया। टालमैन ने विभिन्न प्रकार की भूल-भूलैयाओं (Mazes)में चूहों के ऊपर अनेक प्रयोग करके अपने अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उसका मानना था कि चूहे उपकरणों के संज्ञानात्मक नक्शा (Cognitive Map)का विकास करके अधिगम करते हैं।

संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तों के अनुसार शिक्षण एक प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अधिगमकर्त्ता में समझ या अन्तर्दृष्टि का विकास किया जाता है। इन सिद्धान्तों के अनुसार अधिगम, अधिगमकर्त्ता के संज्ञानात्मक क्षेत्र की पुर्नरचना हैं जिसके द्वारा अर्थपूर्ण सम्बन्धों के निर्माण पर जोर दिया जाता है। कक्षागत अनुभव विद्यार्थियों के व्यक्तिगत उद्देश्यों एवं लक्ष्यों से सम्बन्धित होते हैं। विद्यार्थियों को अर्थपूर्ण सम्बन्धों को खोजने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है ताकि वे अपने प्रयास के परिणामों के बारे में जान सकें। संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तों के अन्तर्गत मैक्स वर्दीमर (Max Wertheimer) वोल्फगैंग कोहलर (Wolfgang Kohlar)तथा कुर्ट कोफ्का (Kurt Koffka)के द्वारा गेस्टाल्ट सिद्धान्त या अर्न्तदृष्टि सिद्धान्त, कुर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त तथा टालमैन का चिन्ह सिद्धान्त आते हैं जिनका विवरण आगे दिया जा रहा है।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्तों के बारे में जान पाऐंगे।
2. गेस्टाल्ट मनोविज्ञान तथा इसके शैक्षिक निहितार्थ से परिचित हो पाऐंगे।
3. अधिगम के कुर्ट लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त तथा इसके शैक्षिक निहितार्थों को स्पष्ट कर पाऐंगे।
4. टालमैन के अधिगम सिद्धान्त तथा इसके शैक्षिक निहितार्थों की व्याख्या कर पाऐंगे।

8.3 संज्ञानात्मक अधिगम सिद्धान्त

8.3.1 अन्तर्दृष्टि अधिगम का गेस्टाल्ट सिद्धान्त Gestalt Theory of InsightLearning

गेस्टाल्ट (Gestalt) जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है समग्न, पूर्णाकृतिक या पूर्णाकार (whole)। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार "एक गेस्टाल्ट या आकृति पूर्ण होती है, जिसकी विशिष्टताएँ पूर्णता की आन्तरिक प्रकृति द्वारा निर्धारित होती हैं, न कि उसके वैयक्तिक तत्वों की विशेषताओं द्वारा"

(A Gestalt or form is a whole, which characteristics are determined not by characteristics of its individual elements, but by the internal nature of the whole).

इस सिद्धान्त के प्रतिपादकों में मैक्स वर्दीमर (Max Wertheimer), वोल्फगेंग कोहलर (Wolfgang Kohler) तथा कुर्ट कोफ्का (Kurt Koffka) प्रमुख गेस्टाल्टवादी मनोवैज्ञानिक हैं। इसेअर्न्तदृष्टि सिद्धान्त या सूझ सिद्धान्त (Insight Theory) के नाम से भी जाना जाता है। गेस्टाल्टवादियो के अनुसार प्राणी (Organism) सम्पूर्ण परिस्थिति को एक समग्न रूप में देखता है। जब कोई समस्या आती है तब प्राणी उद्दीपक को अनुक्रिया से सम्बन्धित करके नहीं सीखता है वरनवह सम्पूर्ण परिस्थितियों को देखकर समस्या का समाधान खोजता है। प्राणी समस्या का समाधान अपनी अन्तर्दृष्टि अथवा सूझ (Insight) से खोजता है। सूझ से तात्पर्य किसी परिस्थिति में विभिन्न पक्षों के बीच सम्बन्धों को देखने अथवा परिस्थिति के केन्द्रीय भाव को समझ लेने से है। सूझ प्रायः अचानक अथवा स्वतः स्फूर्त (Spontaneous) ढंग से आती है तथा इसके लिए अभ्यास की आवश्यकता नहीं होती है।

गेस्टाल्टवादियों के अनुसार नवीन सूझ की क्षमता विकसित करने की अथवा पूरानी सूझ को सुधारने की प्रक्रिया को सीखना या अधिगम कहा जाता है। इसके अन्तर्गत प्राणी सम्पूर्ण परिस्थिति (Gestalt) के प्रत्यक्षीकरण के प्रति अनुक्रिया करता है। गेस्टाल्टवादियों ने सूझ की प्रक्रिया को किसी परिस्थिति में आए परिवर्तनों या घटित घटनाओं को ऐसे क्रमबद्ध व तार्किक रूप से व्यवस्थित करने के रूप में स्वीकार किया है जिससें परिस्थिति के विभिन्न अंगो के बीच संरचनागत सम्बन्ध (Structural Relationship) ज्ञात हो सके। वस्तुतः व्यवहारवादियों के द्वारा प्रस्तुत की गई अवधारणाओं से असंतुष्ट होकर संज्ञानात्मक मनोवैज्ञानिकों ने अधिगम को यांन्त्रिक क्रिया (उद्दीपक-अनुक्रिया सिद्धान्त) के स्थान पर जानबूझकर (Deliberate) तथा चेतन प्रयास (Conscious Effect) वाली प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया गया। गेस्टाल्टावादियों के अनुसार "हम अवयवी (Whole) से अवयव (Part) की ओर जाते है, अवयव से अवयवी की ओर नहीं है"।

8.3.2 उत्पत्ति

गेस्टाल्ट मनोविज्ञान का उद्भव बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में जर्मनी में हुआ था। सर्वप्रथम गेस्टाल्ट का सम्प्रत्यय क्रिश्चियन वोन हरेनफेल्स (Von Ehrenfels) द्वारा दिया गया था। गेस्टाल्ट का विचार जोहान

वोल्फगैंग (Johann Wolfgang) वोन गोथे (Von Goethe) इमैन्युल काँट (Immanuel Kant)मैक्स वर्दीमर (Max Wertheimer) तथा अर्नेस्ट मैक (Ernst Mach) के सिद्धान्तों में पाया जाता है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में कुर्ट कोफ्का, मैक्स वर्दीमरतथा वोल्फगैंग कोहलर (कार्ल स्टूम्फ के छात्र) ने वस्तु या परिस्थिति को उसके सम्पूर्ण अवयवों या तत्वों के साथ समग्न रूप में देखा। उनके अनुसार सर्वप्रथम प्रत्यक्षीकरण (Perception) प्राणी को सम्पूर्ण (Whole) का होता है, तत्पश्चात प्राणी को प्रत्यक्षीकरण किसी वस्तु या परिस्थिति के अवयवों (Parts) का होता है।

8.3.3 अन्तर्दृष्टि या सूझ अधिगम के सिद्धान्त Principles of Insight Learning

1. **प्रैगनांज का सिद्धान्त (Principle of Pragnanz)** - गेस्टाल्ट अधिगम का मौलिक सिद्धान्त प्रैगनांज का सिद्धान्त है, जिसके अनुसार हम अपने अनुभवों को नियमित, क्रमिक, सममित तथा सरल रूप में व्यवस्थित करने की प्रवृत्ति रखते हैं। इस मौलिक सिद्धान्त के आधार पर गेस्टाल्टवादियों ने निम्नलिखित नियमों का प्रतिपादन किया है-
   i. **समाप्ति या समापन का नियम (Law of Closure)-** इस नियम के अनुसार मस्तिष्क नियमितता में वृद्धि हेतु या नियमित आकृति बनाने हेतु उन तत्वों या अवयवों का अनुभव कर सकता है जो इन्द्रिय प्रत्यक्ष नहीं है।
   ii. **समानता का नियम (Law of Similarity)-** इस नियम के अनुसार मस्तिष्क रूप, रंग या आकार के आधार पर समान तत्वों को सम्पूर्णता या सम्पूर्ण वस्तु के रूप में व्यवस्थित कर सकता है।
   iii. **समीपता का नियम (Law of Proximity)**-मस्तिष्क स्थानीय (Spatial) या कालिक (Temporal)समीपता के आधार पर विभिन्न तत्वों को सम्पूर्ण रूप या आकृति में प्रत्यक्षीकरण कर सकता है।
   iv. **सममितता का नियम (Law of Symmetry)-** इसे आकृति-आधार सम्बन्ध का नियम (Figure-Ground Relationship) भी कहते हैं। सममित आकृति या प्रतिबिम्ब दूर-दूर होने के बावजूद भी सम्पूर्ण रूप में दिखती है।
   v. **निरन्तरता का नियम (Law of Continuity)**-मस्तिष्क दृश्य, श्रव्य एवं गतिकीय प्रतिरूपों (Patterns) को निरन्तर बनाए रखता है।
   vi. **सामान्य भाग्य या परिणाम का नियम (Law of Common Fate)-** मस्तिष्क एक ही दिशा में घूमते हुए तत्वों को सम्पूर्ण रूप में या इकाई के रूप में देखता है।

2. **सम्पूर्णता का सिद्धान्त (Principles of Totality)**-मस्तिष्क सचेतन अनुभवों को तत्वों या टुकड़ो में न लेकर सम्पूर्ण रूप में देखता है या प्रत्यक्षीकरण करता है, जिसमें प्रत्येक तत्व-अनुभव सम्पूर्ण अनुभव से अर्थपूर्ण एवं नवीन ढंग से सम्बन्धित रहता है।

3. **मनोभौतिक समरूपता का सिद्धान्त (Principles of Psychophysical Isomorphism)-** इस सिद्धान्त के अनुसार सचेतन अनुभव (Conscious Experience) तथा मस्तिष्क क्रियाओं (Cerebral activity) के बीच सहसम्बन्ध पाया जाता है।

8.3.4 कोहलर के प्रयोग (Kohler's Experiment)

कोहलर के प्रयोगों द्वारा उसके सूझ के सिद्धान्त को समझा जा सकता है। कोहलर के द्वारा चिम्पांजियों (Apes) पर अनेक प्रयोग किए गए , जिनमें चार प्रयोग प्रमुख हैं जिनका विवरण प्रस्तुत है-

प्रयोग-1

इस प्रयोग में एक चिम्पांजी, जिसका नाम सुल्तान था, एक पिंजरे में बंद कर दिया गया तथा पिंजरे के अन्दर एक छड़ी रख दी गई थी। पिंजरे के बाहर कुछ केले रख दिए गए थे। केला देखकर सुल्तान पिंजरे के अन्दर उछल-कूद करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु केला उसकी पहुँच से बाहर था। अचानक वह उठा तथा छड़ी की मदद से केलों को पिंजरे के पास खींच लिया तथा केले प्राप्त करने में सफल हो गया। सुल्तान को केले व छड़ी के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए सूझ मिल गई।

प्रयोग-2

एक दूसरे प्रयोग में पिंजरे के अन्दर दो छड़ी रख दी गईं, जिन्हें एक दुसरे से जोड़ा जा सकता था। पिंजरे के बाहर पहले प्रयोग की तुलना में कुछ ज्यादा दूरी पर केले रख दिए गए थे,जिन्हें दोनो छड़ी की सहायता से पिंजरे के अन्दर खींचा जा सकता था। सुल्तान ने पहले एक छड़ी की सहायता से बारी-बारी से केलों को खींचने का प्रयास किया परन्तु वह असफल रहा। अचानक वह दोनों छड़ियों को एक दूसरे से जोड़ने में सफल हो गया तथा इस संयुक्त छड़ी की सहायता से केलों को पिंजरे के अन्दर खींचने में सफल हो गया।

प्रयोग-3

इस प्रयोग में प्रायोगिक परिस्थिति में कुछ परिवर्तन कर दिया गया था। केलों को पिंजरेकी छत से टाँग दिया गया था जिसके अन्दर सुल्तान बंद था तथा एक बक्सा रखा हुआ था। सुल्तान ने पहले उछलकर केले प्राप्त करने का प्रयास किया परन्तु वह केले प्राप्त करने में असफल रहा। अचानक उसने बक्से को केलों के नीचे रखा तथा बक्से के ऊपर चढ़ कर केले प्राप्त करने की कोशिश की और वह उसमें सफल हो गया। इस तरह से सुल्तान ने सूझ की सहायता से केलों तथा बक्से के बीच सम्बन्ध स्थापित किया।

प्रयोग-4

इस प्रयोग में कोहलर ने पिंजरे के अन्दर एक ही जगह दो बक्से रख दिए तथा सुल्तान कोदोनों बक्सों की सहायता से केलों को प्राप्त करना था क्यों किं इस प्रयोग में केले प्रयोग-3 की तुलना में अधिक ऊँचाई पर टाँगे गए थे। कुछ देर की असफल उछलकूद के बाद अचानक सुल्तान ने बक्सों को एक दूसरे के ऊपर रखा तथा उस पर चढ़कर केले प्राप्त करने में सफल हो गया।

कोहलर के उपरोक्त प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि सूझ उत्पन्न होने लिए समस्या के विभिन्न तत्वों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना तथा सम्पूर्ण परिस्थिति पर विचार करना आवश्यक है। दूसरा निष्कर्ष यह निकला कि शुरूआत में समस्या के समाधान हेतु प्रयास एवं त्रुटि विधि का प्रयोग किया गया, जिसमें असफल होने पर सूझ का प्रयोग किया गया। परन्तु एक बार सूझ सिद्धान्त का प्रयोग करने के उपरान्त आगे समस्या समाधान में सूझ के प्रयोग की सम्भावना बढ़ जाती है। अधिगम के गेस्टाल्टवादी सिद्धान्त में मुख्य बिन्दु 'सूझ का विकास' है। गेस्टाल्टवादी मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति तथा उसके आस-पास का वातावरण मनोवैज्ञानिक क्षेत्र बनाते हैं, जिसमें व्यक्ति सम्पूर्ण क्षेत्र की पुर्नरचना एवं प्रत्यक्षीकरण करके सूझ उत्पन्न करता है।

वस्तुतः कोहलर तथा अन्य गेस्टाल्टवादियों के द्वारा किए गए प्रयोगों ने समस्या-समाधान(Problem Solving) जैसे उच्च स्तरीय अधिगम में बुद्धि तथा अन्य संज्ञानात्मक योग्यताओं की भूमिका को स्पष्ट कर दिया। गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अधिगम एक उद्देश्यपूर्ण, खोजपरक तथा सृजनात्मक क्रिया है, जिसमें प्राणी विशिष्ट उद्दीपक के प्रति अनुक्रिया न करके सम्पूर्ण परिस्थिति तथा उसमें विद्यमान प्रमुख तत्वों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्धों (Meaningful Relationships) के प्रति अनुक्रिया करता है। यर्क्स (Yerks)(1927) के अनुसार, सूझ अधिगम की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1. समस्यात्मक परिस्थिति का होना तथा सर्वेक्षण आवश्यक है।
2. समस्यात्मक परिस्थिति के प्रति उत्सुकता, पुनः शान्त तथा एकाग्रचित अवधान अभिवृत्ति।
3. प्रयास अनुक्रिया
4. एक प्रयास के असफल या अपर्याप्त रहने पर अचानक दूसरा प्रयास या अनुक्रिया करना।
5. प्रायः लक्ष्य तथा समस्या समाधान के प्रति अवधान केन्द्रित करना।
6. क्रान्तिक बिन्दु की उपस्थिति जिस पर प्राणी अचानक, प्रत्यक्ष तथा निश्चित रूप से आवश्यक अनुक्रिया सम्पादित करता है।
7. अनुकूल या उपयुक्त अनुक्रिया का निरन्तर प्रयास करना।
8. समस्यात्मक परिस्थिति के प्रमुख तत्वों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने की योग्यता तथा क्षमता का होना।
9. सूझ अधिगम का प्रमुख सिद्धान्त प्रैगनांज(Pragnanz) का सिद्धान्त है। इसके अनुसार अधिगम की प्रक्रिया घटित होने के लिए प्राणी के मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में तनाव या बलों के बीच असंतुलन का होना जरूरी है तथा प्राणी अधिगम प्रक्रिया के द्वारा उस तनाव को दूर करता है।

8.3.5 अन्तर्दृष्टि अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ
Educational Implications of Theory of Insight Learning

शिक्षण-अधिगम परिस्थितियों में गेस्टाल्ट सिद्धान्त के निम्नलिखित उपयोग सम्भव हैं-

1. **अवयवी से अवयव की तरफ (From Whole to Parts)**

   शिक्षक को किसी प्रकरण, उपप्रकरण, समस्या, चित्र आदि का प्रस्तुतीकरण आंशिक रूप से नहीं बल्कि समग्र रूप से करना चहिए। छात्र अंशो को नहीं बल्कि समग्रपरिस्थिति या प्रकरण को पहले समझाता है। शिक्षक को कक्षा में पढ़ाते समय समस्या या प्रकरण के विभिन्न तत्वों के बीच उपस्थित अर्थपूर्ण सम्बंधो पर जोर देना चाहिए। शिक्षक को कक्षा में बालकों को ऐसे अवसर देने चाहिए, जिसमें बालक स्वयं परिस्थितियों का अवलोकन करके तथा सूझ के द्वारा खोज करके सीखने की तरफ अग्रसर हो सके। शिक्षक को छात्र के सम्मुख समस्या को पूर्ण रूप में प्रस्तुत करना चाहिए जैसे-गणित में पूरी समस्या प्रस्तुत की जाए , ना कि उसका सिर्फ खण्ड या सूत्र।

2. **समस्या-समाधान उपागम (Problem-Solving Approach)** गेस्टाल्ट सिद्धान्त स्मरण एवं रहने की प्रवृत्ति का विरोध करता है। शिक्षक को कक्षा में छात्रों को अपनी चिन्तन शक्ति, सृजनात्मक अवलोकन की क्षमता तथा समस्या-समाधान की योग्यताओं के प्रयोग के अवसर प्रदान करने चाहिए। छात्रों को उद्देश्यपूर्ण, खोजपरक एवं सृजनात्मक अधिगम के अवसर मिलने चाहिए। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में 'क्या' तथा 'कब' की जगह 'क्यों ' तथा 'कैसे' को महत्व दिया जाना चाहिए। कक्षा में शिक्षक के द्वारा हयूरिस्टिक विधि, खोज विधि प्रोजेक्ट विधि, विश्लेषणात्मक विधि, समस्या-समाधान विधि इत्यादि का प्रयोग करना चाहिए। इन विधियों के द्वारा छात्र-छात्राओं में बुद्धि, सृजनात्मकता, कल्पना, तर्क शक्ति, समस्या-समाधान की योग्यता इत्यदि संज्ञानात्मक योग्यताओं का विकास किया जा सकता है।

3. **□कीकृत उपागम (Integrated Approach)**

   पाठ्यक्रम या पाठ्यवस्तु के सभी तत्वों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्ध होना चाहिए। पाठ्यक्रम के सभी विषयों एवं क्रियाओं के बीच समन्वय होना चाहिए। यह सिद्धान्त अनुभवों के संगठन एवं पूर्णता पर बल देता है, इसलिए शिक्षक को शिक्षार्थी के अनुभवों को पुर्नसंगठित करने में सहायता देनी चाहिए।

4. **अभिप्रेरणात्मक पक्ष (Motivational Aspect)**

   शिक्षक द्वारा छात्र में जिज्ञासा तथा रूचि उत्पन्न करने का प्रयास किया जाना चाहिए। अध्यापक द्वारा विद्यार्थी को तब तक प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, जब तक सूझ के द्वारा समस्या का हल न निकल आए। छात्र को प्रत्येक कक्षागत क्रिया के विशिष्ट उद्देश्य से पूर्णरूपेण परिचित कराया जाना चाहिए। शिक्षक को अपने छात्रों कालक्ष्य एवं सम्बन्धित चरों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्ध विकसित करने में मदद करनी चाहिए। शिक्षक को अपने पाठ का प्रस्तुतीकरण छात्रों के पूर्व ज्ञान से जोड़कर करना चाहिए जिससे छात्रों की रूचि एवं अवधान पाठ में बना रहे। यह विधि कठिन विषयों जैसे गणित, विज्ञान आदि के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है। गणित का नया प्रश्न हल करने में छात्र अपनी सूझ द्वारा सूत्रों या तरीकों का प्रयोग करता है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. गेस्टाल्ट (Gestalt) किस भाषा का शब्द है?
2. गेस्टाल्ट (Gestalt) शब्द का क्या है अर्थ है?
3. अर्न्तदृष्टि अधिगम सिद्धान्त किसने प्रतिपादित किया है?
4. गेस्टाल्टवादियों के अनुसार अधिगम क्या है?
5. अन्तर्दृष्टि अधिगम के सिद्धान्तों के नाम लिखिए।
6. गेस्टाल्ट अधिगम का मौलिक सिद्धान्त कौन सा है?
7. प्रैगनांज के सिद्धान्त के आधार पर गेस्टाल्टवादियों ने किन नियमों का प्रतिपादन किया?

8.4 कुर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धान्तKurt Lewin's Field Theory of Learning

कुर्ट लेविन (1890-1947) एक जर्मन मनोवैज्ञानिक थे, जिन्होंने पवलव, स्किनर आदि से अलग हटकर व्यक्ति के व्यवहार की व्याख्या उसके जीवन क्षेत्र (Life Space)के आधार पर की । एक व्यक्ति का जीवन क्षेत्र उसके मनोवैज्ञानिक बलों पर निर्भर करता है। इसमें व्यक्ति, उसकी जरूरतें, तनाव, विचार तथा उसका वातावरण आते है। लेविन के अनुसार, एक व्यक्ति अपने जीवन क्षेत्र के केन्द्र-बिन्दु पर होता है और उसका प्रभाव निरन्तर उस पर पड़ता है। लेविन के अनुसार, "जीवन क्षेत्र में होने वाले किसी भी परिवर्तन या परिमार्जन को व्यवहार या अधिगम कहते हैं"।(Behavior or learning means any change or modification in life space).वातावरण का तात्पर्य प्राकृतिक, सामाजिक और मनोवैज्ञानिक वातावरण से है, जिसमें व्यक्ति लगातार संर्घष करता रहता है तथा उससे प्रभावित होता है।

कुर्टलेविन के संज्ञानात्मक क्षेत्र सिद्धान्त को क्षेत्र मनोविज्ञान (Field Psychology)टोपोलोजिकल मनोविज्ञान (Topological Psychology) या वेक्टर मनोविज्ञान (Vector Psychology)भी कहते हैं। कुर्ट लेविन के अनुसार क्षेत्र का तात्पर्य मानव के उस सम्पूर्ण मनोवैज्ञानिक जगतसे है जिसके अर्न्तगत वह रहता है तथा किसी समय विशेष में भ्रमण करता है। इस प्रकार के मनोवैज्ञानिक संसार में व्यक्ति स्वयं, उसके विचार, तथ्य, धारणाएँ, कल्पनाएँ , विश्वास तथा इच्छाएँ इत्यादि आती हैं । यह क्षेत्र प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग-अलग होता है।

लेविन के अनुसार, व्यक्ति के अपने कुछ आन्तरिक बल या आवश्यकताएँ होती है जबकि क्षेत्र के अपने कुछ दबाव (Pressures), खिचांव (Pulls) या माँग (Demands) होती हैं जो परस्पर एक दूसरे के साथ अन्तः क्रिया करके एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। व्यक्ति क्षेत्र के जिन खीचावों या बलों के प्रति अनुक्रिया करता है उसे ही व्यक्ति का जीवन क्षेत्र (Life Space) कहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की कुछ आवश्यकताएँ या आकांक्षाएँ होती है जो व्यक्ति के व्यवहार की दिशा निर्धारित करती हैं तथा वह दिशा

व्यक्ति को लक्ष्य (Goal) की ओर मोड़ देती है, जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति जब तक अवरोधों (Barriers) को पार करके लक्ष्य (Goal) प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक उसे पूरा करने के लिए निरन्तर प्रत्यनशील रहता है। लक्ष्य प्राप्ति के पश्चात व्यक्ति पुनः अपने वातावरण में लौट आता है, जब तक कि पुनः नईआकांक्षा या आवश्यकता उत्पन न हो।

क्षेत्र मनोविज्ञान में वेक्टर (Vector) प्रत्यय के द्वारा लेविन ने किसी लक्ष्य (Goal) को प्राप्त करने के लिए जीवन स्पेस (Life Space) में विद्यमान प्रवृत्तियों की सापेक्षिक सामर्थ्यों (Relative Strengths) को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किया। लेविन के क्षेत्र सिद्धान्त में वैलेन्स (Valance) विभिन्न क्षेत्रों की तथा आकर्षण शक्तियों (Attracting Forces)तथा निकर्षण शक्तियों (Repelling Forces) को बताते हैं। लेविन के अनुसार, वैलेन्स दो प्रकार के होते है- धनात्मक तथा ऋणात्मक। प्राणी धनात्मक वैलेन्स वाली वस्तु को प्राप्त करना चाहता है तथा ऋणात्मक वैलेन्स वाली वस्तु से दूर रहना चाहता है।

जीवन क्षेत्र में विद्यमान दबावों व खिचावों से प्रभावित होते हुए व्यक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति में आ रही बाधाओं का निराकरण करता है। बार-बार की सफलता से व्यक्ति का आकांक्षा स्तर ऊपर उठता है तथा बार-बार की असफलता से आकांक्षा स्तर नीचे गिरता है। नीचे दिए चित्र द्वारा व्यक्ति, क्षेत्र, जीवन क्षेत्र तथा वेक्टर के बीच सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया हैं।

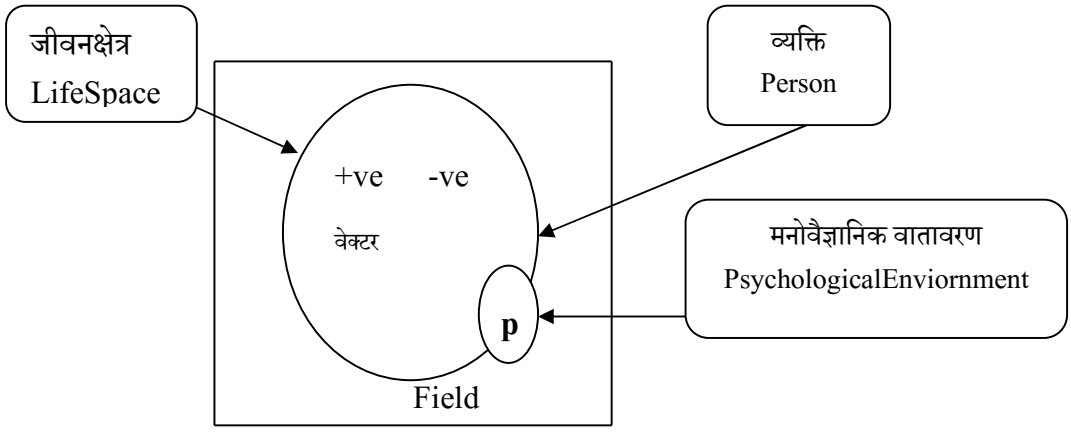

(लेविन के विभिन्न प्रत्ययों का रेखाचित्रीय निरुपण)

स्रोत: गुप्ता (2004), पृ0 335

लेविन के अनुसार, जीवन क्षेत्र के संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन ही अधिगम या सूझ का विकास है। (Development of insightful learning is a change in cognitive structure of life space). अधिगम प्रक्रिया के फलस्वरूप प्राणी के जीवन क्षेत्र में विभेदकता (Differentiation) आती रहती है, अर्थात अधिगम के द्वारा प्राणी अपने जीवन क्षेत्र को यथासम्भव विभेदक बनाने का प्रयास करता रहता है। बचपन में बालक कम विभेदक होता है, परन्तु जैसे-जैसे वह बड़ा होता है उसका प्रत्यक्षण क्षेत्र (Perceptual Field) विभदेक तथा व्यापक होता जाता है। किसी समस्या के आने पर व्यक्ति तनाव में आ जाता है तथा उसका तनाव ही समस्या समाधान की आवश्यकता को जन्म देता है। यह आवश्यकता ही प्राणी को अपने जीवन क्षेत्र को पुर्नगठित करने अथवा उसमें संशोधन करने के लिए क्रियाशील बनाती है। परिणास्वरूप समस्या समाधान के लिए एक नई अन्तर्दृष्टि या सूझ मिलती है। इस सूझ का विकास या संज्ञानात्मक संरचना में वांछित परिवर्तन ही अधिगम है, परन्तु यह परिवर्तन सदैव ही केवल एक बार के उद्बोधन से नहीं आ पाते हैं। अतः प्रायः संज्ञानात्मक संरचना में वांछित परिवर्तन हेतु प्रयासों की पुनरावृत्ति की अवश्यकता होती है, परन्तु अधिक पुनरावृत्ति अधिगम में सहायक नहीं होती, बल्कि संज्ञानात्मक संरचनाएँ अव्यवस्थित हो सकती हैं।

8.4.1 शैक्षिक निहितार्थ (Educational Implications)

लेविन के अनुसार सीखने की क्रिया में लक्ष्य, अभिप्रेरणा, आकांक्षा तथा वातावरणीय परिस्थितियों की प्रमुख भूमिका होती है। शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में सम्पूर्ण परिस्थिति के प्रत्यक्षण एवं अवलोकन पर जोर देता है, जो समस्या-समाधान की ओर अग्रसर करती है। लेविन के अनुसार सीखना समस्याओं का समाधान करना है। शिक्षक अपने छात्रों को अधिगम के लक्ष्यों तथा बाधाओं को स्पष्ट रूप से बताएँ तथा लक्ष्यों को सरल रूप में प्रस्तुत करें। कुछ प्रमुख शैक्षिक निहितार्थ निम्नलिखित हैं-

1. **पुरस्कार तथा दण्ड Reward & Punishment**
   लेविन ने अधिगम की क्रिया में मनोवैज्ञानिक वातावरण तथा प्रेरणा को अधिक महत्व दिया है। लेविन ने अधिगम के मार्ग में आने वाली बाधाओं को भी महत्व दिया है। पुरस्कार से प्रेरित होकर बालक किसी कार्य को करने के लिए अधिक प्रत्यनशील होता है तथा दण्ड के भय से बालक अधिगम के लिए प्रेरित नहीं होता है। अतः दण्ड देते समय ध्यान रखा जाना चाहिए कि यह बालकों में भय उत्पन्न न करे। अतः शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में दण्ड तथा पुरस्कार का प्रयोग सावधानी पूर्वक किया जाना चाहिए।
2. **सफलता तथा असफलता (Success & Failure)**
   इस सिद्धान्त के अनुसार किसी कार्य की सफलता या असफलता व्यक्ति के अहं समावेशन (Ego Involvement)आकांक्षा स्तर तथा मनोवैज्ञानिक संतुष्टि पर निर्भर करती है। व्यक्ति के आकांक्षा स्तर के बहुत कम या अधिक होने पर सीखने की प्रक्रिया में बाधाएँ (Hurdles) आती हैं। अतः छात्रों के आकांक्षा स्तर को एक उपयुक्त स्तर (Reasonable Level) पर बनाए रखना चहिए। लेविन के अनुसार, बहुत आसान कार्य में सफलता तथा बहुत कठिन कार्य में विफलता

क्रमशः सफलता तथा विफलता अनुभव नहीं है। अधिगमकर्त्ता के लिए सफलता का अर्थ निम्न हैं-

- लक्ष्य की प्राप्ति।
- लक्ष्यके क्षेत्र में प्रवेश या लक्ष्यों की प्राप्ति के समीप पहुँचना।
- लक्ष्यकी प्राप्ति की दिशा में प्रगति करना।
- सामाजिक रूप से स्वीकृत लक्ष्य का चुनाव करना।

3. **अभिप्रेरणा (Motivation)**

किसी कार्य या क्रिया की पुनरावृत्ति संज्ञानात्मक संरचना तथा आवश्यकता-तनाव प्रणाली दोनों में परिवर्तन लाती है। परिणास्वरूप लक्ष्य के आकर्षण में परिवर्तन आ जाता है। लेविन इसे लक्ष्य केआकर्षण वैलेन्स (Goal attractiveness valence) में परिवर्तन कहते हैं। वैलेन्स निम्नलिखित में से किसी एक प्रकार से परिवर्तित हो सकता है-

- लक्ष्य के आकर्षण में परिवर्तन हो सकता है, यदि लक्ष्य से सम्बन्धित क्रिया या कार्य की पुनरावृत्ति व्यक्ति के परितृप्त (Satiate) होने तक हो।
- सफलता तथा विफलता के पूर्व अनुभव लक्ष्यों के चुनाव को प्रभावित करते हैं।

अतः शिक्षक द्वारा कक्षा में पुनरावृत्ति या अभ्यास कार्य की बारम्बारता सुनिश्चित करनी चाहिए जिससे छात्रों में लक्ष्य प्राप्ति की अभिप्रेरणा बनी रहे तथा छात्रों द्वारा अच्छे लक्ष्यों के चुनाव को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। लेविन का क्षेत्र सिद्धान्त शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में अभिप्रेरणा पर विशेष जोर देता है।

4. **स्मृति (Memory)-**लेविन क्षेत्र सिद्धान्त स्मृति के बारे में निम्नलिखित तथ्य बताता है-

- कार्य जो उद्देश्यपूर्ण या अर्थपूर्ण नहीं होते है, उनका स्मरण नहीं हो पाता है।
- मनोवैज्ञानिक तनाव के कारण अपूर्ण कार्य पूर्ण कार्य की तुलना में स्मृति में अच्छी तरह से बने रहते हैं।
- वह कार्य जो अनेक आवश्यकताओं की संतुष्टि प्रदान करते हैं, स्मृति में अच्छी तरह से बने रहते हैं तथा जो कार्य सिर्फ एक आवश्यकता की संतुष्टि करते हैं, स्मृति में लम्बे समय तक नहीं रह पाते हैं।

अतः अध्यापक को चाहिए कि वह अधिगम के लिए उचित वातावरण प्रस्तुत करें तथा छात्रों के सम्मुख सीखने के एवं शिक्षण के उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करें। वह छात्रों को समस्या का स्पष्ट ज्ञान भी दें जिससे छात्र उसे हल करने के लिए प्रेरित हों। यह सिद्धान्त सीखने में अवरोधों के महत्व को स्वीकार करता है। अतः सीखने के कार्य में या अधिगम क्रिया में कुछ कठिनाई का होना आवश्यक है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

8. कुर्ट लेविन के संज्ञानात्मक क्षेत्र सिद्धान्त को और किस नाम से जाना जाता है?
9. लेविन के अनुसारअधिगम क्या है?

8.5 टालमैन का चिन्ह अधिगम सिद्धान्त(Tolman's Sign Learning Theory)

एडवर्ड चेस टालमैन (Edward Chace Tolman) (1886-1956) ने सीखने के व्यवहारवादी (Behaviorisitc) तथा संज्ञानात्मक सिद्धान्तों (Cognitive Theories) के एक सम्मिश्रण के रूप में चिन्ह अधिगम सिद्धान्त (Sign Learning Theory) का प्रतिपादन सन् 1932 में किया। उसके अनुसार व्यवहार वस्तुनिष्ठ रूप से निर्धारणीय उद्देश्य के अनुसार नियमित होता है। टालमैन ने व्यवहार का अध्ययन करने के लिए आणविक अभिगमन (Molecular Approach) के स्थान पर एकीकृत अभिगमन (Molar Approach) का प्रयोग किया। उसने व्यवहारवादियों की तरह व्यवहार को छोटी-छोटी इकाइयों में विभक्त करने के स्थान पर उसका समग्र रूप में (as a whole) अध्ययन करने पर बल दिया। टालमैन ने व्यवहार को उद्देश्यपूर्ण परिपूर्णता वाली संज्ञानात्मक प्रक्रिया के रूप में अध्ययन करने पर बल दिया। लक्ष्य केन्द्रित व्यवहार पर बल देने के कारण ही टालमैन के अधिगम सिद्धान्त को उद्देश्यपूर्ण व्यवहारवाद (Purposive Theory) के नाम से भी जाना जाता है। साथ ही इस सिद्धान्त को अन्य नामों जैसे चिन्ह गेस्टाल्ट सिद्धान्त, प्रत्याशा सिद्धान्त तथा उद्देश्य सिद्धान्त से जाना जाता है। उसके सिद्धान्त का वर्णन उसकी पुस्तकों Purposive behaviour in Animals & Men (1932), Drives Towards War (1942) तथा Collected papers in Psychology (1951) में मिलता है।

टालमैन के अनुसार सीखने की प्रक्रिया में प्राणी अपनी संज्ञानात्मक योग्यताओं (Cognitive Abilities) के द्वारा सम्पूर्ण उद्दीपक परिस्थिति का एक मानसिक चित्र (Cognitive Map) विकसित कर लेता है। संज्ञानात्मक चित्र किसी दी गई परिस्थिति में लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उपलब्ध सूचनाओं का एक मानसिक विवरण होता है। लक्ष्य तक पहुँचने के लिए प्राणी उपलब्ध विभिन्न पथों में से सबसे छोटे पथ का अनुसरण करता है। इसे टालमैन ने न्यूनतम प्रयास का नियम (Principle of Least Effect) का नाम दिया। अपने प्रयासों तथा अन्वषेण से प्राणी एक घटना को दूसरी घटना से अथवा एक संकेत या चिन्ह (Sign) को दूसरे संकेत से जोड़ने का ढंग खोजने का प्रयास करता है। इसीलिए टालमैन के अधिगम सिद्धान्त को चिन्ह अधिगम या चिन्ह समग्न अधिगम सिद्धान्त (Sign Gestalt Learning Theory)के नाम से जाना जाता है।

टालमैन के अनुसार प्राणी सीखने की प्रक्रिया के दौरान विशिष्ट उद्दीपकों के लिए विशिष्ट अनुक्रिया करना नहीं सीखता है, अपितु प्राणी लक्ष्य प्राप्ति हेतु उन स्थानों को सीखता है जहाँ पर वस्तुएँ होती हैं अर्थात प्राणी किसी निश्चित अनुक्रिया क्रम (Fixed Movements Sequence)को न सीखकर समग्न परिस्थितियों को समझकर वांछित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु पूर्ण पथ को सीखता है तथा वातावरण की

आवश्यकतानुसार अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। टालमैन ने अधिगम व्यवहार को उद्देश्यपरक माना तथा प्राणी के व्यवहार में प्रशिक्षण एवं अभ्यास या अनुभव के द्वारा परिमार्जन सम्भव है। सीखते समय प्राणी अनुक्रिया केन्द्रित न होकर लक्ष्य केन्द्रित होता है। परिणामस्वरूप सीखते समय प्राणी अपने प्रयासों के प्रतिफल के रूप में कुछ पाने की प्रत्याशा अवश्य रखता है, जिसे टालमैन ने प्रत्याशित पुरस्कार कहा है। प्रतिफल के रूप में प्रत्याशित पुरस्कार पाने पर अधिगम व्यवहार पुष्ट होता है जबकि प्रत्याशित पुरस्कार नहीं पाने पर अधिगम व्यवहार में अवरोध एवं भग्नाशा उत्पन्न होती है। टालमैन ने लुप्त अधिगम का भी समप्रत्यय दिया जो व्यवहार में परिलक्षित होने के पूर्ण काफी समय तक सुप्तावस्था में रहता है परन्तु प्राणी को उपयुक्त परिस्थिति या अभिप्रेरणा मिलने पर वह इस प्रकार का लुप्त अधिगम प्रर्दशित करनें में सक्षम हो पाता है।

8.5.1 अधिगम के प्रकार (Types of Learning)

टालमैन ने अपने अधिगम सिद्धान्त का सन् 1949 में पुनरीक्षण किया तथा अपने शोध पत्र "There is more than one kind of learning"में अधिगम के छः प्रकारों में विभेद किया था जिनका विवरण नीचे दिया गया है-

1. **कैथेक्सिस (Cathexis)-** कैथेक्सिस से अभिप्राय एक ऐसी अर्जित प्रवृत्ति से है जिसमें प्राणी कुछ विशेष वस्तुओं (धनात्मक या ऋणात्मक) को कुछ विशेष प्रणोदों (जैसे भूख) से सम्बन्धित करता है।
2. **तुल्यता विश्वास(Equivalence Belief)-** इस प्रकार के अधिगम में प्राणी किसी सहायक लक्ष्य या वस्तु से वही प्रेरणा प्राप्त करता है जो वह मुख्य लक्ष्य या वस्तु से प्राप्त करता है। टालमैन के अनुसार तुल्यता विश्वास अधिगम में दैहिक प्रणोद (Physiological Drive) की तुलना में सामाजिक प्रणोद (Social Drive) की भूमिका अधिक प्रभावी होती है।
3. **क्षेत्र प्रत्याशा (Field Expectancy)-** क्षेत्र प्रत्याशा अधिगम तब विकसित होता है जब कोई निश्चित वातारण परिस्थिति उसके सम्मुख बार-बार प्रस्तुत होती है। जैसे रास्ते में किसी विशेष वस्तु या चिन्ह के मिलने पर प्राणी आशा करता है कि आगे भी कोई अन्य वस्तु या चिन्ह प्राप्त होगा। इस प्रकार के अधिगम में एकमात्र पुरस्कार, प्राणी की प्रत्याशा (Expectancy) का पूरा होना है।
4. **क्षेत्र संज्ञान ढंग(Field Cognition Mode)-** इस प्रकार के अधिगम में प्राणी समस्या समाधान हेतु अपने प्रत्याक्षणात्मक क्षेत्र (Perceptual Field) को नए ढंग से सुव्यवास्थित करता है।
5. **प्रणोद विभेदन(Drive Discrimination) -** इस प्रकार के अधिगम में प्राणी विभिन्न प्रकार के प्रणोदों में विभेद करते हुए प्रत्येक के लिए एक विशेष प्रकार की अनुक्रिया करना सीखता है अर्थात प्रणोद तथा सम्बन्धित अनुक्रिया के बीच निश्चित सम्बन्ध पाया जाता है।

6. **पेशीय प्रारूप(Motor Pattern)-** इस प्रकार के अधिगम में प्राणी के व्यवहार के साथ कुछ विशेष पेशीय पारूप अनुबन्धित (Conditioned) हो जाते हैं।

8.5.2 टालमैन के अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ

Educational Implications of Tolman's Theory of Learning

टालमैन चिन्ह अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थ निम्नलिखित हैं-

1. अध्यापक को अधिगम क्रिया के लक्ष्य तथा महत्व को भली- भाँति छात्रों के सम्मुख स्पष्ट कर देना चाहिए, जिससे बालक अधिगम में रूचि ले सकें।
2. यह सिद्धान्त प्रारम्भिक कक्षाओं के अधिगम के लिए अधिक उपयोगी है।
3. छात्रों को अधिगम के दौरान संज्ञानात्मक नक्शा विकसित करने में शिक्षक को मदद करनी चहिए। छात्रों को सिखाते समय समझ तथा अवबोध पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
4. शिक्षक को उद्देश्य निर्देशित क्रियाओं के माध्यम से शिक्षण करना चाहिए।
5. शिक्षक के द्वारा अधिगम में वाहय पुरस्कार या अभिप्रेरणा के साथ ही साथ आन्तरिक अभिप्रेरणा पर भी बल दिया जाना चाहिए।
6. बालकों को ऐसे अवसर मिलने चाहिए जिसमें छात्र स्वयं अपने प्रत्यक्षणात्मक क्षेत्र का पुर्नसंगठन कर सकें तथा अपने व्यवहार में परिमार्जन कर सकें।
7. शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में वातावरणीय परिस्थितियों, प्रणोद, पूर्व अधिगम या अनुभव इत्यादि पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
8. प्रभावी अधिगम हेतु शिक्षण की क्रियाओं तथा विधियों पर बल दिया जाना चाहिए।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

10. चिन्ह अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन किसने किया है?
11. टालमैन के अनुसार व्यवहार कैसे नियमित होता है?
12. टालमैन ने व्यवहार का अध्ययन करने के लिए _____के स्थान पर_____ का प्रयोग किया।
13. टालमैन ने अधिगम का कितने प्रकारों में विभेद किया?
14. टालमैन द्वारा दिए गए अधिगम के प्रकारों के नाम लिखिए।

8.6 सारांश

अधिगम अभ्यास तथा अनुभव के द्वारा अधिगमकर्त्ता के व्यवहार में वांछित एवं अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन की प्रक्रिया है। इसे विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है, जैसे अनुबन्धित, प्रयास एवं त्रुटि, सूझ अधिगम, श्रृखंला अधिगम, शाब्दिक अधिगम, पेशीय कौशल अधिगम, संज्ञानात्मक अधिगम इत्यादि।

गेस्टाल्टवादियों का सूझ अधिगम सिद्धान्त मानव अधिगम को उद्देश्यपूर्ण, लक्ष्य केन्द्रित तथा व्यक्ति के संज्ञानात्मक शक्तियों पर आधारित मानता है। कोहलर ने चिम्पांजी पर किए गए प्रयोगों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाला-

1. अधिगमकर्त्ता अधिगम क्रियाओं एवं परिस्थितियों को समग्न रूप में (as a whole) देखता है।
2. परिस्थिति में सम्मिलित सभी प्रमुख कारकों एवं सम्बन्धों का मूल्यांकन करता है।
3. तत्पश्चात समस्या के अन्तर्दृष्टि या सूझ समाधान की खोज करता है।

कुर्ट लेविन के अनुसार, अधिगमकर्त्ता के प्रत्यक्षणात्मक संगठन या जीवन क्षेत्र में पुर्नसंगठन या परिमार्जन की प्रक्रिया अधिगम है। उसने अधिगम में अभिप्रेरणा तथा लक्ष्य के आर्कषण की भूमिका को बताया। व्यक्ति वांछित लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु अपने जीवन स्पेस के संरचना को पुर्नसंगठित करता है। किसी व्यक्ति का भावी व्यवहार इस बात पर निर्भर करता है कि वह अपने संज्ञानात्मक संरचना में पूर्व अनुभव तथा नई सूझ के आधार पर किस तरह वांछित परिवर्तन लाता है।

टालमैन के अनुसार अधिगम का आधार अवबोध तथा संज्ञानात्मक नक्शे या चित्र का विकास है, न कि अनुबन्धन या एस-आर सम्बन्ध का निर्माण करना। एक व्यक्ति किसी विशेष उद्दीपक के प्रति विशेष अनुक्रिया करना नहीं सीखता है अपितु उन स्थानों को सीखने का प्रयास करता है जहाँ वस्तुएँ होती है। वस्तुतः अधिगम की प्रक्रिया में व्यक्ति अनुक्रिया केन्द्रित न होकर लक्ष्य केन्द्रित होता है। प्राणी किसी निश्चित अनुक्रिया क्रम को न सीखकर समग्न परिस्थितियों को समझकर वान्छित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु विभिन्न वैकल्पिक पथों में से किसी एक न्यूनतम पथ का चुनाव करना सीखता है तथा वातावरण की आवश्यकतानुसार अपने व्यवहार में परिर्वतन लाने का प्रयास करता है। टालमैन ने लुप्त अधिगम का भी संप्रत्यय दिया जिसे प्राणी उपयुक्त परिस्थिति या अभिप्रेरणा मिलने पर वह इस प्रकार का लुप्त अधिगम प्रर्दशित करनें में सक्षम हो पाता है।

8.7 शब्दावली

1. **संज्ञानात्मक मनोविज्ञान**- संज्ञानात्मक मनोविज्ञान मनोविज्ञान की एक शाखा है जिसमें संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मरण तथा चिन्तन प्रक्रिया के बारे में अध्ययन किया जाता है।
2. **गेस्टाल्ट (Gestalt)-**जर्मन भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है समग्न, पूर्णाकृतिक या पूर्णाकार।
3. **जीवन क्षेत्र** - व्यक्ति जिन खीचावों या बलों के प्रति अनुक्रिया करता है उसे ही व्यक्ति का जीवन क्षेत्र (Life Space) कहते हैं

8.8 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. गेस्टाल्ट जर्मन भाषा का शब्द है।
2. गेस्टाल्ट (Gestalt) शब्द का अर्थ है समग्र, समग्न, पूर्णाकृतिक या पूर्णाकार।

3. इस सिद्धान्त के प्रतिपादक मैक्स वर्दीमर , वोल्फगेंग कोहलर तथा कुर्ट कोफ्का हैं।
4. गेस्टाल्टवादियों के अनुसार नवीन सूझ की क्षमता विकसित करने की अथवा पूराने सूझ को सुधारने की प्रक्रिया को सीखना या अधिगम कहा जाता है।
5. अन्तर्दृष्टि अधिगम के सिद्धान्तों के नाम हैं-
    i. प्रैगनांज का सिद्धान्त
    ii. सम्पूर्णता का सिद्धान्त
    iii. मनोभौतिक समरूपता का सिद्धान्त
6. गेस्टाल्ट अधिगम का मौलिक सिद्धान्त प्रैगनांज का सिद्धान्त है।
7. प्रैगनांज के सिद्धान्त के आधार पर गेस्टाल्टवादियों ने निम्नलिखित नियमों का प्रतिपादन किया है-
    i. समाप्ति या समापन का नियम
    ii. समानता का नियम
    iii. समीपता का नियम
    iv. सममितता का नियम
    v. निरन्तरता का नियम
    vi. सामान्य भाग्य या परिणाम का नियम
8. कुर्ट लेविन के संज्ञानात्मक क्षेत्र सिद्धान्त को क्षेत्र मनोविज्ञान]टोपोलोजिकल मनोविज्ञान या वेक्टर मनोविज्ञान भी कहते हैं।
9. लेविन के अनुसार, जीवन क्षेत्र के संज्ञानात्मक संरचना में परिवर्तन ही अधिगम या सूझ का विकास है।
10. एडवर्ड चेस टालमैन ने चिन्ह अधिगम सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।
11. टालमैन के अनुसार व्यवहार वस्तुनिष्ठ रूप से निर्धारणीय उद्देश्य के अनुसार नियमित होता है।
12. आणविक अभिगमन , एकीकृत अभिगमन
13. टालमैन के अधिगम को छः प्रकारों में विभेद किया।
14. टालमैन द्वारा दिए गए अधिगम के प्रकारों के नाम हैं-
    i. कैथेक्सिस
    ii. तुल्यता विश्वास
    iii. क्षेत्र प्रत्याशा
    iv. क्षेत्र संज्ञान ढंग
    v. प्रणोद विभेदन
    vi. पेशीय प्रारूप

8.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अग्रवाल, जे0 सी0 (2003) एसेन्शियलस ऑफ एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. चौहान, एस0 एस0 (2000) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, विकास पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
3. गुप्ता, एस0 पी0 (2004) उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
4. मंगल, एस0 के0 (2009) एडवान्सड एजुकेशनल साइकोलोजी, पी0एच0आई0 लर्निगं प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली।
5. सिंह , अरूण कुमार (.2000) उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. सूझ अधिगम सिद्धान्त तथा इसके शैक्षिक निहितार्थों की व्याख्या कीजिए।
2. गेस्टाल्ट अधिगम सिद्धान्त के प्रमुख नियमों को स्पष्ट कीजिए। गेस्टाल्ट अधिगम सिद्धान्त के शैक्षिक निहितार्थोंको लिखिए।
3. टालमैन के चिन्ह अधिगम सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए तथा इसके शैक्षिक निहितार्थों का वर्णन कीजिए।
4. टालमैन के अनुसार अधिगम के प्रकारों का वर्णन कीजिए।
5. कुर्ट लेविन के क्षेत्र अधिगम सिद्धान्त की विवेचना कीजिए। इसके शैक्षिक निहितार्थों का वर्णन कीजिए।
6. अधिगम की प्रकिया में सूझ के महत्व को स्पष्ट कीजिए। इस सम्बन्ध में किए गए कुछ प्रयोगों का वर्णन कीजिए।

इकाई 9- गेने की सीखने की दशा , मैसलो का सीखने का मानवीय मनोविज्ञान

Gagne's Conditions of Learning, Maslow's Humanistic Psychology of Learning

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 सीखने की दशाएँ (राबर्ट गेने)
9.4 सीखने का अर्थ (गेने)
9.5 सीखने की परिभाषाएँ
9.6 अधिगम से संबंधित अवधारणाएँ
9.7 गेनेद्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला
9.8 मानव अधिगम योग्यताओं का वर्गीकरण
9.9 मानवीय परिवेश में सीखना
9.10 मैसलो का आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त
9.11 मैसलो की आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त की आलोचना
9.12 सारांश
9.13 शब्दावली
9.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
9.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
9.16 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.17 निबन्धात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

सीखना एक व्यापक शब्द है। सीखना जन्मजात प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है। व्यक्ति जन्मजात प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर जो भी क्रियाएँ करता है, वह अपनी परिस्थितियों से समायोजन स्थापित करने के लिए होती हैं। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार सीखना एक मानसिक प्रक्रिया है। मानसिक प्रक्रिया की

अभिव्यक्ति व्यवहारों के द्वारा होती है। मानव-व्यवहार अनुभवों के आधार पर परिवर्तित और परिमार्जित होता रहता है। सीखने की प्रक्रिया में दो तत्व निहित हैं-परिपक्वता और पूर्व अनुभवों से लाभ उठाने की योग्यता। उदाहरणार्थ-यदि बालक के सामने एक जलती अंगीठी रखी है तो वह उसे जिज्ञासावश छूता है और छूते ही उसका हाथ जल जाता है, इसलिए वह हाथ को तेजी से हटा लेता है और कभी उसके पास नहीं जाता, क्योंकि उसने अपने अनुभव से सीख लिया कि आग उसे जला देगी। इस प्रकार सीखना पूर्व अनुभव द्वारा व्यवहार में प्रगतिशील परिवर्तन है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि सीखना ही शिक्षा है। सीखना और शिक्षा एक ही क्रिया की ओर संकेत करते हैं। दोनों क्रियाएँ जीवन में सदा और सर्वत्र चलती रहती हैं। बालक परिपक्वता की ओर बढ़ता हुआअपने अनुभवों से लाभ उठाता हुआ, वातावरण के प्रति जो उपयुक्त प्रतिक्रिया करता है, वही 'सीखना' है। जैसा कि ब्लेयर, जोन्स और सिम्पसन ने कहा है-

''व्यवहार में कोई परिवर्तन जो अनुभवों का परिणाम है और जिसके फलस्वरूप व्यक्ति आने वाली स्थितियों का भिन्न प्रकार से सामना करता है-सीखना कहलाता है।''

"Any change of behaviour which is a result of experience and which causes people to face later situations differently may be called learning."

सीखने के स्वरूप एवं अर्थ को अधिक स्पष्ट करने के लिए मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई परिभाषाओं का अध्ययन करना आवश्यक है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्धयन के पश्चात आप:-

1. सीखने का अर्थ व सीखने की दशाएँ की दशओं को समझ सकेंगे (राबर्ट गेने)।
2. अधिगम से संबंधित अवधारणाएँ व गेने द्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला को समझ सकेंगे।
3. मानव अधिगम योग्यताओं के वर्गीकरण को समझ सकेंगे ।
4. गेने द्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला को जान पाएंगे।
5. मैसलो का आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त को समझ सकेंगे।

9.3 सीखने की दशा (राबर्ट गेने)

यह सिद्धान्त सीखने के विभिन्न प्रकारों तथा स्तरों को प्रतिपादित करता है। इस वर्गीकरण का महत्व यह है कि विभिन्न प्रकार का सीखना विभिन्न प्रकार के अधिगम के लिए अनुदेशन की आवश्यकता होती है।

गेने ने सीखने को पाँच मुख्य वर्गों में विभाजित किया है:- मौखिक सूचना, बौद्धिक कौशल, संज्ञानात्मक रणनीति, सत्यात्मक कौशल तथा अभिवृत्तियाँ।

प्रत्येक प्रकार के अधिगम हेतु विभिन्न प्रकार की आन्तरिक व बाह्य दशाएँ आवश्यक होती हैं। उदाहरण के लिए संज्ञानात्मक रणनीति को सीखने व समस्या समाधान हेतु विकसित किए जाने वाले निराकरण को अभ्यास करने के अवसर मिलने चाहिए। अभिवृत्तियों को सीखने हेतु अधिगमकर्त्ता को विश्वसनीय रोल मॉडल उपलब्ध होने चाहिए अथवा प्रभावशाली तर्कों की आवश्यकता होती है।

बौद्धिक कौशलों में अधिगम से संबंधित कार्यों का निराकरण जटिलता के आधार पर पदानुक्रमित किया जा सकता है।

गेने के अनुसार बौद्धिक कौशलों हेतु सीखने से संबंधित कार्य इस प्रकार हैं:- सांकेतिक सीखना, उद्दीपन अनुक्रिया सीखना, सरल श्रृंखला का सीखना, शाब्दिक साहचर्य का सीखना, विभेदीकरण सीखना, सम्प्रत्यय सीखना, नियम सीखना, समस्या समाधान।

इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त के 9 अनुदेशन से संबंधित क्रियाओं और उनके संगति का संज्ञानात्मक प्रक्रियाओं का उल्लेख भी निम्न प्रकार किया गया है:-

1. अवधान (आवधान की प्राप्ति)
2. प्रत्याशा (अधिगमकर्त्ता को उद्देश्यों के बारे में सूचित करना)
3. पुनःप्राप्ति (पूर्व अधिगम का प्रत्यास्मरण)
4. चयनात्मक प्रत्यक्षीकरण (उद्दीपक उपस्थिति)
5. शाब्दिक कुटीकरण (अधिगमकर्त्ता को निर्देशन देना)
6. अनुक्रिया (दक्षता की प्राप्ति)
7. पुनर्बलन (पृष्ठपोषण प्रदान करना)
8. पुनःप्राप्ति (दक्षता का मूल्यांकन)
9. सामान्यीकरण (अधिगमस्थानान्तरण व अधिगम के संबंधों को मजबूत करना)

9.4 सीखने का अर्थ (गेने)

गेने के अनुसार मानव-अधिगम एक जटिल प्रक्रिया है। इस जटिलता को समझने के लिए अधिगम की दशाएँ व समस्त अनुदेशन क्रियाओं को समझना आवश्यक है। जब तक अधिगम की दशाएँ पूर्ण नहीं होंगी, तब तक किसी भी अनुक्रिया को सीखा नहीं जा सकता। अधिगम मानवीय बौद्धिक विकास के लिए एक महत्वपूर्ण अवयव है। गेने द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त को अधिगम को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है:-

1. अधिगम एक संचयी प्रक्रिया है। अर्थातसर्वप्रथम हम आसान कार्यों को सीखते हैं, उसके बाद ही जटिल कार्यों को सीख पाते हैं। कोई भी संप्रत्यय सीखने हेतु हम 'सरल से जटिल' सूत्र का अनुसरण करते हैं। मानवीय बौद्धिक विकास मानवीय अभिक्षमता का जटिल निर्माण है।
2. अधिगम के द्वारा एक व्यक्ति समाज का एक कार्यात्मक सदस्य बन सकता है।
3. अधिगम द्वारा विभिन्न प्रकार के मानव व्यवहार को सीखा जा सकता है। अधिगम हेतु व्यक्ति की आन्तरिक दशाएँ व व्यक्ति जिस वातावरण में रहता है, जिम्मेदार होते हैं । अर्थात अधिगम व्यक्ति के बाह्य व आन्तरिक दशाओं का प्रतिफलन है।

9.5 सीखने की परिभाषा Definitions Of Learning

मॉर्गन और गिलीलैण्ड के अनुसार- ''सीखना, अनुभव के परिणामस्वरूप प्राणी के व्यवहार में कुछ परिमार्जन है, जो कम से कम कुछ समय के लिए प्राणी द्वारा धारण किया जाता है।''

गेट्स व अन्य–सीखनाअनुभव और प्रशिक्षण के परिणाम्स्वरुप व्यावहार में परिर्वतन है।

वुडवर्थ - नवीन ज्ञान और नवीन प्रतिक्रियाओं को प्राप्त करने की प्रक्रिया सीखने की प्रक्रिया है।

स्किनर - प्रगतिशील व्यवहार दृव्यवस्थापन की प्रक्रिया को सीखना कहते हैं।

मनोवैज्ञानिक बोआज (Boaz)-''अधिगम एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति विभिन्न आदतें, ज्ञान एवं दृष्टिकोण, सामान्य जीवन की मांगों की पूर्ति के लिए अर्जित करता है।''

"Learning is the process which the individual acquires various habits, knowledge and attitudes that are necessary to meet the demand of life in general." **- Prof. Boaz.**

वुडवर्थ के अनुसार - ''जब किसी नए कार्य का करना सबलीकृत हो जाता है और कालान्तर की क्रियाओं में वह पुनः प्रकट होता है, तो उस नए कार्य का करना सीखना कहलाता है।''

"Learning consists in doing something new provided the new activity is reinforced and reappears in latter activities..." **- Wood Worth.**

9.6 अधिगम से संबंधित अवधारणा

अधिगम एवं अनुदेशन के प्रति गेने ने निम्नलिखित अभिधारणाएँ विकसित की हैं:-

1. चूंकि अधिगम एक जटिल व विविधतापूर्ण कार्य है, इसलिए विभिन्न अधिगम परिणाम के लिए अलग-अलग अनुदेशन की आवश्यकता होती है।
2. अधिगम की घटनाएँ इस कदर अधिगमकर्त्ता पर घटित होती हैं कि वे अधिगम या सीखने हेतु विशिष्ट दशाओं को जन्म देती हैं। नए कौशलों को सीखने हेतु जो भी अधिगमकर्त्ता से संबंधित आन्तरिक दशाएँ चाहिएवे अधिगम की आन्तरिक दशाएँ कहलाती हैं और जो भी बाह्य उद्दीपकों (वातावरण), जिनकी मदद से आन्तरिक दशाएँ समर्गित होती हैं, फलस्वरूप अधिगम प्रक्रिया पूर्ण होती है, वे अधिगम की बाह्य दशाएँ कहलाती हैं।

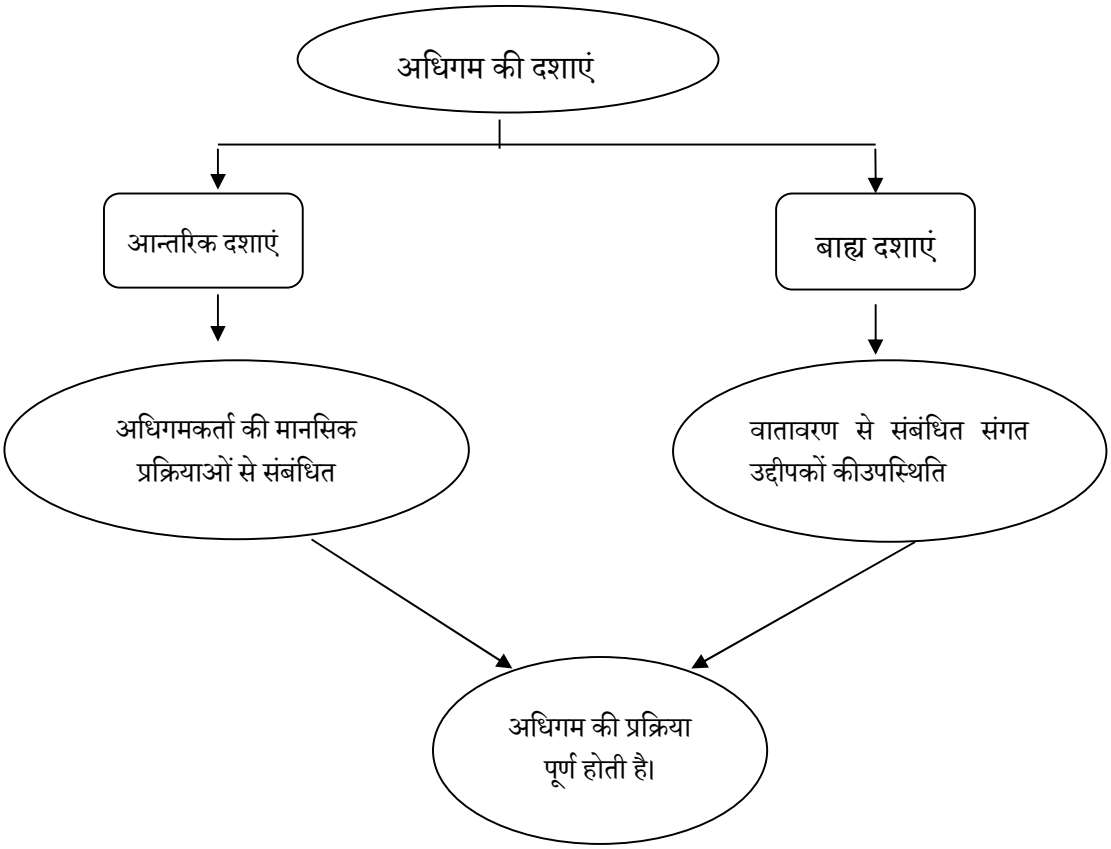

अधिगम का पदानुक्रम यह परिभाषित करता है कि कौन सी बौद्धिक कुशलता सीखी जानी है व इस हेतु अनुदेशन का क्रम क्या होगा ?

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. गेने द्वारा प्रतिपादित कार्य विश्लेषण को कितने भागों में बांटा गया है:-
   a. 6 b. 8 c. 10 d. 12
2. गेने द्वारा प्रतिपादित 'सरल श्रृंखला का सीखना' किस पद/क्रम (Steps) पर आता है?
   a. प्रथम b. दूसरे c. तीसरे d. छठे
3. गेने द्वारा प्रतिपादित 'समस्या समाधान सीखना' किस पद/क्रम (Steps) पर आता है?
   a. दूसरे b. चौथे c. छठे d. आठवें
4. अधिगम की कौन सी दशाएँ प्रभावित करती हैं ?
   a. आन्तरिक दशाएँ
   b. बाह्य दशाएँ
   c. दोनों दशाएँ
5. ''सीखना आदतों, ज्ञान और अभिवृत्तियों का अर्जन है।'' यह परिभाषा है:-
   a. स्किनर b. वुडअर्थ
   c.क्रानवेक d. क्रो और क्रो

9.7 गैने द्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला

1. सांकेतिक सीखना
2. उद्दीपन अनुक्रिया सीखना
3. शाब्दिक साहचर्य सीखना
4. विभेदीकरण सीखना
5. सम्प्रत्यय सीखना
6. नियम सीखना
7. समस्या समाधान सीखना

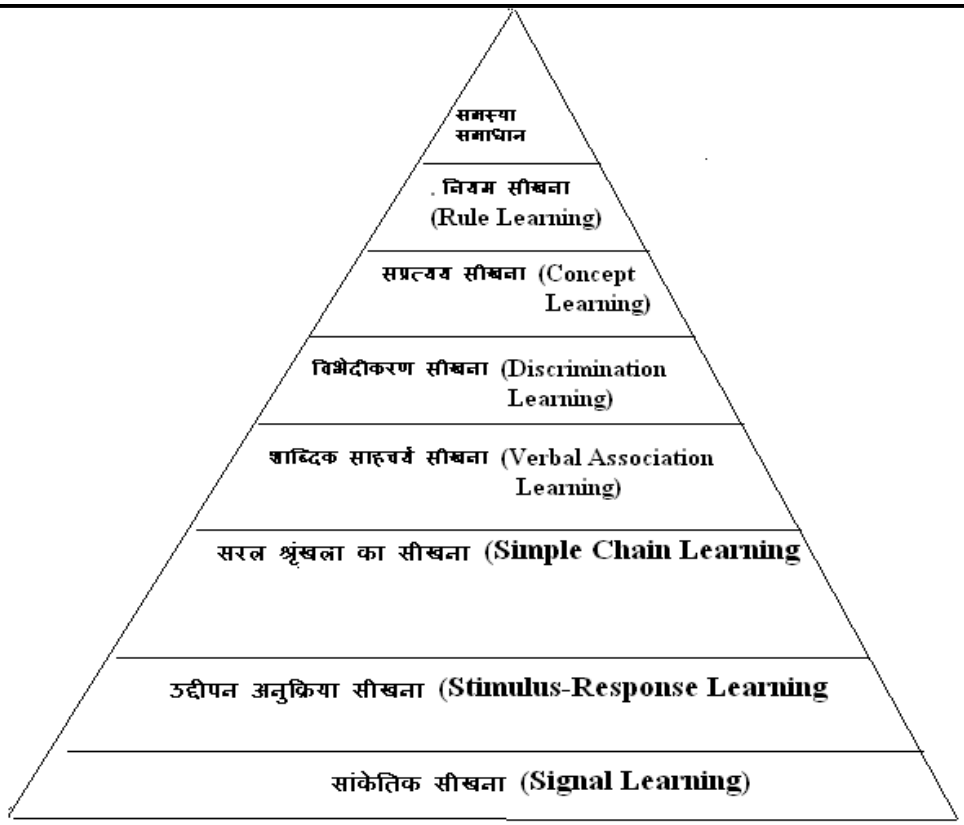

1. **सांकेतिक सीखना (Signal Learning)**
   सांकेतिक सीखना क्लासिकी अनुबंधन सीखने के समान होता है, जिसमें कोई तटस्थ उद्दीपक के साथ कोई स्वाभाविक उद्दीपक (Natural Stimulus or Unconditional Stimulus) को एक साथ कई बार दिया जाता है। जैसे-पवलव के क्लासिकी अनुबंधन प्रयोग में घंटी की आवाज (एक तटस्थ उद्दीपक) तथा भोजन (स्वाभाविक उद्दीपक) के साथ-साथ कुछ प्रयास तक देने पर कुत्ता मात्र घंटी की आवाज पर लार का स्राव करना सीख गया था। इस तरह का सीखना सांकेतिक सीखना के उदाहरण हैं। पवलव के क्लासिकी अनुबंधन को मनोवैज्ञानिकों ने टाईप एस अनुबंधन (Type-S Conditioning) भी कहा है।
2. **उद्दीपन अनुक्रिया सीखना(Stimulus Response Learning)**
   उद्दीपन अनुक्रिया सीखना में प्राणी किसी उद्दीपक के प्रति एक ऐच्छिक क्रिया (Voluntary Response) किया करता है, जिसका परिणाम उसे सुखद प्राप्त होता है। वह धीरे-धीरे उस उद्दीपक के प्रति वही अनुक्रिया करना सीख जाता है। स्किनर का क्रिया प्रसूत अनुबंधन था, जिसे नैमित्तिक अनुबंधन (Instrumental Conditioning) भी कहा जाता है। जिसमें स्किनर बॉक्स

(Skinner Box) में चूहा लिवर दबाने की प्रक्रिया को सीख लेता है। स्किनर के नैमित्तिकअनुबंधन को मनोवैज्ञानिकों ने टाईप-आर अनुबंध (Type-R Conditioning) भी कहा है।

3. **सरल श्रंखला का सीखना (Stimulus Response Learning)**

इस तरह के सीखना से तात्पर्य एक क्रम (Sequence) में होने वाले अलग-अलग कई उद्दीपन अनुक्रिया संबंधों के सेट से बताया है। इस प्रकार का सीखना पेशीय सीखना (Motor Learning) में पाया जाता है। जैसे-कार चलाना, दरवाजा खोलना, तबला बजाना आदि ऐसे पेशीय सीखना के उदाहरण हैं। जिसमें कई छोटी-छोटी अनुक्रियाएँ एक क्रम में होती हैं। जब ये सारी अनुक्रियाएँ आपस में संबंधित होती हैं, तब व्यक्ति कार चला पाता है। दरवाजा खोल पाता है या तबला बजा पाता है।

4. **शाब्दिक साहचर्य सीखना (Verbal Association Learning)**

इसमें व्यक्ति को उद्दीपक अनुक्रिया का ऐसा क्रम (Sequence) सीखना होता है, जिसमें शाब्दिक अभिव्यक्ति (Verbalization) निहित होती है। जैसे-कविता याद करना, शब्दावली सीखना, कहानी याद करना आदि शाब्दिक साहचर्य के उदाहरण हैं।

5. **विभेदीकरण सीखना (Learning Discrimination)**

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इसमें व्यक्ति विभिन्न उद्दीपनों के प्रति विभिन्न अनुक्रिया करना सीखता है। जैसे-बालकों द्वारा त्रिभुज एवं चर्तुभुज में अंतर सीखना, बीजगणित तथा अंकगणित में अंतर सीखना, फुटबाल तथा क्रिकेट बाल में अंतर सीखना आदि, विभेदीकरण सीखना के कुछ उदाहरण हैं।

6. **संप्रत्यय सीखना (Concept Learning)**

कई वस्तुओं के सामान्य गुणों के आधार पर कोई विशेष अर्थ को सीखना संप्रत्यय सीखना कहा जाता है। जैसे-भालू, बाघ, सिंह, सियार शब्दों में एक सामान्य गुण अर्थात इनमें जंगली पशु का संप्रत्यय छिपा है। यहाँ जंगली पशु के संप्रत्यय को सीखना, संप्रत्यय सीखनाकहा जाता है।

7. **नियम सीखना (Rule Learning)**

नियम (Rule or Principle)का सीखना एक महत्वपूर्ण सीखना है। इस तरह का सीखना संप्रत्यय सीखना पर आधारित होता है। नियम से दो या दो से अधिक (Concepts) के बीच एक नियमित संबंध भण्डार विकसित होता है। जैसे-बालकों द्वारा व्याकरण, गणित, विज्ञान आदि के विभिन्न नियमों का सीखना इसी तरह के सीखने की श्रेणी में आता है।

8. **समस्या समाधान सीखना (Problem Solving Learning)**

समस्या समाधान सीखना गेने के श्रृंखलाबद्ध सीखना की सबसे ऊपरी अवस्था (Highest Stage) है। इस तरह के सीखना में व्यक्ति किसी नियम (Principle or Rule) का उपयोग करके कोई समस्या का समाधान करता है और एक नए तथ्य को सीखता है।

नोट - गेने (Gagne 1965) ने सीखने के आठ महत्वपूर्ण तथ्य दिए हैं। इसमें चौथी अवस्था के सीखना अर्थात शाब्दिक साहचर्य (Verbal Association) का सीखना तथा इनसे ऊपर के अन्य सभी स्तरों का सीखना ही शिक्षकों के लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

9.8 मानव अधिगम योग्यताओं का वर्गीकरण

गेने द्वारा सीखने के लिए पाँच क्रियाओं व दशाओं को बताया गया है। जैसे-शाब्दिक सूचना, बौद्धिक कौशल, संज्ञानात्मक आव्यूह रचना, अभिवृत्तियां तथा गामक कौशल।

प्रत्येक प्रकार के सीखने के लिए विभिन्न प्रकार की आन्तरिक व बाहरी दशाओं की आवश्यकता होती है। ग्रेडलर द्वारा 1997 में गेने की सीखने की दशाओं को निम्न चार्ट द्वारा बताया गया है:-

मानवीय योग्यताओं के प्रकार (Typesof Human Capability)	**दशा (Conditions)**	**अनुदेशन हेतु मुख्य सिद्धान्त (Principles for Instructional Events)**
शाब्दिक सूचना (Verbal Information)	संचित सूचना की पुनः प्राप्ति जो अधिगमकर्त्ता की आन्तरिक दशाओं को समर्थित करे। ● संगठित सूचनाओं की पूर्व उपस्थिति नई सूचनाओं को संसाधित करने हेतु आव्यूह रचना।	● सूचना के कूटीकरण हेतु अर्थपूर्ण संदर्भ उपलब्ध कराना। ● सूचना को इस प्रकार संगठित करना कि वह हिस्सों में सीखी जा सके।
बौद्धिक कौशल (Intellectual Skills)	मानसिक संक्रियाएँ जिन पर व्यक्तिगत रूप से वातावरण का प्रभाव होता है। ● विभेदन ● मूर्त व परिभाषित संप्रत्यय ● नियम अनुप्रयोग ● समस्या समाधान ● ये आन्तरिक दशाएँ निम्न प्रकार से अधिगम को समर्थित करती हैं:- ● पूर्व आवाश्यक कौशलों का प्रत्यास्मरण ● नवीन अधिगम हेतु विभिन्न प्रकार की	● अलग-अलग मूर्त उदाहरणों तथा नियमों को उपलब्ध कराना। ● उदाहरणों से विभिन्न प्रकार से अंर्तक्रिया करने के अवसरों को उपलब्ध कराना। ● सीखने वालों का नई परिस्थितियों में मूल्यांकन करना।

	अनुक्रियाएँ • भिन्न प्रकार की परिस्थितियों व सन्दर्भों में नवीन कौशलों का अनुप्रयोग	
संज्ञानात्मक आव्यूह रचना (Cognitive Strategies)	आन्तरिक दशाएँ जिसके द्वारा अधिगमकर्त्ता अपनी सोच व अधिगम को नियंत्रित व नियमित करता है। • कार्य विशिष्ट • सामान्य • प्रशासित	• कार्य विशेषित होने पर रणनीति का वर्णन करना। • कार्य के सामान्य होने पर रणनीति प्रदर्शित करना। • पृष्टपोषण व सहायता के साथ रणनीति विशिष्ट अभ्यास का अवसर प्रदान करना।
अभिवृत्ति (Attitude)	आन्तरिक दशाएँ अर्थात अधिगमकर्त्ता की पूर्ववृत्ति जो कि उसके कार्य चयन को प्रभावित करता है।	• ऐसा मॉडल प्रदान करना जो सकारात्मक व्यवहार और पुनर्बलन पर आधारित होकर क्रियाशील हो। • सीखने वाले के द्वारा व्यवहार प्रदर्शित करने पर उसे पुनर्बलन उपलब्ध कराना।
गामक कौशल (Motor Skills	शारीरिक क्रियाओं को क्रमबद्ध तरीके से सम्पादित करने की योग्यता। इसके अंतर्गत तीन स्तर हैं:- • क्रियाओं की क्रमबद्धता को सी,खना • क्रियाओं का अभ्यास करना • वातावरण से प्रत्युत्तर प्राप्त होने पर क्रियाओं को संशोधित करना	• उपनियमित कार्यवाही की स्थापना एवं मानसिक पूर्वाभ्यास करना। • सही पृष्ठपोषण सहित कौशलों की अनेक पुनरावृत्तियों को व्यवस्थित करना।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

6. पवलव के क्लासिकी अनुबंधन को मनोवैज्ञानिकों ने क्या कहा है ?
7. स्किनर के नैमित्तिक अनुबंधन को मनोवैज्ञानिकों ने क्या नाम दिया है ?
8. समस्या समाधान ऊपरी अवस्था है अथवा निम्न ?
9. गेने ने मानवीय योग्यताओं को कितने भागों में बांटा है ?

   A. तीन B. चार C.पाँच D. छः
10. शारीरिक क्रियाओं को क्रमबद्ध तरीके से सम्पादित करने की योग्यता कहलाती है -

A. गामक कौशल B. अभिवृत्ति

C. संज्ञात्मक आव्यूह रचना D. बौद्धिक कौशल

11. मानसिक संक्रियाएं जिन पर व्यक्तिगत रूप से वातावरण का प्रभाव होता है, उनको कहा जाता है-

A. शाब्दिक सूचना B.बौद्धिक कौशल

C. संज्ञात्मक आव्यूह रचना D. गामक कौशल

9.9 मानवीय परिवेश में सीखना Learning in Humanistic Perspectives

मानव एक जागृत प्राणी है, वह जीवन भर सीखता रहता है और अपने सीखे हुए ज्ञान को आने वाली पीढ़ी को स्थानान्तरित करता रहता है। मनोवैज्ञानिक मैसलो 1968 और रोजर 1983 ने बताया कि मनुष्य अपनी आकांक्षा और आवश्यकताओं के आधार पर सीखता है। इसके लिए मजबूत धारणा, आत्मसम्मान तथा आत्म यर्थाथीकरण का होना आवश्यक है। मनुष्य को उच्च स्तर पर पहुँचने के लिए सही दिशा या मार्ग का ज्ञान होना आवश्यक है। मैसलो के अनुसार जब व्यक्ति की बुनियादी आवश्यकता की पूर्ति होती है या वह उनसे संतुष्ट हो जाता है तब वह अपनी उच्च आकांक्षाएँ , आत्मसम्मान और यर्थाथीकरण के बारे में सोचेगा। उनका सिद्धान्त इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति क्या अपील कर रहा है अर्थात वह किस वस्तु की कमी महसूस कर रहा है। जैसे-एक छात्र जो थका, भूखा, प्यासा, चिन्तित, धमकाया हुआ है, वह पूर्ण रूप से सीखने में अपनी शक्ति नहीं लगा सकता। जबकि दूसरा छात्र पूर्ण सुरक्षित व स्वस्थ है, वह उस छात्र की अपेक्षा अधिक सीख पाएगा। रोजर ने बताया कि छात्रों की आवश्यकता के अनुसार उन्हें सीखने का स्वतंत्रतापूर्वक मौका दिया जाए और अध्यापकों से उनके व्यक्तिगत संपर्क अच्छे होने चाहिए और अध्यापक को छात्रों की भावनाओं को पहचानकर उनके साथ घुल-मिल जाना चाहिए। अध्यापक द्वारा छात्रों की पसन्द को ध्यान में रखते हुए उनको उचित मार्गदर्शन दिया जाना चाहिए। एक वयस्क सीखने वाले द्वारा इन सिद्धान्तों का पालन किया जाना चाहिए। जैसे-सक्रिय, आत्म निर्देशित, समस्या केंद्रित, अनुभव से संबंधित, प्रासंगिक रूप में जरूरती, आन्तरिक रूप से प्रेरित, प्रभावशाली तरीके से सीखने का वातावरण उसमें होना आवश्यक है, तभी अधिगम अधिक होगा।

9.10 मैसलो का आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त Maslow's Theory Of Hierarchy of Needs

मैसलो (1943, 1954) ने अभिप्रेरणा संबंधी जो सिद्धान्त प्रतिपादित किया है, उसे आवश्यकता अनुक्रमिता सिद्धान्त कहते हैं। यह एक काफी लोकप्रिय सिद्धान्त रहा है। इसकी मान्यता है कि व्यक्ति का व्यवहार विभिन्न प्रकार के प्रेरकों या आवश्यकताओं द्वारा निर्देशित होता है। मैसलो के अनुसार आवश्यकताओं का विकास एक निश्चित क्रम में होता है। सर्वप्रथम निम्न क्रम आवश्यकताओं (Lower Order Needs) का और उसके बाद उच्च क्रम आवश्यकताओं (Higher Order Needs) का विकास होता है। इनके विकास का क्रम निम्नवत है:-

1. दैहिक आवश्यकताएँ (Physiological Needs)
2. सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ (Safety Needs)
3. सम्बन्धन की आवश्यकताएँ (Need of Belongingness)
4. सम्मान की आवश्यकता (Need of Esteem)
5. संज्ञानात्मक आवश्यकताएँ (Cognitive Needs)
6. सौन्दर्यबोधी आवश्यकताएँ (Aesthetic Needs)
7. आत्मसिद्धि की आवश्यकता (Need of Self-Actualization)

मैसलो के अनुसारदैहिक एवं सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ निम्न (Lower) और शेष उच्च(Higher) आवश्यकताएँ हैं। सामाजिक जीवन में इन्हीं का महत्व अधिक होता है।

मैकग्रेगर (1957) के अनुसार मैस्लो के सिद्धान्त के मुख्य अभिग्रह निम्नांकित हैं:-

1. आवश्यकताओं के विकास में एक निश्चित क्रम पाया जाता है। निम्न (Lower)आवश्यकताओं की संतृप्ति के बाद ही उच्च (Higher) आवश्ययकताओं का प्रादुर्भाव होता है। अर्थात जब तक निचली आवश्यकता की पूर्ति तथा विकास नहीं हो जाता है तब तक उच्च आवश्यकताएँ सक्रिय प्रेरक का कार्य नहीं करती हैं।
2. वयस्क प्रेरक जटिल होते हैं। अर्थात उनमें व्यवहार के निर्धारण में कोई एक अकेला प्रेरक ही कार्य नहीं करता है, बल्कि एक समय पर एक से अधिक प्रेरक सक्रिय रहते हैं।

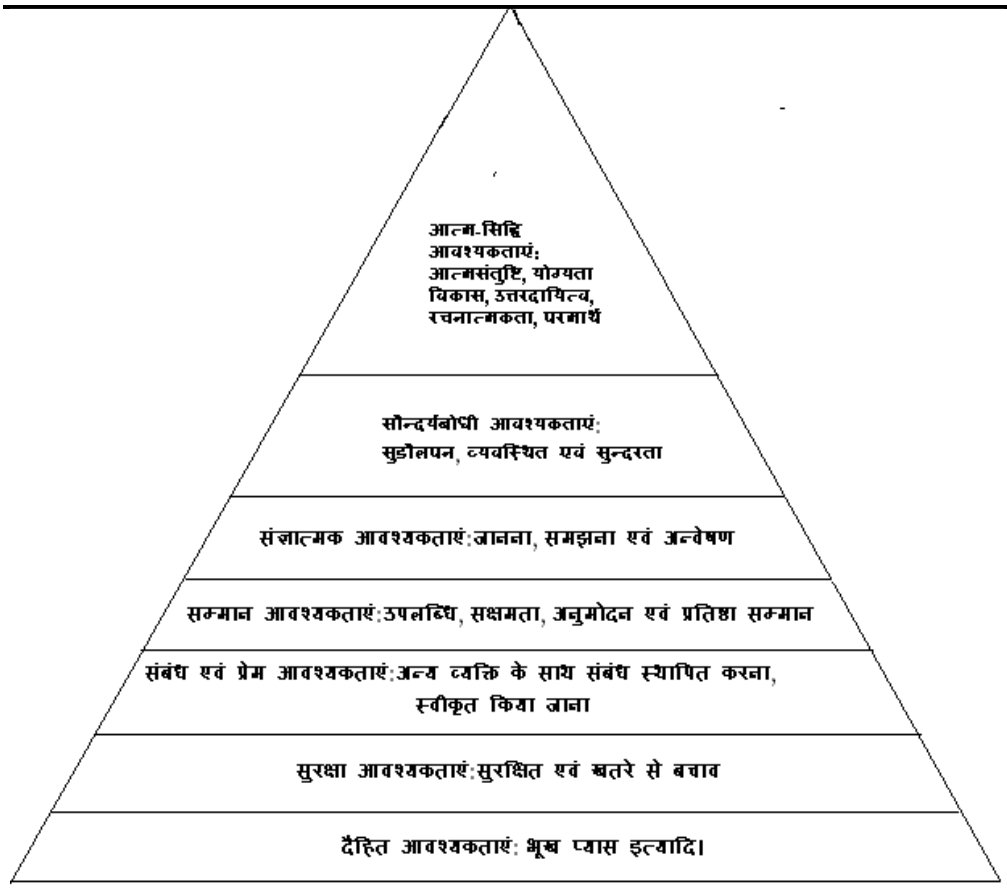

3. जिस आवश्यकता की पूर्ति हो जाती है वह प्रेरक नहीं रह जाती है। असंतुष्ट आवश्यकताएँ ही प्रेरक का कार्य करती हैं। किसी निम्न आवश्यकता की पूर्ति हो जाने पर ही उच्च आवश्यकता का विकास होता है।
4. निम्न आवश्यकताओं की पूर्ति का निश्चित साधन होता है। जैसे-भूख की पूर्ति भोजन से होगी, परन्तु उच्च आवश्यकताओं की पूर्ति अनेकानेक रूपों में हो सकती है। जैसे-सम्मान पाने के लिए कोई नेता, कोई वैज्ञानिक, कोई अधिकारी तो कोई लेखक बनना पसन्द कर सकता है या एक के अतिरिक्त और भी माध्यमों का सहारा ले सकता है।
5. व्यक्ति विकास या वृद्धि (Growth) चाहता है। कोई भी व्यक्ति केवल दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित नहीं रहना चाहता है। सामान्यतः व्यक्ति उच्च स्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहता है।

निम्न क्रम आवश्यकता (Lower Order Needs)

1. **दैहिक आवश्यकता (Physiological Needs)-** इन्हें भौतिक आवश्यकताएँ भी कहा जाता है। अस्तित्व की रक्षा के लिए ये अत्यावश्यक हैं। भूख, प्यास तथा यौन आवश्यकताएँ इसी वर्ग में आती हैं। इनकी पूर्ति आवश्यक होती है। इनमें अत्यतिधक प्रेरक क्षमता होती है। जीवन की रक्षा के लिए इनकी पूर्ति आवश्यकत होती है। एक कहावत भी है, यदि पेट ही नहीं भरता है तो व्यक्ति आगे की क्या सोच पाएगा (Maslow, 1943)।
2. **सुरक्षात्मक आवश्यकता (Safety Needs)-** दैहिक आवश्यकताओं की अपेक्षित रूप में पूर्ति होने के पश्चात् व्यक्ति में सुरक्षा आवश्यकताओं का प्रभाव दिखाई पड़ने लगता है। व्यक्ति अपनी तथा अपनी वस्तुओं की सुरक्षा चाहता है। जैसे-आग से सुरक्षा, दुर्घटना से बचना, आर्थिक सुरक्षा, चौरी से बचाव एवं स्वास्थ्य की सुरक्षा इत्यादि।

उच्च क्रम आवश्यकता (Higher Order Needs)

3. **सम्बन्धन आवश्यकता (Belongingness Needs)** - निम्न क्रम की आवश्यकताओं के विकसित हो जाने के बाद सामाजिक या सम्बन्धन आवश्यकताओं का विकास प्रारम्भ होता है। व्यक्ति स्वभावतः सामाजिक होता है। वह लोगों के साथ संबन्धन स्थापित करके उनका स्नेह, प्रेम एवं सहयोग पाना चाहता है। कुछ लोगों में ये आवश्यकताएँ अधिक तो कुछ में कम प्रबल पाई जाती हैं। इन पर सामाजिक परिवेश का भी प्रभाव पड़ता है।
4. **सम्मान की आवश्यकता (Esteem Needs)-** प्रत्येक व्यक्ति जीवन में मान-सम्मान, प्रतिष्ठा तथा सफलता आदि प्राप्त करना चाहता है। उसमें आत्म-निर्भरता एवं स्वतंत्रता की भावना भी विकसित होने लगती है। इसे आत्म-सम्मान (Self Esteem) की इच्छा कहा जाता है। इसी प्रकार व्यक्ति अपने संबंधियों तथा अन्य लोगों के भी सम्मान की इच्छा रखता है। अर्थात सम्मान की आवश्यकता के दो पक्ष हैं -आत्म सम्मान एवं अन्य व्यक्तियों का सम्मान।
5. **संज्ञात्मक आवश्यकता (Cognitive Needs)-** इसके अंतर्गत जानना, समझना, जिज्ञासा, एवं अन्वेषण आदि को रखा जाता है। मानव जीवन में इनका काफी अधिक महत्व है।
6. **सौन्दर्यबोधी आवश्यकता (Aesthetic Needs)-** व्यक्ति के जीवन में सौन्दर्यानुभूति का विशेष महत्व है। वह स्वयं को, अपनी वस्तुओं को तथा अपने परिवेश को व्यवस्थित एवं सुन्दरतायुक्त देखना चाहता है। सभ्य समाज में इसे विशेष महत्व दिया जाता है।
7. **आत्म-सिद्धि की आवश्यकता (Self-actualization Needs)-** इसे सर्वोच्च आवश्यकता माना जाता है। इसे जीवन का परम ध्येय भी कहा जाता है। जिन लोगों में यह इच्छा प्रबल होती है, वे समाज में अति विशिष्ट स्थान प्राप्त करते हैं। इसका आशय व्यक्ति द्वारा अपनी क्षमता का पूरा विकास करना है। व्यक्ति जो बन सकता है, वह बनने की इच्छा ही आत्म-सिद्धि की इच्छा

कही जाती है। इसी इच्छा की प्रबलता के कारण कोई महान संगीतकार, कोई कवि, कलाकार, कोई नेता और कोई युगपुरूष (जैसे-गांधी जी) बनता है।

9.11 मैसलो की आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त की आलोचना

मनोवैज्ञानिकों ने मैसलो (Maslow) के आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त को निम्नांकित कारकों के आधार पर आलोचना की है:-

A. आलोचकों का मत है कि मैसलो (Maslow) ने अपने सिद्धान्त का प्रतिपादन वैसे आंकड़ों (Data)के आधार पर किया जिसे उन्होंने ऊपरी वर्ग (Upper Class) तथा मध्यम वर्ग के लोगों से प्राप्त किया था। अतः उनका सिद्धान्त इन दो वर्गों के लोगों के लिए काफी उचित है। परन्तु निम्न वर्ग के लोगों या वैसे लोगों पर जो कम विकसित हैं तथा गरीब हैं, पर लागू नहीं होता। क्योंकि ऐसे लोगों की शारीरिक आवश्यकताएँ कभी पूर्णतः संतुष्ट नहीं हो पाती हैं। फलस्वरूप वे अनुक्रम (Hierarchy) के आगे की आवश्यकताओं के बारे में सोच भी नहीं पाते हैं।

B. मैसलो (Williams & Page, 1989) ने अपने सिद्धान्त में यह पूर्व कल्पना की है कि सभी मनुष्य उनके द्वारा बताए गए पाँच आवश्यकताओं में निचले स्तर से ऊपरी स्तर की ओर आगे बढ़ते हैं। आलोचकों का मत है कि मैसलो अपनी इस पूर्व कल्पना (Assumption) को प्रयोगात्मक रूप से जांच कर नहीं दिखला सके। इतना ही नहीं, मैसलो ने यह भी पूर्व कल्पना (Assumption) की थी कि व्यक्ति अनुक्रम (Hierarchy) के अगले स्तर (Next Level) पर तभी पहुँचता है जब वह उसके ठीक पिछले स्तर पर की आवश्यकता की संतुष्टि कर लेता है। आलोचकों ने बताया है कि हमेशा ऐसा ही हो यह आवश्यक नहीं है। ऐसा भी हो सकता है कि सबसे निम्न स्तर की आवश्यकताओं की संतुष्टि करने के बाद उसमें तीसरे स्तर की आवश्यकता न उत्पन्न होकर चौथे स्तर की आवश्यकता उत्पन्न हो जाए। इस तथ्य की संतुष्टि विलियम्स एवं पेज (Williams & Page, 1989) के प्रयोगात्मक अध्ययन से हो चुकी है।

C. मैसलो (Maslow) ने जिन मानवीय आवश्यकताओं (Human Needs) का वर्णन किया है, उनके दैहिक या शारीरिक (Physiological) तथा मनोवैज्ञानिक (Psychological) आधारों (Bases) को नहीं बतलाया गया है। उदाहरणस्वरूप, भूख की आवश्यकता को ही ले लीजिए। व्यक्ति में भूख की आवश्यकता होती है परन्तु किन-किन शारीरिक परिवर्तनों (Physiological Changes) से यह उत्पन्न होती है, इसका वर्णन उन्होंने नहीं किया है।

D. मैसलो (Maslow) ने अपने सिद्धान्त के समर्थन में व्यक्तियों के मात्र केस इतिहास (Case History) को प्रस्तुत किया है। उन्होंने इसके लिए कोई प्रयोगात्मक सबूत (Experimental Evidence) नहीं दिया है। फलतः उनकी सिद्धान्त की मान्यता थोड़ी कम हो जाती है।

इन आलोचनाओं के बावजूद भी मैसलो का आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त माना गया है क्योंकि उनका सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जो अभिप्रेरणा(Motivation) की

व्याख्या करने में जैविक (Biological), सामाजिक (Social), व्यवहारपरक (Behavioral)] प्रभावों को सम्मिलित करता है। इसे कुछ मनोवैज्ञानिकों जैसे- बेरोन (Baron,1992) आवश्यकता-पदानुक्रम सिद्धान्त को मानव अभिप्रेरणों के बीच के संबंधों की व्याख्या करने का न कि यह पूर्वकथन करने का कि अमुक समय में कौन-सा अभिप्रेरक अधिक प्रबल होगा, एक असाधरण सिद्धान्त माना है।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

12. मैसलो द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त का नाम लिखिए।
13. मैसलो के सिद्धान्त में कितनी आवश्यकताओं का वर्णन किया गया है?
14. निम्नक्रम की दो आवश्यकताओं के नाम लिखिए।
15. उच्चक्रम की अंतिम आवश्यकता का नाम लिखिए।
16. मैसलो का सिद्धान्त किस वर्ष प्रतिपादित किया गया है?

9.12 सारांश

सीखने से व्यवहार में अपेक्षाकृत स्थाई परिवर्तन होता है। स्थाई परिवर्तन उस परिवर्तन को कहा जाता है, जो एक खास समय तक स्थाई रहता है। उस खास समय की कोई निश्चित अवधि नहीं होती है। सीखने की प्रक्रिया में प्राणी एक उद्दीपक से दूसरे उद्दीपक तथा दूसरे उद्दीपक से तीसरे उद्दीपक और इस तरह से लक्ष्य तक के सभी उद्दीपकों के बीच एक अर्थपूर्ण संबंध (Meaningful Relation) स्थापित करना सीखता है।

गेने द्वारा बताए गए सभी आठ प्रकार के सीखने की एक खास विशेषता यह है कि वे सभी श्रृंखलाबद्ध क्रम (Hierarchical Order) में हैं। श्रृंखला में सबसे ऊपर समस्या समाधान सीखना (Problem Solving Learning) है तथा सबसे नीचे सांकेतिक सीखना (Single Learning) है। श्रृंखला या पिरामिड (Pyramid) के किसी भी स्तर पर सीखने की प्रक्रिया होने के लिए यह आवश्यक है कि उसके नीचे के सभी प्रकार के सीखने की प्रक्रिया हो चुकी है। जैसे श्रृंखला के पाँचवे स्तर पर विभेदीकरण सीखना है। जिसे सम्पन्न होने के लिए उसके नीचे के चारों तरह के सीखने की प्रक्रिया का सम्पन्न होना आवश्यक है।

मैसलो ने सीखने में सात सिद्धान्तों का वर्णन किया है। एक के बाद अगले पद पर आगे बढ़ा जाता है। सीखने के लिए आज छात्रों व अध्यापकों में अच्छे संबंधों का होना आवश्यक माना गया है। क्योंकि आज छात्र केन्द्रित शिक्षा, विषय चयन की स्वतंत्रता, सीखने में जिम्मेदारी का अहसास और उसको आनन्दमयी वातावरण दिया जाना आवश्यक है। अध्यापक को छात्रों की समस्या का निराकरण, शोध आधारित क्षेत्र, जिज्ञासा पर आधारित पाठ्यक्रम का सही मार्गदर्शन देने की जिम्मेदारी है। आज शिक्षा

अध्यापक केन्द्रित न होकर छात्र केन्द्रित शिक्षा हो रही है। आज छात्र के प्रभावशाली अधिगम के लिए निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है:-

1. अधिगम के लिए अधिगमकर्त्ता के साथ संबंध स्थापन
2. प्रभावशाली अधिगम वातावरण का निर्माण।
3. अधिगमकर्त्ता को अपनी अधिगम आवश्यकता की पहचान के लिए प्रोत्साहन।
4. अधिगम विषय व विधि निर्धारण के लिए अधिगमकर्त्ता की राय को सम्मिलित करना।
5. अधिगमकर्त्ता को अपने अधिगम शैली के संदर्भ में मूल्यांकन करने को प्रोत्साहित करना।
6. अधिगमकर्त्ता को अपने अधिगम उद्देश्य को विकसित करने को प्रोत्साहित करना।
7. अधिगमकर्त्ता को तकनीकी व पाठ्यक्रम तैयार करने में शामिल करना।
8. अधिगमकर्त्ता को सीखने की योजना बनाने के लिए मदद करना।

9.13 शब्दावली

1. उद्दीपन अनुक्रिया सीखना (Stimulus Response Learning)
2. सम्प्रत्यय सीखना (Concept Learning)
3. संज्ञानात्मक आवश्यकताएँ (Cognitive Needs)
   इसके अंतर्गत जानना, समझना, जिज्ञासा एवं अन्वेषण आदि को रखा जाता है। मानव जीवन में इनका काफी महत्व है।
4. आत्मसिद्धि की आवश्यकता- यह मानव की सर्वोच्च आवश्यकता होती है। इसे जीवन का परम ध्येय (Ultimate Goal) भी कहा जाता है। व्यक्ति द्वारा अपनी क्षमता का पूरा विकास करना होता है। व्यक्ति जो बन सकता है, बनने की इच्छा ही आत्मसिद्धि की इच्छा कही जाती है।

9.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. b- 8
2. c- तीसरे
3. d- आठवें
4. c - दोनों दशाएँ
5. d- क्रो और क्रो
6. टाइप एस अनुबन्ध (Type S Conditioning)
7. टाइप आर अनुबन्ध (Type R Conditioning)
8. ऊपरी अवस्था

9. (C) पाँच
10. (A) गामक कौशल
11. बौद्धिक कौशल
12. मैसलो का आवश्यकता अनुक्रमिता सिद्धान्त (Maslow's Theory of Hierarchy of Needs)
13. (7)
14. निम्न क्रम आवश्यकताएँ (Lower Order Needs)
    a. दैहिक आवश्यकताएँ (Physiological Needs)
    b. सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ (Safety Needs)
15. उच्च क्रम आवश्यकताएँ (Higher Order Needs)
    i. सौन्दर्यबोधी आवश्यकताएँ (Aesthetic Needs)
    ii. आत्मसिद्धि की आवश्यकताएँ (Self-Actualization Needs)
16. मैसलो का सिद्धान्त 1954 में प्रतिपादित किया गया था।

9.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह अरूण कुमार (1998), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना, पृष्ठ-593-605
2. पाठक पी.डी. (2005), शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
3. सारस्वत (डॉ.) मालती (1997), शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशन, आगरा, पृष्ठ-524-635
4. शर्मा डॉ. वी.एल. सक्सेना, डॉ. आर.एन., शिक्षा शास्त्र, सूर्या प्रकाशन, मेरठ
5. सिंह अरूण कुमार (2005), उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलो रोड, दिल्ली

9.16 निबन्धात्मक प्रश्न

1. सीखने का अर्थ बताते हुए सीखने की दशाओं को विस्तृत रूप में लिखिए।
2. गेने द्वारा अधिगम का अर्थ बताते हुए अधिगम से संबंधित अवधारणाओं की विस्तारसे व्याख्या कीजिए कौशल
3. गेने द्वारा प्रतिपादित समस्या समाधान सीखने की श्रृंखला का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. मानव अधिगम योग्यताएँ कितने प्रकार की हैं, उनका स्पष्ट रूप से वर्गीकरण कीजिए।

5. मानवीय परिप्रेक्ष्य में अधिगम से आप क्या समझते हैं? मैसलो के आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त का वर्णन कीजिए।
6. मैसलो के आवश्यकता अनुक्रमिकता सिद्धान्त की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
7. मैसलो के सिद्धान्त की पदक्रमानुसार व्याख्या कीजिए।
8. सीखने से आप क्या समझते हैं। सीखने के लिए किन परिस्थितियों का होना आावश्यक होता है।

इकाई 10 – स्नायु विज्ञान के क्षेत्र में सम्पन्न शोध कार्यों के परिणामों के शैक्षिक निहितार्थ

Educational Implications of Research Findings from the Field of Neuro Science

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु उपकरण
10.4 मस्तिष्क के सन्दर्भ में प्राप्त जानकारियाँ
10.5 मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक पोषक तत्व
10.6 मस्तिष्क सम्बन्धी अन्य तथ्य
10.7 मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध
10.8 लिंग भिन्नता और मस्तिष्क
10.9 बोल-चाल सम्बन्धी भाषा का विशिष्टीकरण
10.10 मस्तिष्क और कलाएँ
10.11 कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है ?
10.12 सांराश
10.13 शब्दावली
10.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर
10.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची
10.16 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

मानव व्यवहार एक जटिल प्रक्रिया है। इसको अंतर्विषयक उपागमों की मदद से ही समझा जा सकता है। व्यवहारिक विज्ञान व प्राकृतिक विज्ञान ने मानव व्यवहार को समझने में काफी सहायता की है। मानव व्यवहार आनुवांशिक गुणों ववातावरणका प्रतिफल होता है। मानव व्यवहार चाहे वो संज्ञानात्मक, भावात्मक या मनोगत्यात्मक होजीवविज्ञान की न्यूरोविज्ञान शाखा में हुए शोधों ने इसे का प्रयास किया है। न्यूरोविज्ञान ने मानव मस्तिष्क के करिश्माई गुणों को समझने में सफलता प्राप्त की है और इससे मानव

व्यवहार की जटिलतम गुत्थियों को भी सुलझा लिया गया है। प्रस्तुत इकाई में आप न्यूरोविज्ञान के क्षेत्र में हुए शोधों के निष्कर्षों को जान पाएंगे जिससे मानव व्यवहार के जैविक आधार को समझने में सहायता मिलेगी।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. मस्तिष्क की संरचना एवं कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाए जाने वाले उपकरणों के नाम लिख सकेंगे।
2. मानव मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आधारभूत सूचनाओं का वर्णन कर सकेंगे।
3. मस्तिष्क के दो गोलार्द्धों के मध्य अंतर को स्पष्ट कर सकेंगे।
4. लिंग भिन्नता और मस्तिष्क के गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता की व्याख्या कर सकेंगे।
5. बोल-चाल सम्बन्धी भाषा के विशिष्टीकरणकी व्याख्या कर सकेंगे।
6. कलाओं के शिक्षण के महत्व को जान पाएंगे ।

10.3 मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण हेतु उपकरण

आयुर्विज्ञान के उन्नत उपकरणों ने जीवन्त तथा अधिगम में संलग्न मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण को सम्भव कर दिया है। दो प्रकार के उपकरण निर्मित किए जा चुके हैं-

टाइप 1:- मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन में उपयोग में लाए जाने वाले उपकरण मस्तिष्क की आंतरिक संरचना के कम्प्यूटर निर्मित चित्रों को प्राप्त करने हेतु निम्नलिखित दो तकनीकों को उपयोग में लाया जा रहा है:-

(अ) कम्प्यूटेराइज्ड एक्सियल टोमोग्राफी (Computerized Axial Tomography- CAT

(ब) मैग्नेटिक रेज़ोनेन्स इमेजिगं (Magnetic Resonance Imaging- MRI

टाइप 2:- मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाए जाने वाले उपकरण इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तकनीकों को उपयोग में लाया जा रहा है:-

(अ) इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी (Electroencephalography)- EEG

(ब) मैग्नेटोइनसेफेलोग्राफी (Magnetoencephalography) –MEG

(स) पोजीट्रोन ऐमिशन टोनोग्रोफी (Positron Emission Tomography)- PET

(द) फंक्सनल मैग्नेटिक रेज़ोनेन्स इमेजिंग (Functional Magnetic Resonance Imaging)- FMRI

(य) फंक्शनल मैग्नेटिक रेज़ोनेन्स स्पेक्ट्रोस्कोपी (Functional Magnetic Resonance Spectroscopy)- FMRS

अधिगम के जैविक शास्त्र (Biology of Learning) से सीखने की प्रक्रिया को समझने, उसे सहज-सरल-सुगम बनाने की विधियों को विकसित करने में सफलता प्राप्त होने की अपार सम्भावनाएँ हैं।

10.4 मस्तिष्क के संदर्भ में प्राप्त जानकारियाँ

मस्तिष्क के सन्दर्भ में पिछले कुछ वर्षों में प्राप्त जानकारियों से ज्ञात हुआ है कि-

1. मस्तिष्क प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने को निरंतर पुनर्संगठित करता रहता है। यह प्रक्रिया स्नायुनमनीयता कहलाती है। यह जीवन पर्यन्त चलती है, परन्तु मानव जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में अतितीव्र होती है। शिशु को घर-परिवार में प्राप्त अनुभव, उस स्नायु परिपथ को प्रभावित करते हैं, जो यह निश्चित करता है कि विद्यालय में तथा बाद के जीवन में मस्तिष्क कैसे और क्या सीखता है।
2. मानव मस्तिष्क बोल-चाल की भाषा (Spoken Language) को कैसे ग्रहण करता है।
3. संवेग कैसे सीखने, स्मृति तथा पुनर्स्मरण को प्रभावित करते हैं।
4. शारीरिक क्रियाएँ एवं व्यायाम मनोदशा में सुधार कैसे करती हैं, मस्तिष्क के द्रव्यमान में कैसे वृद्धि करती हैं तथा संज्ञानात्मक कार्यप्रणाली को कैसे उन्नत करती हैं।
5. किशोरावस्था में मानव मस्तिष्क में वृद्धि तथा विकास कैसे होता है तथा इस अवस्था में व्यवहार के सन्दर्भ में पुर्वानुमान लगाने में आने वाली कठिनाइयों को कैसे और अधिक अच्छे ढंग से समझा जा सकता है।
6. निद्रा से वंचित होने तथा तनाव के सीखने तथा स्मृति पर क्या प्रभाव पड़ते हैं।

स्नायु विज्ञान में लगातार होती जा रही उन्नति के सन्दर्भ में अब यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षाशास्त्र के अर्न्तगत मानव मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आधारभूत सूचनाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया जाए। सभी शिक्षक स्नायु विज्ञानी नहीं हो सकते हैं, लेकिन सभी शिक्षक उस व्यवसाय से सम्बन्धित अवश्य हैं जिसका कार्य मानव मस्तिष्क को प्रतिदिन परिवर्तित करना है। अत: जितना अधिक वे मानव मस्तिष्क के बारे में जानेंगे उतना ही उन्हें उसे परिवर्तित करने में सफलता मिलेगी।

मानव मस्तिष्क एक अदभुत सरंचना है। इसमें अन्त सम्भावनाएँ हैं तथा यह वास्तव में रहस्यमय है। प्राप्त अनुभवों के आधार पर यह निरंतर स्वयं को परिविर्तित तथा पुनर्परिवर्तित करता रहता है। वाह्य जगत से सूचनाएँ प्राप्त न होने की दशा में भी यह स्वयं कार्य कर सकता है। यद्यपि यह इतनी ऊर्जा भी उत्पन्न नहीं करता है कि जिससे एक छोटा सा भी बल्ब जल सके तथापि यह इस धरती का सर्वाधिक शक्तिशाली यंत्र है।

एक प्रौढ़ मानव मस्तिष्क मात्र 1.36 किलोग्राम का ही होता है। यह एक छोटे से चकोतरे के आकार का होता है तथा अखरोट की आकृति जैसा होता है। यह आपकी हथेली में समा सकता है।

खोपड़ी के अन्दर यह झिल्लियों में सुरक्षित रहता है तथा रीढ़ की हड्डी के ऊपरी भाग में अवस्थित रहता है। मस्तिष्क निरंतर कार्य में लगा रहता है- उस समय में भी जब हम सोए हुए होते हैं। यद्यपि यह हमारे शरीर के द्रव्यमान का मात्र 2 प्रतिशत के लगभग ही होता है तथापि यह हमारी कुल कैलोरी के लगभग 20 प्रतिशत का उपभोग कर लेता है।

किशोरावस्था में संवेगों के बाहुल्य को नियंत्रित करने के लिए उत्तरदायी मस्तिष्क प्रणाली पूर्ण रूप से संक्रियात्मक नहीं होती है। यह एक महत्वपूर्ण कारण है जिसकी वजह से किशोर-किशोरियाँ अपने संवेगों के अत्यधिक नियन्त्रण में रहते हैं और इसी वजह से वे अधिक जौखिम युक्त व्यवहारों की ओर उन्मुख हो जाते हैं।

पाठ्यक्रम सामग्री के संज्ञानात्मक संयन्त्रण में स्वयं को केन्द्रित करने में निम्नलिखित की वजह से कठिनाई होती है-

- नींद की कमी- निद्रा वंचित
- भूखे होने की स्थिति - भोजन वंचित
- प्यासे होने की स्थिति- जल से वंचित

महत्वपूर्ण तथा संवेगो से जुड़ी घटनाएँ दीर्घ अवधि तक याद रहती हैं।

10.5 मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लि□आवश्यक पोषक तत्व

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि मस्तिष्क के अन्दर की दो सरंचनाएँ जो दीर्घ अवधि की स्मृति के लिए उत्तरदायी होती हैं वे मस्तिष्क के संवेगात्मक भाग में स्थित होती हैं। मस्तिष्क कोशिकाएँ इंधन के रूप में आक्सीजन तथा ग्लूकोज का उपयोग करती हैं। मस्तिष्क का कार्य जितना अधिक चुनौतीपूर्ण होता है मस्तिष्क उतने ही अधिक इंधन का उपयोग करता है। अत: मस्तिष्क की सर्वोच्च क्रियाशीलता हेतु यह महत्वपूर्ण है कि इन पदार्थों को उपयुक्त मात्रा में लिया जाए। रक्त में आक्सीजन तथा ग्लूकोज की कमी आलस्य और निद्रा को उत्पन्न करती है। ग्लूकोज युक्त पदार्थ (फल इसके सबसे अच्छे श्रोत हैं) कार्य सम्पन्न करने की प्रक्रिया को तीव्र करते हैं तथा क्रियात्मक स्मृति, अवधान और माँसपेशियों के कार्यों को ठीक प्रकार से सम्पन्न करने में सहायक हो सकते हैं।

जल, मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक है। तंत्रिका संकेतों के मस्तिष्क में प्रवाह हेतु शरीर को जल की आवश्यकता होती है। शरीर में जल की कमी से इन संकेतों की गति तथा प्रभावशीलता कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त जल से फेफड़ों में तरावट रहती है और इसकी वजह से रक्त में आक्सीजन स्थानान्तरित होती है। यह अत्यन्त चिंता का विषय है कि कई विद्यार्थी (तथा उनके अध्यापक) न तो प्रात:काल पर्याप्त ग्लूकोज युक्त नाश्ता करते हैं और न ही दिन में पर्याप्त जल पीते हैं। ग्लूकोज तथा जल मस्तिष्क की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

1. मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन में उपयोग में लाई जाने वाली तकनीकों के नाम लिखिए।
2. मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाई जाने वाली किन्हीं दो तकनीकों के नाम लिखिए।
3. एक प्रौढ़ मानव मस्तिष्क मात्र _____ किलोग्राम का ही होता है।
4. मस्तिष्क हमारी कुल कैलोरी के लगभग _____ प्रतिशत का उपभोग कर लेता है।
5. मस्तिष्क कोशिकाएँ इंधन के रूप में _____ का उपयोग करती हैं।
6. ग्लूकोज तथा _____ मस्तिष्क की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक हैं।

10.6 मस्तिष्क सम्बन्धी अन्य तथ्य

अब कुछ अन्य तथ्यों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

- यदि कोई मानव मस्तिष्क जन्म से लेकर दो वर्ष की आयु तक आंखों के माध्यम से दृश्यात्मक उद्दीपक प्राप्त नहीं करता है तो यह बच्चा हमेशा के लिए दृष्टिहीन हो जाएगा। जन्म से लेकर बारह वर्ष की आयु तक सुनने से वंचित रह गया तो कभी भी कोई भाषा नहीं सीख पाएगा।
- बुद्धि, सामाजिकता अथवा विखंडित मानसिकता तथा आक्रामकता सम्बन्धी आनुवांशिक प्रवृत्तियों को पालन-पोषण के तौर-तरीकों तथा वातावरण से प्रभावित किया जा सकता है।
- मानव मस्तिष्क भाषा के प्रति आनुवांशिक रूप से पूर्व निर्धारित (predisposed)होता है।

जैसा पहले माना जाता था कि नवजात शिशु का मस्तिष्क खाली स्लेट (Clean Slate-Tabula Rasa)होता है वैसा नहीं है। मस्तिष्क के कुछ भाग विशिष्ट उद्दीपकों हेतु पूर्व निर्धारित होते हैं। बोल-चाल की भाषा के सन्दर्भ में ऐसा ही है। बोल-चाल की भाषा को प्राप्त करने की खिड़की जन्म के तुरन्त बाद से ही खुल जाती है और लगभग 10-12 वर्ष खुली रहती है। इस उम्र के बाद किसी भाषा को प्राप्त करना कठिन हो जाता है। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि व्याकरण को पकड़ने की मानव योग्यता के लिए भी प्रारम्भिक वर्षों में एक विशिष्ट खिड़की सम्भवत: होती है। अत: विद्यालय में किसी दूसरी भाषा के शिक्षण में देरी करना उपयुक्त नहीं है। यह कार्य जितनी जल्दी प्रारम्भ कर दिया जाए उतना ही अच्छा है।

शिशु के मस्तिष्क में जन्म के समय से ही संख्या ज्ञान सम्बन्धी विशिष्ट भाग उपलब्ध रहता है। अंक सम्बन्धी चिन्तन के लिए पूर्ण रूप से क्रियाशील भाषा सम्बन्धी योग्यता की आवश्यकता नहीं है। मानव मस्तिष्क नए -नए उद्दीपकों को पसन्द करता है। यदि लगातार एक ही प्रकार के उद्दीपक सामने आते हैं तो मस्तिष्क की रूचि उनमें कम होती चली जाती है। मल्टी मीडिया युक्त वातावरण विद्यार्थियों के ध्यान को विभाजित कर देता है। विद्यार्थी एक समय में कई चीजों पर ध्यान तो देते हैं परन्तु वे किसी एक चीज पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते। याद रखना और सीखना जैविक प्रक्रियाएँ हैं न कि यांत्रिक प्रक्रियाएँ। संवेग इन प्रक्रियाओं तथा सृजनात्मकता के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। यदि विद्यार्थी को सीखी गई सामग्री से सृजनात्मक विचारों तथा वस्तुओं को उत्पन्न करने के अवसर प्रदान किए जाएँ तो इससे उन्हें समझने में अधिक आसानी होती है और वे सीखने में आनन्द प्राप्त करते हैं।देखने, सुनने,

गंध ग्रहण करने, स्पर्श करने तथा चखने से सम्बन्धित पाँच ज्ञानेन्द्रियों के अतिरिक्त मानव शरीर में आन्तरिक संकेतों को पहचानने के लिए विशिष्ट व्यवस्था है। कान के अन्दर तथा माँसपेशियों में शारीरिक गति तथा शरीर की स्थिति को समझने के लिए भी व्यवस्था विद्यमान है।

विद्यार्थी पाठ्यवस्तु पर ध्यान केन्द्रित कर सकें इसके लिए आवश्यक है कि वे स्वयं को शारीरिक और संवेगात्मक रूप से सुरक्षित महसूस करें।

संवेग ध्यान केन्द्रित करने तथा सीखने को निरंतर प्रभावित करते हैं। संवेगों को बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से उपयोग में लाने को सीखना महत्वपूर्ण है।आवेगों को नियंत्रित करना, परितोषण को लंबित रख सकना, भावनाओं को व्यक्त कर सकना, मानव-सम्बन्धों का उचित प्रबन्धन करना तथा तनाव को कम कर सकने के सन्दर्भ में भी विद्यार्थियों को शिक्षित करना आवश्यक है।जीवन में सफलता प्राप्त कर सकने तथा योग्यताओं का सम्यक और महत्तम उपयोग करने के लिए संवेगों के उचित प्रबन्धन से विद्यार्थियों को परिचित कराना होगा। मानव मस्तिष्क उन सूचनाओं को ही संचय करता है जो उसके लिए अर्थपूर्ण तथा महत्व की होती हैं। विद्यार्थी सीखने से सम्बन्धित उन क्रियाओं में भागीदारी करते हैं जिनसे उन्हें सफलता मिलती है। जहाँ असफल होने का भय रहता है विद्यार्थी उन क्रियाओं से बचने का प्रयास करते हैं।

मानव मस्तिष्क में सूचनाओं को संचित रखने की असीम क्षमता है। जिस प्रकार माँसपेशियाँ व्यायाम करने से सुदृढ़ होती हैं उसी प्रकार मस्तिष्क भी उपयोग में लाए जाने से अधिकाधिक सूचनाओं का संग्रह कर सकता है। स्नायु विज्ञानियों के अनुसार बुद्धि एकल इकाई (singular entity) न होकर विभिन्न प्रकार की होती है। मानव प्राणी विविध प्रकार से बुद्धिमान हो सकते हैं। विस्मरण सीखने में सदैव बाधक नहीं है। अधिक महत्वपूर्ण तथा अर्थपूर्ण अनुभवों को संचित रखने के लिए गैर जरूरी बातों का विस्मरण उपयोगी सिद्ध होता है। शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में बाल मस्तिष्क की बोलचाल की भाषा को ग्रहण करने की अत्यधिक क्षमता होती है। इस आयु में एक से अधिक भाषाओं को पकड़ना अपेक्षतया सरल होता है। लेकिन इस आयु में टेलीविजन उपकरण का अधिक उपयोग बाद में पढ़ने की योग्यता तथा अंक सम्बन्धी गणनाएँ करने की योग्यता को कम कर देता है।

10.7 मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध Two Hemispheres of Brain

मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध (Hemisphere) प्राप्त सूचनाओं को अलग-अलग प्रकार से संश्लेषित-विश्लेषित करते हैं। वास्तव में मानव मस्तिष्क कुछ इकाइयों का एक समूह है। इन इकाईयों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्रशाधित (processing)किया जाता है। बोलने की क्रिया, आंकिक गणनाओं की क्रिया, चेहरों को पहचानने की क्रिया हेतु मस्तिष्क में अलग-अलग इकाइयाँ विद्यमान हैं। प्राप्त सूचनाओं को मस्तिष्क एक एकल इकाई (Singular Unit) के रूप में प्रशाधित नहीं करता है और न ही सभी विभिन्न इकाईयाँ अलग-अलग प्रकार की सूचनाओं को प्रशाधित कर सकती हैं। मस्तिष्क के दायें और बायें गोलार्द्ध के कार्य अलग-अलग हैं। मस्तिष्क में स्थित महासंयोजिका(Corpus Callosum) इन दो गोलार्द्धों के मध्य स्मृति तथा सीखने की साझेदारी करवाती है। ये दो गोलार्द्ध सूचनाओं को संग्रहित एवं संसाधित भिन्न-भिन्न तरीके से करते हैं।

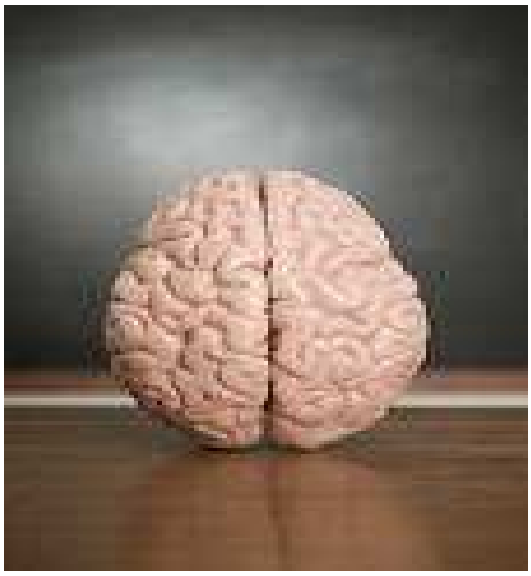

गोलार्द्धों के कार्य	
बायाँ गोलार्द्ध	**दायाँ गोलार्द्ध**
विश्लेषण - Analysis	समग्र –Holistic
क्रम – Sequence	पैटर्न –Patterns
समय – Time	स्थानिक - Spatial
वाक्- Speech	भाषा का संदर्भ - Context of language
शब्दों की पहचान- Recognizes Words	चेहरों को पहचानना - Recognizes faces
अक्षरों की पहचान- Recognizes Letters	स्थानों को पहचानना - Recognizes places
अंकों की पहचान- Recognizes Numbers	वस्तुओं को पहचानना - Recognizes objects
बाह्य उद्दीपकों को प्रशाधित करता है- Processes External stimuli	आन्तरिक संवादों को प्रशाधित करता है Processes internal messages

मस्तिष्क के ये दो गोलार्द्ध यद्यपि सूचनाओं को भिन्न-भिन्न प्रकारसे संशाधित करते हैं तथापि जटिल कार्यों को ये मिल-जुलकर सम्पादित करते हैं।

मस्तिष्क गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता के सन्दर्भ में अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर पाया जाता है। कुछ दायें गोलार्द्ध को वरीयता देते हैं और कुछ बायें गोलार्द्ध को। वरीयता में इस अन्तर के कारण व्यक्तित्व, योग्यताएँ और सीखने के ढंग प्रभावित होते हैं।

शिक्षक के लिए विद्यार्थी की गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता की जानकारी अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस जानकारी से विद्यार्थी के सीखने के ढंग के आधार पर शिक्षण कार्य करने से विद्यार्थी को अधिक सहायता प्रदान की जा सकती है।

यहाँ आपका यह जानना आवश्यक है कि गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता का बुद्धि तथा सीखने की योग्यता से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार यह भी सत्य नहीं है कि दायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति (Right handed people) बायें गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं। बायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति (Left handed people) दायें गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं।

10.8 लिंग भिन्नता और मस्तिष्क(Gender difference and the Brain)

एक ही प्रकार के कार्य को करते समय महिला और पुरूष अपने-अपने मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागों का उपयोग करते हैं। महिला मस्तिष्क दो गोलार्द्धों के मध्य संवाद में बेहतर होता है तथा पुरूष मस्तिष्क प्रत्येक गोलार्द्ध के अन्दर के संवाद में बेहतर होता है। अधिकतर महिलाओं तथा पुरूषों में भाषा सम्बन्धी क्षेत्र बायें गोलार्द्ध में होता है लेकिन महिलाओं को दायाँ गोलार्द्ध भी भाषा के प्रसाधन हेतु सक्रिय रहता है। महिलाओं के मस्तिष्क में भाषा सम्बन्धी क्षेत्र में न्यूरोन्स का घनत्व पुरूषों की तुलना में अधिक होता है।

टेस्टोस्टेरोन ग्राहाकों (Testosterone receptors)से परिपूर्ण एमिगडाला (Amygdala), जो संवेगात्मक उद्दीपकों के प्रति प्रतिक्रिया करता है, किशोरियों की तुलना में किशोरों में अधिक तीव्रता से बढ़ता है और इसका पूर्ण आकार किशोरों में अधिक बड़ा होता है। किशोरों द्वारा अपेक्षतया अधिक वाह्य आक्रामक व्यवहारों को प्रदर्शित करने का सम्भवत: एक आंशिक कारण यह ही है।

संवेगात्मक घटनाओं का पूर्ण विवरण याद रख सकने की योग्यता महिलाओं में अधिक होती है जबकि ऐसी घटनाओं का मुख्य पक्ष अथवा सार याद रखने की योग्यता पुरूषों में अधिक होती है।

पूर्व किशोरावस्था की बालिकाओं में भाषा सम्बन्धी योग्यता, अर्थगणितीय गणनाएँ सम्बन्धी योग्यता तथा क्रमबद्ध कार्यों के सम्पादन की योग्यता बालकों की अपेक्षा अधिक होती है। महिलाओं में दूसरों के संवेगों को पहचानने की योग्यता अधिक होती है।

अधिकतर महिलाएँ बायें गोलार्द्ध वरीयता (Left hemisphere preference)वाली होती हैं तथा अधिकतर पुरूष दायें गोलार्द्ध वरीयता(Right hemisphere preference) वाले होते हैं।

महिलाओं की तुलना में बायें हाथ का अधिक उपयोग करने में पुरूषों की संख्या अधिक होती है। महिला मस्तिष्क मुख्य रूप से सहानुभूति के प्रति अधिक उन्मुख होता है जबकि पुरूष मस्तिष्क व्यवस्थाओं की समझ तथा निर्माण हेतु अधिक उन्मुख होता है।

यह स्मरण रखना होगा कि गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता में अन्तर होते हुए भी किसी भी कार्य का सफलतापूर्वक सम्पादन किसी के द्वारा भी किया जा सकता है। इसी प्रकार व्यक्तियों अथवा समूहों को अनिवार्य रूप से गोलार्द्ध वरीयता वर्गों में विभाजित करना भी उपयुक्त नहीं है। प्राथमिक स्तर के अधिकतर विद्यालय बायें गोलार्द्ध वरीयता के अनुरूप निर्मित हैं। समय सारिणी, तथ्यों तथा नियमों के अनुसार चलाए जाने वाले ये विद्यालय मौखिक शिक्षण आधारित होते हैं। अत: बायें गोलार्द्ध वरीयता

वाले विद्यार्थियों (जिनमें बालिकाओं की संख्या अधिक होती है) को ये विद्यालय अधिक पसन्द आते हैं और बालक इन विद्यालयों में स्वयं को असहज महसूस करते हैं। सम्भवत: यह भी एक कारण है कि माध्यमिक स्तर के विद्यालयों में बालिकाओं की तुलना में बालकों में अनुशासनहीनताअधिक मिलती है।

10.9 बोल–चाल सम्बन्धी भाषा का विशिष्टीकरण (Spoken Language Specialization)

विश्व की लगभग 6500 बोलियों हेतु जिन स्वरों और व्यंजनों की आवश्यकता है उन सभी का उच्चारण दुनिया का प्रत्येक मानव कर सकता है।

विभिन्न बोलियों का निर्मित होना तथा तदनुरूप उच्चारण कर सकना एक बेहद जटिल प्रक्रिया है। बोले जाने वाले एक वाक्य को निर्मित कर उसका उच्चारण करने में मस्तिष्क के विभिन्न भागों (ब्रोकाज एरिया तथा वरनिकी एरिया) सहित बायें गोलार्द्ध में बिखरे तंत्रिका तंत्रों (Neural Net Works) का उपयोग होता है।

संज्ञाओं का प्रसाधन पैटर्नस के एक सैट द्वारा किया जाता है। सर्वनामों को दूसरे अलग न्यूरल नैटवर्क्स से प्रसाधित किया जाता है। वाक्य संरचना जितनी क्लिष्ट होती है, मस्तिष्क के उतने ही अधिक भाग सक्रिय होते हैं।

एक शिशु के मस्तिष्क के न्यूरोन्स इस दुनिया की सभी भाषाओं की ध्वनियों के सन्दर्भ में प्रतिक्रिया देने की क्षमता युक्त होते हैं। प्रसिद्ध भाषा विज्ञानी नॉम चोमस्की(Noam Chomsky)का मानना है कि मानव मस्तिष्क में वाक्य संरचना के नियमों के प्रति उपयुक्त प्रतिक्रिया करने हेतु पूर्वनियोजित परिपथ (pre programmed circuits)विद्यमान रहते हैं।

शब्दों के अर्थ पकड़ने के लिए बाल मस्तिष्क को जीवन्त मानव अर्न्तक्रिया की आवश्यकता होती है। मानव जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में बोल चाल की भाषा ग्रहण करने की योग्यता उच्चतम होती है। अत: अभिभावकों द्वारा संवाद सम्बन्धी क्रियाओं यथा बातचीत, गायन तथा पढ़ने से युक्त वातावरण बच्चों के लिए सृजित किया जाना चाहिए।

मातृ भाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित करने के लिए जीवन के प्रारम्भिक वर्ष सर्वाधिक उपयुक्त होते हैं। यद्यपि बाद में भी दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित की जा सकती है लेकिन यह कार्य कालान्तर में कठिन होता जाता है। क्या पढ़ना एक प्राकृतिक क्रिया है?

वास्तव में नहीं ! शीघ्रता पूर्वक तथा ठीक प्रकार से बोल –चाल की भाषा अर्जित करने की योग्यता आनुवांशिक हार्डवायरिंग (GeneticHardwiring) तथा विशेषीकृत सेरिब्रल भागों (Specialized Cerebral Areas) के इस कार्य में केन्द्रित होने का प्रतिफल है। लेकिन मस्तिष्क में ऐसा कोई भाग नहीं है जो पढ़ने के लिए विशेषीकृत हो। वास्तव में पढ़ना मानव विकास की यात्रा में अपेक्षाकृत नई क्रिया है।

पढ़ना जींस के कोडेड स्ट्रक्चर (coded structure) में अभी समावेशित नहीं हुआ है, क्योंकि यह क्रिया (पढ़ना) 'अस्तित्व कौशल' (survival skill) अभी तक नहीं बन पाई है।

शोध परिणामों से ज्ञात हुआ है कि दूसरी भाषा में बोलने की योग्यता अर्जित करने से मातृ भाषा में बोलने की योग्यता पर कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है। अनेक शोध कार्य बताते हैं कि वास्तव में इससे मातृभाषा में बोलने की योग्यता पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है।

10.10 मस्तिष्क और कला (The Brain and the Arts)

इस पृथ्वी ग्रह में अतीत की या वर्तमान की कोई ऐसी संस्कृति नहीं है, जिसमें कलाएँ विद्यमान न हों। जबकि कुछ शताब्दियों पूर्व तथा आज भी कई संस्कृतियाँ ऐसी हैं जिनमें 'लिखने-पढ़ने' की योग्यता विद्यमान नहीं है। वास्तव में 'कलाएँ' (जिनके अन्तर्गत नृत्य, संगीत, नाटक तथा दृश्य-कला (विजुवल आर्ट्स) आते हैं) मानव अनुभव की बुनियाद हैं तथा मानव अस्तित्व के लिए आवश्यक हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो 40000 वर्ष पूर्व के गुफा मानव समुदायों से लेकर 21 वीं शताब्दी के अत्याधुनिक मानव समूहों में ये "कलाएँ" क्यों विद्यमान रहतीं ? इनका निरन्तर मौजूद रहना सम्भवत: यह प्रदर्शित करता है कि इनका हमारे अस्तित्व में बने रहने में कुछ न कुछ योगदान अवश्य है।

10.11 कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है ?

- मानव के संज्ञानात्मक, संवेगात्मक तथा शारीरिक विकास में 'कलाएँ' महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करती हैं।
- इन कलाओं में संलग्न होने के अवसर प्रदान करना विद्यालयों का प्रमुख उत्तरदायित्व है।
- एक व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन में ये कलाएँएक उच्च कोटि के मानव अनुभव प्रदान करती हैं।

छोटे बच्चे खेलने के लिए जो कुछ करते हैं- गाना, ड्राइंग, नृत्य- सभी प्राकृतिक कलाओं के रूप हैं। ये क्रियाएँ सभी ज्ञानेन्द्रियों का उपयोग करती हैं तथा मस्तिष्क को सीखने की क्रिया में सफलता प्राप्त करने में सहायता करती हैं। बच्चों के विद्यालय में आने पर इन क्रियाओं को चलते रहना चाहिए तथा उनमें यथा सम्भव वृद्धि की जानी चाहिए।

मस्तिष्क में संज्ञानात्मक विकास हेतु निश्चित भाग गीत-संगीत के लय-ताल, ड्राइंग-पेंटिंग की क्रिया में संलग्न होने से विकसित होते हैं। खेल-कूद में संलग्न होने के अवसर मिलने से शारीरिक कौशलों में वृद्धि होती है तथा इससे संवेगात्मक विकास में भी सहायता प्राप्त होती है।

चित्रकला में संलग्न होने के अवसर मिलने पर बच्चे मानव अनुभवों के विभिन्न प्रकारों को समझ सकते हैं। वे यह जान पाते हैं कि मानव अपनी संवेदनाओं को विभिन्न प्रकार से कैसे व्यक्त करते हैं। साथ ही वह चिंतन करने के जटिल एवं सूक्ष्म तरीकों को भी विकसित करने में सक्षम हो जाते हैं।

कलाओं में संलग्न होना मात्र भावात्मक ही नहीं है। कहीं बहुत गहरे इसका संज्ञानात्मक महत्व भी है। चिंतन करने हेतु आवश्यक उपादान भी इससे उपलब्ध होते हैं-

- पैटर्न की पहचान और विकास।
- देखी गई तथा सोची गई चीजों का मानसिक प्रतिनिधित्व।
- सांकेतिक दृश्यों-कल्पित वर्णनों की समझ।
- बाह्य जगत का सूक्ष्म अवलोकन।
- जटिलता से अर्मूतता की ओर उन्मुख होना।

'कला' सीखने के अनुभवों को प्रतिदिन के कार्यों के जगत से जोड़ती हैं। विचारों को उत्पन्न करने की योग्यता, जीवन में विचारों को लाने तथा दूसरों तक उन्हें पहुँचाने की योग्यता कार्यस्थल में सफलता प्राप्ति हेतु महत्वपूर्ण हैं।

संगीत

संगीत से आन्नद प्राप्त करना मानव का जन्मजात गुण है। जीवन के प्रारम्भिक वर्षों से ही इस गुण की झलक मिलने लगती है।

मस्तिष्क में संगीत के लिए विशिष्ट स्थान निर्धारित है। संगीत के प्रति प्रतिक्रिया जन्मजात है तथा इसके मजबूत जैविक आधार हैं।संगीत बौद्धिक तथा संवेगात्मक उद्दीपन कर मस्तिष्क पर शक्तिशाली प्रभाव डालता है। संगीत सुनने से पुर्नस्मरण, ध्यान, कल्पनशीलता पर धनात्मक प्रभाव पड़ता है।

अन्य अकादमिक विषयों की तुलना में गणित का संगीत से सीधा सम्बन्ध है। संगीत की ट्रेनिंग मस्तिष्क के उन्हीं भागों को क्रियाशील करती है जो गणितीय प्रक्रियाओं के प्रशाधन में संलग्न होते हैं। गणित में उपलब्धि तथा संगीत शिक्षण के मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध है।पढ़ने की योग्यता तथा संगीत शिक्षण के मध्य भी घनिष्ठ सम्बन्ध पाया गया है।

व्यायाम (खेलकूद)

संज्ञानात्मक सीखने के लिए शारीरिक कसरत महत्वपूर्ण है। एक परीक्षा में सम्मिलित होने से पहले हल्का व्यायाम उपयोगी है। कुछ ही समय का हल्का-फुल्का व्यायाम भी मस्तिष्क की क्रियाशीलता में वृद्धि कर देता है। पौष्टिक भोजन, संतुलित आहार, ग्लूकोज से परिपूर्ण फल, पर्याप्त मात्रा में पानी, सीखने की क्रिया को सहज, सरल तथा सुगम बना सकते हैं।

स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्न

7. मानव मस्तिष्क _____ के प्रति आनुवांशिक रूप से पूर्व निर्धारित होता है।
8. याद रखना और सीखना _____ प्रक्रियाएँ हैं ।
9. मानव मस्तिष्क उन सूचनाओं को ही संचय करता है जो उसके लिए _____ होती है।

10. बायें गोलार्द्ध के कोई दो कार्य लिखिए।
11. दायें गोलार्द्ध के कोई दो कार्य लिखिए।
12. मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध _____ कार्यों को मिल-जुलकर सम्पादित करते हैं।
13. दायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति _____ गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं।
14. बायें हाथ का अधिक उपयोग करने वाले व्यक्ति _____ गोलार्द्ध वरीयता वाले होते हैं।
15. अधिकतर महिलाएँ _____ गोलार्द्ध वरीयता वाली होती हैं

10.12 सारांश

आयुर्विज्ञान के उन्नत उपकरणों ने जीवन्त तथा अधिगम में संलग्न मानव मस्तिष्क के वैज्ञानिक विश्लेषण को सम्भव कर दिया है।अधिगम के जैविक शास्त्र (Biology of Learning) से सीखने की प्रक्रिया को समझने, उसे सहज-सरल-सुगम बनाने की विधियों को विकसित करने में सफलता प्राप्त होने की अपार सम्भावनाएँ हैं। मस्तिष्क प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने को निरंतर पुनर्संगठित करता रहता है। यह प्रक्रिया स्नायुनमनीयता कहलाती है।

स्नायु विज्ञान में लगातार होती जा रही उन्नति के सन्दर्भ में अब यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षाशास्त्र के अर्न्तगत मानव मस्तिष्क सम्बन्धी कुछ आधारभूत सूचनाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया जाए। जितना अधिक वे मानव मस्तिष्क के बारे में जानेंगे उतना ही उन्हें उसे परिवर्तित करने में सफलता मिलेगी।

एक प्रौढ़ मानव मस्तिष्क मात्र 1.36 किलोग्राम का ही होता है। यह एक छोटे से चकोतरे के आकार का होता है तथा अखरोट की आकृति जैसा होता है। मस्तिष्क निरंतर कार्य में लगा रहता है- उस समय में भी जब हम सोये हुए होते हैं। यद्यपि यह हमारे शरीर के द्रव्यमान का मात्र 2 प्रतिशत के लगभग ही होता है तथापि यह हमारी कुल कैलोरी के लगभग 20 प्रतिशत का उपभोग कर लेता है।

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है कि मस्तिष्क के अन्दर की दो सरंचनाएँ जो दीर्घ अवधि की स्मृति के लिए उत्तरदायी होती हैं वे मस्तिष्क के संवेगात्मक भाग में स्थित होती हैं। मस्तिष्क कोशिकाएँ इंधन के रूप में आक्सीजन तथा ग्लूकोज का उपयोग करती हैं। मस्तिष्क का कार्य जितना अधिक चुनौतीपूर्ण होता है मस्तिष्क उतने ही अधिक इंधन का उपयोग करता है।

जल, मस्तिष्क की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक है। तंत्रिका संकेतों के मस्तिष्क में प्रवाह हेतु शरीर को जल की आवश्यकता होती है। शरीर में जल की कमी से इन संकेतों की गति तथा प्रभावशीलता कम हो जाती है। ग्लूकोज तथा जल मस्तिष्क की क्रियाशीलता हेतु आवश्यक हैं।

मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध प्राप्त सूचनाओं को अलग-अलग प्रकार से संश्लेषित-विश्लेषित करते हैं। वास्तव में मानव मस्तिष्क कुछ इकाइयों का एक समूह है। इन इकाइयों द्वारा प्राप्त सूचनाओं को प्रशाधित किया जाता है। बोलने की क्रिया, आंकिक गणनाओं की क्रिया, चेहरों को पहचानने की क्रिया

हेतु मस्तिष्क में अलग-अलग इकाइयाँ विद्यमान हैं। प्राप्त सूचनाओं को मस्तिष्क एक एकल इकाई के रूप में प्रशाधित नहीं करता है और न ही सभी विभिन्न इकाईयाँ अलग-अलग प्रकार की सूचनाओं को प्रशाधित कर सकती हैं।

मस्तिष्क गोलार्द्ध सम्बन्धी वरीयता के सन्दर्भ में अधिकतर व्यक्तियों में अन्तर पाया जाता है। कुछ दायें गोलार्द्ध को वरीयता देते हैं और कुछ बायें गोलार्द्ध को। वरीयता में इस अन्तर के कारण व्यक्तित्व, योग्यताएँ और सीखने के ढंग प्रभावित होते हैं।

मस्तिष्क में संज्ञानात्मक विकास हेतु निश्चित भाग गीत-संगीत के लय-ताल, ड्राइंग-पेंटिंग की क्रिया में संलग्न होने से विकसित होते हैं। खेल-कूद में संलग्न होने के अवसर मिलने से शारीरिक कौशलों में वृद्धि होती है तथा इससे संवेगात्मक विकास में भी सहायता प्राप्त होती है।

10.13 शब्दावली

1. आयुर्विज्ञान - चिकित्सा शास्त्र
2. अधिगम के जैविक शास्त्र– अधिगम प्रक्रिया को समझने हेतु जीव विज्ञान के शोध निष्कर्ष
3. स्नायु विज्ञान- मानव मस्तिष्क सहित समस्त शरीर के अंतर्गत तंत्रिका तंत्र की संरचना व प्रकार्य का अध्ययन करने वाला विज्ञान।
4. मस्तिष्क गोलार्द्ध –मस्तिष्क का दो भागों यथा दायाँ व बायाँ भाग
5. महासंयोजिका(Corpus Callosum)- मस्तिष्क के दायें व बायें गोलार्द्ध के मध्य समन्वय स्थापित करने वाला भाग।
6. दायें गोलार्द्ध वरीयता- मस्तिष्क के गोलार्द्धों में दायें गोलार्द्ध का अधिक क्रियाशील होना।
7. बायें गोलार्द्ध वरीयता- वमस्तिष्क के गोलार्द्धों में बायें गोलार्द्ध का अधिक क्रियाशील होना।

10.14 स्वमूल्यांकन हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. मस्तिष्क की संरचना के अध्ययन में उपयोग में लाई जाने वाली तकनीकों के नाम हैं-
   i. कम्प्यूटराइज्ड एक्सियल टोमोग्राफी (Computerized Axial Tomography- CAT
   ii. मैग्नेटिक रेज़ोनेन्स इमेजिंग (Magnetic Resonance Imaging- MRI
2. मस्तिष्क की कार्यप्रणाली के अध्ययन में उपयोग में लाई जाने वाली किन्हीं दो तकनीकों के नाम हैं-
   i. इलेक्ट्रोइनसेफेलोग्राफी (Electroencephalography)- EEG
   ii. मैग्नेटोइनसेफेलोग्राफी (Magnetoencephalography) –MEG
3. 1.36
4. 20

5. आक्सीजन तथा ग्लूकोज
6. जल
7. भाषा
8. जैविक
9. अर्थपूर्ण
10. बायें गोलार्द्ध के कोई दो कार्य हैं-
    i. विश्लेषण करना
    ii. शब्दों की पहचान करना
11. दायें गोलार्द्ध के कोई दो कार्य हैं-
    i. चेहरों को पहचानना
    ii. स्थानों को पहचानना
12. जटिल
13. बायें
14. दायें
15. बायें

10.15 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. Gazzaniga, (1998). As mentioned in the book *How the brain learns*.
2. Sousa, D.A. (2006). *How the brain learns*. California: Corwin Press.
3. Toman, W. (December 1970) *Birth order rules all*. Psychology Today.
4. Ramachandran, V. S. (2011)*The Tell-Tale Brain: A Neuroscientist's Quest for What Makes Us Human*
5. Shenk, David (2010)*The Genius in All of Us,*Anchor Books, New York.
6. Goleman, Daniel (1995) Emotional Intelligence , Bloomsbury Books

10.16 निबंधात्मक प्रश्न

1. मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध कौन से हैं? मस्तिष्क के दो गोलार्द्धों के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए। बोल-चाल सम्बन्धी भाषा का विशिष्टीकरण पर एक टिप्पणी लिखिए।
2. एक ही प्रकार के कार्य को करते समय महिला और पुरूष अपने-अपने मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागों का उपयोग करते हैं। स्पष्ट करें।
3. कलाओं का शिक्षण क्यों आवश्यक है इसकी व्याख्या कीजिए।